लखनउ
रवालैको बाजार चौराहा
रामनराइन काचच
का ठाकुर द्वारा माईजी
को मिलै



ादक-
कु०
पशर्मा



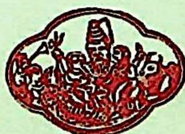
प्रेस

sed by
ARMA
n Press

चन्द्रावती सारस्वत

श्रीहरिः शरणम्

श्रीशंकराचार्य
द्वारा
विरचित



विवेकचूडामणि सानुवाद
VIVEK CHUDAMANI

अनुवादक—
ब्र० कु०
रामस्वरूपशर्मा



Printed and Publised by
RAMCHANDRSHARMA
at the Sanatan Dharm Press
MORADABAD.





विवेकचूडामणि

सनातनधर्मपताका-सम्पादक



श्री० कु० प० रामस्वरूपशर्मा

जन्म
आश्विन कृष्णा प्रतिपदा
सम्वत् १९२९

निर्वाण
आषाढ़ शुक्ला षष्ठी
सम्वत् १९८१

तत्सत् परमात्मने नमः ।

अथ श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचित ।

विवेकचूड़ामणि

मूल और भाषाटीका सहित

सर्ववेदान्तसिद्धान्तगोचरं तमगोचरम् ।
गोविन्दं परमानन्दं सद्गुरुं प्रणतोस्म्यहं

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं सर्ववेदान्तसिद्धान्त-गोचरम्) सकलवेदान्तके सिद्धान्तके विषय (परमानन्दम्) परम आनन्दरूप (अगोचरम्) मन वाणीके अविषय (तम्) उन (सद्गुरुम्) श्रेष्ठ गुरुको (प्रणतः) प्रणाम करनेवाला (अस्मि) हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ-जो सकल वेदान्तके विचारसे जाने जाते हैं, वाणी जिनका वर्णन नहीं करसकती, और मन जिनको विषय रूपसे नहीं जानसकता ऐसे परमानन्द गोविन्द भगवान्को और देवस्वरूप अपने श्रेष्ठ गुरु महाराजको मेरा प्रणाम है ॥ १ ॥

जन्तूनां नरजन्म दुर्लभमतः पुंस्त्वं ततो विप्रता, तस्माद्वैदिकधर्ममार्गपरता विद्वत्त्वमस्मात्परम् । आत्मानात्मविवेचनं स्वनुभवो ब्रह्मात्मना संस्थितिर्मुक्तिर्नो शतजन्मकोटिसुकृतैः पुण्यैर्विना लभ्यते

अन्वय और पदार्थ (जन्तूनाम्) प्राणियोंमें (नरजन्म) मनुष्यका जन्म (दुर्लभम्) कठिनतासे मिलता है (अतः) इससे (पुंस्त्वम्) पुरुष होना (ततः) तिससे (विप्रता) ब्राह्मण होना (तस्मात् ,तिससे(वैदिकधर्ममार्गपरता) वेदके अनकूल धर्ममार्गमें तत्पर होना (दुर्लभा) दुर्लभ है (आत्मानात्मविवेचनम्) आत्माके स्वरूपका और आत्मासे भिन्न पदार्थोंके स्वरूपका विवेक होना (स्वनुभवः) आत्मस्वरूपका अनुभव (ब्रह्मात्मना) ब्रह्मात्म भावसे (संस्थितिः) स्थिति होना (दुर्लभा) दुर्लभ है (शतकोटिजन्मसुकृतैः) सैंकडों करोड़ों जन्मोंमें सुन्दर प्रकारसे किये हुए(पुण्यैः-विना)पुण्योंके विना (मुक्तिः) मुक्ति (नो) नहीं (लभ्यते) पाईजाती है ॥ २ ॥

(भावार्थ)-प्राणियोंमें मनुष्यका जन्म मिलना बड़ा दुर्लभ है, वह भी मिलगया तो पुरुष होना कठिन है, यह भी हुआ तो ब्राह्मण होना दुर्लभ है, ब्राह्मण होकर भी वेदानुकूल धर्मके मार्ग में तत्पर होना दुर्लभ है, उसमें भी विद्वान् होना दुर्लभ है, तिसमें भी आत्मा और अनात्मा का विवेक होना दुर्लभ है, ऐसा होनेपर भी आत्मस्वरूप का अनुभव होना दुर्लभ है, और ऐसा होनेपर भी ब्रह्मस्वरूपमें रहना अर्थात् मुक्ति होना दुर्लभ है, इस कारण मुक्ति सैकड़ों जन्मोंमें किये हुए करोड़ों पुण्योंके विना नहीं मिलती ॥ २ ॥

दुर्लभं त्रयमेवैतद्देवानुग्रहहेतुकम् ।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः ॥३॥

अन्वय और पदार्थ-(मनुष्यत्वम्) मनुष्यपना (मुमुक्षुत्वम्) मुमुक्षु होना (महापुरुषसंश्रयः)महात्मा पुरुषों के समीप स्थिति (एतत्) यह (त्रयम्) तीनों (दुर्लभम्) दुर्लभ हैं (देवानुग्रहहेतुकम्) भगवान्‌की कृपा इनके होनेमें हेतु है ॥ ३ ॥

(भावार्थ)-मनुष्यजन्म होना, फिर मोक्ष पानेकी इच्छा होना और महात्मा पुरुषोंकी शरणमें समय बीतना, यह तीनों बातें बड़ी ही दुर्लभ हैं,यदि भगवान् की ही कृपा हो तो मिलसकती हैं ॥ ३ ॥

लब्ध्वा कथञ्चिन्नरजन्म दुर्लभं,
तत्रापि पुंस्त्वं श्रुतिपारदर्शनम् ।
यस्त्वात्ममुक्तौ न यतेत मूढधीः ।
सह्यात्महा स्वं विनिहन्त्यसद्ग्रहात्

अन्वय और पदार्थ-(दुर्लभम्)दुर्लभ (नरजन्म) मनुष्यजन्मको (कथञ्चित्) बड़ी कठिनतासे (लब्ध्वा) पाकर (तत्रापि) उसमें भी (श्रुतिपारदर्शनम्) श्रुतियोंके पारको दिखानेवाले (पुंस्त्वम्) पुरुषरूपको (लब्ध्वा) पाकर (यः) जो (आत्ममुक्तौ) अपनी मुक्तिके विषयमें (न) नहीं (यतेत) यत्न करे (स तु) वह तो (मूढधीः) मूढ बुद्धिवाला है (स हि) वह ही (आत्महा) आत्महत्यारा (असद्ग्रहात्) मिथ्याभिमानसे (स्वम्) अपने को (विनिहन्ति) विनष्ट करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ-जो कि दुर्लभ है ऐसे मनुष्यजन्मके किसी प्रकार मिल जाने पर और उसमें भी जिससे वेदके अर्थ

का पार पाया जासकता है ऐसे पुरुषपनेको पाकर जो पुरुष अपनी मुक्तिके लिये यत्न नहीं करता है वह मूढ़बुद्धि आत्महत्या करनेवाला है और वह देहादिके मिथ्याभिमानसे अर्थात् जो आत्मा नहीं हैं ऐसे देह आदिको ही मैं मेरा समझता हुआ आप ही अपनेको हानि पहुँचाता है ॥ ४ ॥

इतः को न्वस्ति मूढात्मा यस्तु स्वार्थे प्रमाद्यति । दुर्लभं मानुषं देहं प्राप्य तत्रापि पौरुषम् ॥ ५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः-तु) जो तो (दुर्लभम्) दुर्लभ (मानुषम्) मनुष्यके (देहम्) शरीरको (तत्रापि) उसको पाने पर भी (पौरुषम्) पुरुषपनेको (प्राप्य) पाकर (स्वार्थे) स्वार्थमें (प्रमाद्यति) प्रमाद करता है (इतः) इससे अधिक (मूढात्मा) मूढबुद्धि (कः-नु) कौन (अस्ति) है ॥ ५ ॥

(भावार्थ)-मनुष्यका शरीर, कि-जो दुर्लभ है उसके मिलजाने पर और उसमें भी पुरुषपना पाजाने पर जो प्राणी अपने मुक्तिरूप प्रयोजनमें प्रमादी रहता है, उससे अधिक मूढबुद्धि और कौन होसकता है ? ५

वदन्तु शास्त्राणि यजन्तु देवान्, कुर्वन्तु कर्माणि भजन्तु देवताः । आत्मैक्यबोधेन विनापि मुक्तिर्न सिद्ध्यति ब्रह्मशतांतरेपि

अन्वय और पदार्थ- शास्त्राणि) शास्त्रोंको (वदन्तु) कहो (देवान्) देवताओंको (यजन्तु) पूजो (कर्माणि) कर्मोंको (कुर्वन्तु) करो (देवताः-अपि)देवताओंको भी (भजन्तु) भजो (आत्मैक्यबोधेन-विना) आत्माकी एकताका बोध हुए विना (ब्रह्मशतान्तरे) सैंकड़ों महा-कल्पोंमें (अपि) भी (मुक्तिः)मुक्ति (न) नहीं (सिद्ध्यति) सिद्ध होती है ॥ ६ ॥

(भावार्थ)-भले ही शास्त्रोंकी चर्चा करो, देवताओं की पूजा किया करो, अग्निहोत्रादि कर्म किया करो और देवताओंकी भक्ति भी किया करो, परन्तु सर्वत्र एक परमात्माकी व्यापकताका बोध हुए विना मुक्ति नहीं होसकती ॥ ६ ॥

अमृतत्वस्य नाशास्ति वित्तेनेत्येव हि श्रुतिः। ब्रवीति कर्मणो मुक्तेरहेतुत्वं स्फुटं यतः ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(हि) निश्चय (वित्तेन) धनके द्वारा (अमृतत्वस्य) मुक्तिकी (आशा) आशा (न-एव) नहीं ही (अस्ति) है (इति) इसप्रकार (श्रुतिः) वेद (ब्रवीति) कहता है (यतः)जिससे (कर्मणः) कर्मका (मुक्तेः) मुक्तिका (अहेतुता) हेतु न होना (स्फुटम्) स्पष्ट है ॥ ७ ॥

(भावार्थ)-"धनसे मुक्ति मिलने की आशा नहीं है" इस वातको श्रुति कहती है, जिससे कर्म मुक्तिका हेतु नहीं है' यह वात स्पष्ट ही है ॥ ७ ॥

अतो विमुक्त्यै प्रयतेत विद्वान्संन्यस्तबाह्यार्थसुखस्पृहः सन् । सन्तं महान्तं समुपेत्य देशिकं तेनोपदिष्टार्थसमाहितात्मा

अन्वय और पदार्थ (अतः) इस कारण (विद्वान्) विचारवान् पुरुष (संन्यस्तबाह्यार्थसुखस्पृहः सन्) बाहरी विषयोंके सुखकी लालसा को त्यागता हुआ (महान्तम्) महात्मा (सन्तम्) सदाचारवाले (देशिकम्) गुरुको (समुपेत्य) प्राप्त होकर (तेन) उस गुरु के द्वारा (उपदिष्टार्थसमाहितात्मा) उपदेश किये हुए पदार्थमें सावधानी रखता हुआ (मुक्त्यै) मुक्तिके निमित्त (प्रयतेत) प्रयत्न करै ॥ ८ ॥

(भावार्थ) इस लिये बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि-विषयोंके सुखोंके लालचको छोड़कर महात्मा श्रेष्ठ गुरुका आश्रय लेय और उनके उपदेश किये हुए सिद्धान्तोंमें सावधान रह कर मुक्ति पानेके लिये यत्न करै ८

उद्धरेदात्मनात्मानं मग्नं संसारवारिधौ । योगारूढत्वमासाद्य सम्यग्दर्शननिष्ठया

अन्वय और पदार्थ-(संसारवारिधौ) संसारसमुद्र में (मग्नम्) डूबेहुए (आत्मानम्) अपनेको (योगारूढत्वम्) योगपर आरूढपनेको (आसाद्य) प्राप्त होकर (सम्यग्दर्शननिष्ठया) यथार्थ ज्ञानकी निष्ठाके द्वारा (आत्मना) अपने द्वारा ही (उद्धरेत्) उद्धार करे ९

भावार्थ-अपने जीवात्माका जो कि संसाररूप समुद्र

में डूबगया है उसका, योगसाधनामें निपुण होकर और यथार्थज्ञानमें निष्ठा रखकर अपने आप ही उद्धार करना चाहिये ॥ ९ ॥

संन्यस्य सर्वकर्माणि भवबन्धविमुक्तये । यत्यतां पण्डितैर्धीरैरात्माभ्यास उपस्थितैः ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ-(सर्वकर्माणि) सब कर्मोंको (संन्यस्य) त्यागकर (धीरैः) धीरजवाले (आत्माभ्यासे) आत्मस्वरूपके अभ्यासमें (उपस्थितैः) रहते हुए (पण्डितैः) पण्डितों करके (भवबन्धविमुक्तये) संसारबन्धनसे मुक्त होनेके लिये (यत्यताम्) यत्न कियाजाय ॥ १० ॥

भावार्थ—विचारवान् धीर पुरुषोंको चाहिये कि-सकल (कर्मोंके फलकी इच्छा) को त्यागकर आत्मविचारमें तत्पर रहते हुए संसारबन्धनसे मुक्त होनेका यत्न करें । १० ।

चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये।वस्तुसिद्धिर्विचारेण न किञ्चित् कर्मकोटिभिः ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ—(कर्म) कर्म (चित्तशुद्धये) चित्तकी शुद्धिके लिये है (वस्तूपलब्धये) वस्तुकी प्राप्ति के लिये (तु) तो (न) नहीं (वस्तुसिद्धिः) वस्तुकी सिद्धि (विचारेण) विचारके द्वारा (भवति) होती है

(कर्मकोटिभिः) करोड़ों कर्मोंके द्वारा (किञ्चित्) कुछ (न) नहीं (भवति) होता है ११

भावार्थ—कर्मोंके करनेसे चित्तकी शुद्धि होती है, उस से यथार्थ आत्मज्ञान नहीं होता, आत्मज्ञान तो विचार से ही होता है, करोड़ों कर्म करनेसे जरा भी आत्मज्ञान नहीं होता ॥ ११ ॥

सम्यग्विचारतः सिद्धा रज्जुतत्त्वावधारणा
भ्रान्तोदितमहासर्पभयदुःखविनाशिनी॥

अन्वय और पदार्थ—(सम्यग्विचारतः) यथार्थ विचार से (सिद्धा) हुई (रज्जुतत्त्वावधारणा) रज्जुरूप तत्त्व का ज्ञान (भ्रान्तोदितमहासर्पदुःखविनाशिनी) भ्रान्ति से उत्पन्न हुए बड़ेभारी सर्पके भयका नाश करनेवाली (अस्ति) है ॥ १२ ॥

भावार्थ-जैसे यह अन्धकारमें दीखता हुआ पदार्थ रस्सी है, साँप नहीं है, ऐसा पूरा २ निश्चय होजाने पर, पहिले भ्रममें पड़नेवाले पुरुषका, बड़ेभारी सर्पका भयरूप दुःख नष्ट होजाता है तिसीप्रकार यथार्थ विचार से सिद्ध हुआ आत्माके यथार्थ स्वरूपका निश्चय संसार से होनेवाले बड़ेभारी दुःखका नाश करता है ॥ १२ ॥

अर्थस्य निश्चयो दृष्टो विचारेण हितो-
क्तितः । न स्नानेन न दानेन प्राणायाम-
शतेन वा॥ १३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(हितोक्तितः) हितकारी गुरु के उपदेश करके (विचारेण) विचार करके (अर्थस्य)

वस्तुका (निश्चयः) निश्चय (दृष्टः) देखा है (स्नानेन) स्नान करके (न) नहीं (दानेन) दान करके (वा) या (प्राणायामशतेन) सैंकड़ों प्राणायामों करके (न) नहीं ॥ १३ ॥

भावार्थ—श्रेष्ठ गुरुके उपदेशसे और विचारसे सत्य पदार्थ (आत्मा) के स्वरूपका निश्चय होता है, परन्तु आत्मज्ञानको छोड़कर केवल स्नानसे, दानसे या सैंकड़ों प्राणायाम करनेसे नहीं होता ॥ १३ ॥

अधिकारिणमाशास्ते फलसिद्धिर्विशेषतः। उपाया देशकालाद्याः सत्यस्मिन् सहकारिणः॥ १४ ॥

अन्वय और पदार्थ—(विशेषतः) विशेष करके (फलसिद्धिः) फलकी सिद्धि (अधिकारिणम्) अधिकारीको (आशास्ते) चाहती है (अस्मिन्) इसमें (देशकालाद्याः) देश काल आदि (उपायाः) उपाय (सहकारिणः) सहायक (सन्ति) हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ—विशेष करके फलकी सिद्धि (प्राप्ति) होनेमें अधिकारी होनेकी अपेक्षा (आवश्यकता) है और देशकाल आदि तो इसमें सहायकमात्र हैं १४

अतो विचारः कर्त्तव्यो जिज्ञासोरात्मवस्तुनः। समासाद्य दयासिन्धुं गुरुं ब्रह्मविदुत्तमम् ॥ १५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अतः) इसकारण (जिज्ञासोः) जिज्ञासुको (ब्रह्मविदुत्तमम्) ब्रह्मज्ञानियोंमें उत्तम (दयासिन्धुम्) दयासिन्धु (गुरुम्) गुरुको (समासाद्य) प्राप्त होकर (आत्मवस्तुनः) आत्मवस्तुका (विचारः) विचार (कर्त्तव्यः) करना चाहिये ॥ १५ ॥

भावार्थ-इसलिये आत्माके स्वरूपको जाननेकी इच्छा करनेवालोंको दयाके समुद्ररूप और ब्रह्मज्ञानियोंमें उत्तम गुरुके पास जाकर आत्माका विचार करना चाहिये १५

मेधावी पुरुषो विद्वानूहापोहविचक्षणः । अधिकार्यात्मविद्याया मुक्तलक्षणलक्षितः

अन्वय और पदार्थ-(मेधावी) बुद्धिमान् (विद्वान्) विचारवान् (ऊहापोहविचक्षणः) तर्क और समाधान करनेमें प्रवीण (मुक्तलक्षणलक्षितः) जिसमें मुक्तपुरुषों केसे लक्षण प्रतीत होते हों (पुरुषः) पुरुष (आत्मविद्यायाः) आत्मविद्याका (अधिकारी) अधिकारी है ॥ १७ ॥

भावार्थ-जो पुरुष बुद्धिमान्, विद्वान्, तर्क और उसका समाधान करनेमें चतुर तथा मुक्त पुरुषोंके लक्षणों को रखता हो वह ही आत्मविद्याका अधिकारी है ।१७।

विवेकिनो विरक्तस्य शमादिगुण-शालिनः। मुमुक्षोरेव हि ब्रह्मजिज्ञासा-योग्यता मता ॥ १७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विवेकिनः) विवेकी (विरक्तस्य) विरक्त (शमादिगुणशालिनः) शम आदि गुणवाले

(मुमुक्षोः) मोक्षकी इच्छा करनेवालेकी (एव) ही (ब्रह्मजिज्ञासायोग्यता) ब्रह्मको जाननेकी इच्छाकी योग्यता (मता) मानी गई है ॥ १७ ॥

भावार्थ–जो पुरुष विवेकी, वैराग्यवाला और शम दम आदि गुणवाला हो उसको यदि मुक्त होनेकी इच्छा हो तो उसको ही ब्रह्मको जाननेकी इच्छा होसकती है, अर्थात्–वह ही ब्रह्मविद्याका अधिकारी है ॥ १७ ॥

साधनान्यत्र चत्वारि कथितानि मनीषिभिः । येषु सत्स्वेव सन्निष्ठा यदभावे न सिद्ध्यति ॥ १८ ॥

अन्वय और पदार्थ–(मनीषिभिः) विद्वानोंने (अत्र) विषयमें (चत्वारि) चार (साधनानि) साधन (कथितानि) कहे हैं (येषु) जिनके (सत्सु एव) होने पर ही (सन्निष्ठा) सत्स्वरूप ब्रह्ममें निष्ठा [भवति] होती है (तदभावे) जिनके न होने पर (न) नहीं (सिद्ध्यति) सिद्ध होती है ॥ १८ ॥

भावार्थ–विद्वानोंने ब्रह्मविद्याके लिये चार साधन कहे हैं, उन साधनोंके होनेसे ही ब्रह्मनिष्ठाकी प्राप्ति होसकती है और वह साधन न हों तो ब्रह्मनिष्ठा नहीं होसकती ॥ १८ ॥

आदौ नित्यानित्यवस्तुविवेकः परिगण्यते इहामुत्रफलभोगविरागस्तदनन्तरम् १९

शमादिषट्कसम्पत्तिर्मुमुक्षुत्वमिति स्फुटं
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्येत्येवंरूपो विनिश्चयः
सोऽयं नित्यानित्यविवेकः समुदाहृतः ।
तद्वैराग्यं जिहासा या दर्शनश्रवणादिभिः
देहादिब्रह्मपर्यन्ते ह्यनित्ये भोगवस्तुनि ।
विरज्य विषयव्राताद्दोषदृष्ट्या मुहुर्मुहुः॥
स्वलक्ष्ये नियतावस्था मनसःशम उच्यते
विषयेभ्यः परावृत्य स्थापनं स्वस्वगोलके
उभयेषामिन्द्रियाणां स दमः परिकीर्त्तितः
बाह्यानालम्बनं वृत्तेरेवोपरतिरुत्तमा॥२४॥

अन्वय और पदार्थ-(आदौ) पहिले (नित्यानित्यवस्तुविवेकः) नित्य और अनित्य वस्तुका विवेक (तदनन्तरम्) तिसके अनन्तर (इह) इसलोकमें (अमुत्र) परलोकमें (फलभोगविरागः) फलको भोगनेमें वैराग्य (शमादिषट्कसम्पत्तिः) शमआदि छः की सम्पदा(मुमुक्षुत्वम्) मुक्त होनेकी इच्छा होना (इति) इसप्रकार (स्फुटम्) स्पष्ट (परिगण्यते) गिनाजाता है (ब्रह्म) ब्रह्म (सत्यम्) सत्य है (जगत्) संसार (मिथ्या) मिथ्या है (इत्येवंरूपः) इसप्रकारका (विनिश्चयः) विशेष निश्चय (सः) वह (अयम्) यह (नित्यानित्यवस्तुविवेकः) नित्य अनित्य वस्तुका विवेक(समुदाहृतः)

कहा है (हि) निश्चय (देहादिब्रह्मपर्यन्ते) देहसे ब्रह्म-लोक पर्यन्त (अनित्ये) अनित्य (भोगवस्तुनि) भोग के पदार्थमें (दर्शनश्रवणादिभिः) दर्शन श्रवण आदिके द्वारा (या)जो (जिहासा) त्यागनेकी इच्छा (तत्) वह (वैराग्यम्) वैराग्य है (मुहुः मुहुः) बार बार (दोष-दृष्ट्या)दोषदृष्टि करके (विषयव्रातात्) विषयोंके समूह से (विरज्य) विरक्त होकर (मनसः) मनकी(स्वलक्ष्ये) अपने लक्ष्यमें(नियतावस्था)नियमित स्थिति (शमः) शम (उच्यते) कहाता है (उभयेषाम्) दोनोंप्रकारकी (इंद्रि-याणाम्)इन्द्रियोंका (विषयेभ्यः) विषयोंसे (परावृत्य) हटकर (स्वस्वगोलके) अपने २ गोलकमें (स्थापनम्) स्थापन करना (सः) वह (दमः) दम (परिकीर्त्तितः) कहा है(वृत्तेः) वृत्तिका (बाह्यानालम्बनम्) बाहरी विषयों में आश्रय न करना (एव) ही (उत्तमा) उत्तम (उप-रतिः) उपरति [कथिता] कही है॥ १९-२४ ॥

भावार्थ-पहिले नित्य और अनित्य वस्तुका विवेक, तिसके अनन्तर इसलोक तथा परलोकके कर्मफलोंको भोगनेमें वैराग्य, फिर शम आदि छः सम्पत्तियें और फिर मोक्षकी इच्छा, इसप्रकार ब्रह्मविद्याके चार साधन गिनेजाते हैं। तिनमें—ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है, ऐसे निश्चयको नित्यानित्यवस्तुविवेक कहते हैं।शरीर से लेकर ब्रह्मलोक पर्यन्तके सकल भोगके पदार्थ अनित्य हैं, उनको देखने तथा सुनने आदिमें भी पूरी अरुचि होनेको ही 'इहामुत्रफलभोगविराग' कहते हैं। विषयों के ऊपर बार बार दोषदृष्टि करनारूप उपायके द्वारा

विषयोंके समूहसे विरक्त होकर मनकी अपने लक्ष्य आत्मविचारमें जो नियमसे स्थिति उसको ही शम कहते हैं। ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर अपने अपने गोलकमें ही रखना दम कहलाता है। चित्त की वृत्ति विषयोंकी वासनासे रहित होजाय, यह ही उत्तम उपरति कहलाती है ॥ १६—२४ ॥

सहनं सर्वदुःखानामप्रतीकारपूर्वकम् । चिन्ताविलापरहितं सा तितिक्षा निगद्यते

अन्वय और पदार्थ-(अप्रतीकारपूर्वकम्) किसीप्रकार का उपाय न करते हुए (चिन्ताविलापरहितम्) चिन्ता और विलापसे रहित (सर्वदुःखानाम्) सकल दुःखोंका (सहनम्) सहना (सा) वह (तितिक्षा) तितिक्षा (निगद्यते) कहीजाती है ॥ २५ ॥

भावार्थ—दुःखोंको हटानेका कोई उपाय न करके तथा चिन्ता या विलाप भी न करके सब दुःखोंको सहना इसका ही नाम तितिक्षा है ॥ २५ ॥

शास्त्रस्य गुरुवाक्यस्य सत्यबुद्ध्याव- धारणम् । सा श्रद्धा कथिता सद्भिर्यया वस्तूपलभ्यते ॥ २६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(शास्त्रस्य) शास्त्रका (गुरुवाक्यस्य) गुरुके उपदेशका (सत्यबुद्ध्या) सत्यबुद्धिसे (अवधारणम्) निश्चय करना (सा) वह (सद्भिः) सत्पुरुषोंने (श्रद्धा)श्रद्धा(कथिता) कही है (यया)जिससे (वस्तु) वस्तु (उपलभ्यते) पाईजाती है ॥ २६ ॥

भावार्थ-शास्त्रकी आज्ञा और गुरुका उपदेश सत्य है, ऐसे निश्चयको सत्पुरुष श्रद्धा कहते हैं,जिस श्रद्धासे आत्मवस्तुकी प्राप्ति होती है ॥ २६ ॥

सर्वदा स्थापनं बुद्धेः शुद्धे ब्रह्मणि सर्वदा तत्समाधानमित्युक्तं न तु चित्तस्य लालनं

अन्वय और पदार्थ—(चित्तस्य) चित्तका (सर्वदा) हरसमय (लालनम्) लाड़ करना (न) नहीं (तु) किन्तु (सर्वदा) हरसमय (बुद्धेः) बुद्धिका (शुद्धे) शुद्ध (ब्रह्मणि) ब्रह्ममें (स्थापनम्)स्थापन करना (तत्) वह (समाधानम् इति)समाधान इसनाम वाला(उक्तम्) कहा है ॥ २७ ॥

भावार्थ-चित्तको इच्छित पदार्थ देकर लाड़ करनेका नाम समाधान नहीं है, किन्तु सदा शुद्ध ब्रह्ममें बुद्धिको स्थापन करनेका नाम समाधान कहा है ॥ २७ ॥

अहङ्कारादिदेहान्तान् बन्धानज्ञान-कल्पितान् । स्वस्वरूपावबोधेन मोक्तु-मिच्छा मुमुक्षुता ॥ २८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(स्वस्वरूपावबोधेन) आत्मस्वरूप के ज्ञानसे (अहंकारादिदेहान्तान्) अहंकारसे देह तक (अज्ञानकल्पितान्) अज्ञान करके कल्पना किये हुए (बन्धान्) बन्धनोंको (मोक्तुम्) छोड़नेको (इच्छा) अभिलाषा (मुमुक्षुता) मुमुक्षुत्व [अस्ति] है ॥ २८ ॥

भावार्थ-आत्मस्वरूपका ज्ञान होजाने पर अहंकारसे देहपर्यन्तके जो बन्धन अज्ञानसे कल्पना किये हुए हैं, उनको आत्मस्वरूपके ज्ञानसे छोड़ देनेकी जो इच्छा है उसको ही मुमुक्षुता (मोक्षकी इच्छा) कहते हैं ॥२८॥

मन्दमध्यमरूपापि वैराग्येण शमादिना ।
प्रसादेन गुरोः सेयं प्रवृद्धा सूयते फलम् ॥

अन्वय और पदार्थ-(मन्दमध्यमरूपा-अपि) मन्द और मध्यमरूपवाली भी (गुरोः) गुरुके (प्रसादेन) अनुग्रहसे (शमादिना) शम आदि करके (वैराग्येण) वैराग्य करके (प्रवृद्धा) प्रवृद्ध हुई (फलम्) फलको (सूयते) उत्पन्न करती है ॥ २९ ॥

भावार्थ-मोक्षको पानेकी इच्छा, पहिले मन्द या मध्यम होय तब भी, वैराग्यसे, शम आदिसे और गुरु की कृपासे वृद्धिको प्राप्त होती है और योग्य फल देती है ॥ २९ ॥

वैराग्यञ्च मुमुक्षुत्वं तीव्रं यस्य तु विद्यते ।
तस्मिन्नेवार्थवन्तः स्युः फलवंतः शमादयः

अन्वय और पदार्थ-(यस्य-तु) जिसका तो (तीव्रम्) तीव्र (वैराग्यम्) वैराग्य (च) और (मुमुक्षुत्वम्) मुमुक्षुपना (विद्यते) है (तस्मिन्-एव) उसमें ही (शमादयः) शम-आदि (अर्थवन्तः) पदार्थ (फलवन्तः) सफल (स्युः) हों ॥ ३० ॥

भावार्थ जिस पुरुषको तीव्र वैराग्य और मोक्ष पाने की इच्छा हो, उसमें ही शम आदि पदार्थ सफल होते हैं

एतयोर्मन्दता यत्र विरक्तत्वमुमुक्षयोः।
मरौ सलिलवत्तत्र शमादेर्भानमात्रता॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्र) जिसमें (विरक्तत्वमुमुक्षयोः) वैराग्य और मोक्ष पानेकी इच्छा (एतयोः) इनकी (मन्दता) मन्दता [भवति] होती है (तत्र) उसमें (मरौ) मरुभूमिमें (सलिलवत्) जलकी समान (शमादेः) शम आदिकी (भानमात्रता) प्रतीतिमात्र [भवति] होती है ॥ ३१ ॥

भावार्थ-जिस पुरुषमें विषयोंसे वैराग्य और मोक्ष पानेकी इच्छा इन दोनोंकी मन्दता होती है उस पुरुषमें मरुभूमिमें जलकी समान शम दम आदि साधनोंका भानमात्र होता है ॥ ३१ ॥

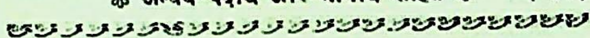
मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी।
स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते

अन्वय और पदार्थ-(मोक्षकारणसामग्र्याम्) मोक्ष पानेके कारणोंकी सामग्रीमें (भक्तिः) भक्ति (एव) ही (गरीयसी) बड़ी है (स्वस्वरूपानुसन्धानम्) आत्म-स्वरूपकी खोज करना (भक्तिः-इति) भक्ति इस नाम से (अभिधीयते) कहा जाता है ॥ ३२ ॥

भावार्थ-मोक्ष पानेके जितने कारण हैं, उनकी सामग्रीमें भक्ति ही सबसे बढ़कर है और आत्मस्वरूप की खोज करनेका नाम ही भक्ति है ॥ ३२ ॥

स्वात्मतत्त्वानुसन्धानं भक्तिरित्यपरे जगुः
उक्तसाधनसम्पन्नस्तत्त्वजिज्ञासुरात्मनः
उपसीदेद् गुरुं प्राज्ञं यस्माद्बन्धविमो-
क्षणम् । श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामाहतो-
यो ब्रह्मवित्तमः ॥ ३४ ॥
ब्रह्मण्युपरतः शान्तो निरिन्धन इवानलः
अहेतुकदयासिन्धुर्बन्धुरानमतां सताम् ॥

अन्वय और पदार्थ–(स्वात्मतत्त्वानुसन्धानम्) अपने आत्माके तत्त्वका अनुसन्धान करना (भक्तिः) भक्ति है (इति) ऐसा (अपरे) दूसरे (जगुः) कहते हुए (उक्तसाधनसम्पन्नः) कहे हुए साधनों वाला (आत्मनः) आत्माके (तत्त्वजिज्ञासुः) तत्त्वको जाननेका अभिलाषी (प्राज्ञम्) विद्वान् (गुरुम्) गुरुको (उपसीदेत्) शरण जाय (यस्मात्) जिससे (बन्धविमोक्षणम्) बन्धनसे छुटकारा [भवति] होता है (यः) जो (श्रोत्रियः) वेदका जानने वाला (अवृजिनः) निष्पाप (अकामः) कामनारहित (ब्रह्मवित्तमः) ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ (ब्रह्मणि) ब्रह्ममें (उपरतः) मग्न (निरिन्धनः) ईंधन-रहित (अनल इव) अग्निकी समान (शान्तः) शान्त (अहेतुकदयासिन्धुः) निष्कारण दयाका समुद्र (आनमताम्) नमनेवाले (सताम्) सज्जनोंका (बन्धुः) बन्धु [भवेत्] हो ॥ ३३–३५ ॥

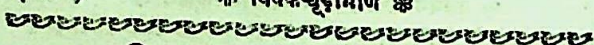


भावार्थ दूसरे कहते हैं कि-अपने आत्माके तत्त्वका अनुसन्धान करना ही भक्ति कहाती है। ऊपर कहे हुए साधनोंसे सम्पन्न हुआ आत्माके तत्त्वको जाननेकी अभिलाषावाला पुरुष, विद्वान् गुरुकी शरणमें जाय कि-जिससे संसारबन्धनसे मुक्ति मिलती है। वह गुरु ऐसा होना चाहिये कि-वेदका जानने वाला, निष्पाप, विषय सुखकी वासनासे रहित, ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, ब्रह्मविचार में ही मग्न रहने वाला और काष्ठरहित अग्निकी समान शान्त, विना किसी लालचके दयाका समुद्र और सेवा करने वाले सत्पुरुषोंका बन्धुरूप हो ॥ ३३--३५ ॥

तमाराध्य गुरुं भक्त्या प्रह्वप्रश्रयसेवनैः ।
प्रसन्नं तमनुप्राप्य पृच्छेज्ज्ञातव्यमात्मनः ॥

अन्वय और पदार्थ-(तम्) उस (गुरुम्) गुरुको (प्रह्वप्रश्रयसेवनैः) नम्रता, विनय और सेवाके द्वारा (भक्त्या) भक्तिके साथ (आराध्य) आराधना करके (प्रसन्नम्) प्रसन्न हुए (तम्) उस गुरुको (अनुप्राप्य) शरणागत होकर (आत्मनः) अपने (ज्ञातव्यम्) जानने योग्य पदार्थको (पृच्छेत्) बूझे ॥ ३६ ॥

भावार्थ--नम्रता, विनय और सेवा पूर्वक भक्तिके साथ उन गुरुकी अराधना करे, जिस समय वह गुरु प्रसन्न हों उस समय उनके समीप शरणागत होकर बूझे कि-हे गुरो! मुझे क्या जानना चाहिये ॥ ३६ ॥



स्वामिन्नमस्ते नतलोकबन्धो कारुण्यसिन्धो पतितं भवाब्धौ। मामुद्धरात्मीयकटाक्षदृष्ट्या ऋज्वातिकारुण्यसुधाभिवृष्ट्या ॥ ३७॥

अन्वय और पदार्थ (स्वामिन्) हे स्वामिन् (नतलोकबन्धो) हे प्रणाम करनेवाले लोकोंके बान्धव (कारुण्यसिन्धो) हे दयाके सागर (ते) तुम्हारे अर्थ(नमः) नमस्कार है (भवाब्धौ) संसारसमुद्रमें (पतितम्) पड़े हुए (माम्) मुझको (ऋज्वा) सरल (कारुण्यसुधाभिवृष्ट्या) करुणारूपी अमृतको बरसनेवाली (आत्मीयकटाक्षदृष्ट्या) अपने कटाक्षकी दृष्टिसे (उद्धर) बाहर निकालो ॥ ३७ ॥

भावार्थ–हे स्वामिन् ! हे प्रणाम करनेवाले भक्तोंके बन्धो ! हे दयासिन्धो ! आपको प्रमाण है, मुझ संसारसमुद्रमें पड़े हुएको, सरल और कृपारूप अमृतको बरसाने वाली अपनी कटाक्षकी दृष्टिके द्वारा बाहर निकालो ॥ ३७ ॥

दुर्वारसंसारदवाग्नितप्तं दोधूयमानं दुरदृष्टवातैः। भीतं प्रपन्नं परिपाहि मृत्योः शरण्यमन्यद्यदहं न याचे ॥ ३८ ॥

अन्वय और पदार्थ–(दुर्वारसंसारदवाग्नितप्तम्) जो न हटाई जासके ऐसी संसाररूपी दावानलसे तपे हुए

(दुरदृष्टवातैः) दुर्दैवकी पवनोंसे (दोधूयमानम्) वार २ कम्पायमान हुए (भीतम्) डरेहुए (प्रपन्नम्) शरणमें आये हुए [माम्] मुझको (मृत्योः) मृत्युसे (परिपाहि) रक्षा करिये (यत्) क्योंकि- (अहम्) मैं (अन्यम्) दूसरे (शरण्यम्) रक्षकको (न) नहीं (जाने) जानता हूँ ॥ ३८ ॥

भावार्थ-जो मेरी हटाई नहीं हटती ऐसी संसाररूपी दावानलसे मैं भुनरहा हूँ, दुर्दैवके झोके मुझको कँपाये देते हैं, इसकारण मैं भयभीत होकर हे गुरो ! आपकी शरणागत आया हूँ, आप मुझे इस मृत्युके कष्टसे बचारिये, मैं आपके सिवाय दूसरे किसी भी रक्षकको नहीं जानता ॥ ३८ ॥

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः । तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जनानहेतुनान्यानपि तारयन्तः ॥ ३९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वसन्तवत्) वसन्तकी समान (लोकहितम्) संसारके उपकारको (चरन्तः) करतेहुए (स्वयम्) अपने आप (भीमभवार्णवम्) भयानक संसारसागरको (तीर्णाः) पार हुए (अहेतुना) बिना ही प्रयोजनके (अन्यान्) और (अपि) भी (जनान्) प्राणियोंको (तारयन्तः) तारते हुए (शान्ताः) शान्तस्वरूप (महान्तः) महात्मा (सन्तः) सज्जन [जगति] जगत्में (निवसन्ति) बसते हैं ॥ ३९ ॥

भावार्थ–वसन्तऋतुके फलोंकी समान अनेकों प्रकार के श्रेष्ठ उपदेशोंके द्वारा संसार भरका हित करनेवाले स्वयं भयानक संसारसागरके पार हुए और अपना कोई प्रयोजन न रखकर केवल दयालुभावसे अन्य प्राणियोंको भी तारनेवाले, शान्तस्वरूप सज्जन महात्मा संसारमें बसते हैं ॥ ३९ ॥

अयं स्वभावः स्वत एव यत्परश्रमापनोदप्रवणं महात्मनाम् । सुधांशुरेष स्वयमर्ककर्कशप्रभाभितप्तामवति क्षितिं किल ॥ ४० ॥

अन्वय और पदार्थ (यत्) जो (महात्मनाम्) महात्माओंका [मनः] मन (परश्रमापनोदप्रवणम्) दूसरों के श्रमको दूर करनेमें लगा हुआ [भवति] होता है (अयम्) यह (स्वभावः) स्वभाव (स्वतः-एव) स्वयं ही [भवति] होता है (किल) निश्चय (एषः) यह (सुधांशुः) चन्द्रमा (स्वयम्) अपने आप ही (अर्ककर्कशप्रभाभितप्ताम्) सूर्यकी प्रखर किरणोंसे तपी हुई (क्षितिम्) पृथिवीको (अवति) रक्षा करता है ॥ ४० ॥

भावार्थ–जैसे यह चन्द्रमा, सूर्यकी तीखी किरणोंसे तपती हुई भूमिको शान्त करके स्वयं ही उसकी रक्षा करता है, यह उसका स्वभाव ही है, ऐसे ही दूसरोंके सांसारिक परिश्रम (दुःख) को अपने आप ही दूर कर देते हैं, यह महात्माओंका स्वभाव ही होता है ॥ ४० ॥

ब्रह्मानन्दरसानुभूतिकलितैः पूतैः सुशीतैर्युतैर्युष्मद्वाक्कलशोज्झितैः श्रुतिसुखैर्वाक्यामृतैः सेचय । सन्तप्तं भवतापदाववदहनज्वालाभिरेनं प्रभो धन्यास्ते भवदीक्षणक्षणगतेः पात्रीकृताः स्वीकृताः ४१

अन्वय और पदार्थ (प्रभो) हे नाथ (भवतापदाव-दहनज्वालाभिः) संसारके तापरूपी दावानलकी लपटों से (सन्तप्तम्) झुलसे हुए (एनम्) इसको (ब्रह्मानन्दरसानुभूतिकलितैः) ब्रह्मानन्दरूपी रसके अनुभवसे भरेहुए (पूतैः) पवित्र (शीतैः) परमठण्डे (युतैः) योग्य (श्रुतिसुखैः) कानोंको सुख देनेवाले (युष्मद्वाक्कलशोज्झितैः) अपनी वाणीरूप कलशोंसे छोडेहुए (वाक्यामृतैः) वचनरूप अमृतोंसे (सेचय) सींचो [ये] जो (स्वीकृताः) स्वीकार कियेहुए (भवदीक्षणक्षणगतेः) क्षणमात्रको आपकी दृष्टिके (पात्रीकृताः) पात्ररूप हुए हैं (ते) वह (धन्याः) धन्य हैं ॥ ४१ ॥

भावार्थ-हे प्रभो ! मैं जो कि-संसारके तापरूपी दावानलकी लपटोंसे झुलसा जारहा हूँ उसको ब्रह्मानन्दरूपी रसके अनुभवसे भरी हुई, पवित्र परमशीतल, योग्य, कानोंको सुख देनेवाली और अपनी वाणीरूपी कलशमेंसे निकली हुई, अपने वचनरूपी अमृतकी धाराओंसे स्नान कराइये, आपके भक्त कि-जो क्षणभर

को भी आपकी दयादृष्टिके पात्र होजाते हैं वह बड़े भाग्यवान् हैं ॥ ४१ ॥

कथं तरेयं भवसिन्धुमेतं का वा गतिर्मे कतमोऽस्त्युपायः । जाने न किञ्चित् कृपयाव मां प्रभो संसारदुःखक्षतिमातनुष्व ॥ ४२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एतम्) इस (भवसिन्धुम्) संसारसमुद्रको (कथम्) कैसे (तरेयम्) तरूँ (वा) या (मे) मेरी (का) कौन (गतिः) दशा [भविष्यति] होगी (कतमः) कौनसा (उपायः) उपाय (अस्ति) है (किञ्चित्) कुछ (न) नहीं (जाने) जानता हूँ (प्रभो) स्वामिन् (कृपयो) कृपा करके (माम्) मुझको (अव) रक्षा करो (संसारदुःखक्षतिम्) संसार दुःखके नाशको (आतनुष्व) करिये ॥ ४२ ॥

(भावार्थ)—मैं इस संसाररूपी समुद्रके पार कैसे होऊँ ? मेरी न जाने कौन दशा होगी ? सद्गति मिलने का कौनसा उपाय है ? इस विषयमें मैं कुछ नहीं जानता हे प्रभो ! कृपा करके मेरी रक्षा करो और संसारके दुःखोंका नाश करो ॥ ४२ ॥

तथा वदन्तं शरणागतं स्वं संसारदावानलतापतप्तम् । निरीक्ष्य कारुण्यरसार्द्रदृष्ट्या दद्यादभीतिं सहसा महात्मा ॥४३॥

अन्वय और पदार्थ—(महात्मा) महात्मा (तथा) तैसे (वदन्तम्) कहते हुए (स्वं शरणागतम्) अपनी शरणमें आये हुएको (संसारदावानलतापतप्तम्) संसार के तापरूप दावानलसे तपाहुआ (निरीक्ष्य) देखकर (सहसा) तत्काल (कारुण्यरसार्द्रदृष्ट्या) करुणारस से गीली हुई दृष्टिसे (अभीतिम्) अभयको (दद्यात्) देय ॥ ४३ ॥

(भावार्थ)-इस प्रकार कहते हुए अपनी शरणमें आये हुए भक्तको संसाररूपी दावानलसे झुलसा हुआ देखकर शीघ्र ही महात्मा गुरु, करुणारूपी रससे भीगी हुई अपनी दृष्टिके द्वारा उसको अभय देय ॥ ४३ ॥

विद्वान् स तस्मा उपसत्तिमीयुषे मुमुक्षवे साधु यथोक्तकारिणे । प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय तत्त्वोपदेशं कृपयैव कुर्यात्

अन्वय और पदार्थ- (सः) वह (विद्वान्) विद्वान् (उपसत्तिम्) शरणागतभावको (ईयुषे) प्राप्त होनेवाले (मुमुक्षवे) मोक्षकी इच्छावाले (साधु) ठीकर (यथोक्तकारिणे) उपदेशके अनुसार वर्ताव करने वाले (प्रशान्तचित्ताय) परम शान्त चित्त वाले (शमान्विताय) शमयुक्त (तस्मै) तिसके अर्थ (कृपया-एव) कृपा करके ही (तत्त्वोपदेशम्) तत्त्वका उपदेश (कुर्यात्) करे ॥ ४४ ॥

भावार्थ--यह विद्वान् शरणागत भावको प्राप्त होने वाले मोक्षकी इच्छा वाले ठीक२ उपदेशके अनुसार वर्ताव करने वाले परम शान्त चित्त वाले शमयुक्त तिसके अर्थ कृपा करके ही तत्त्वका उपदेश करे ॥ ४४ ॥

मा भैष्ट विद्वन् तव नास्त्यपायः संसारसिन्धोस्तरणेऽस्त्युपायः । येनैव याता यतयोऽस्य पारं तमेव मार्गं तव निर्दिशामि ॥ ४५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विद्वन्) हे विवेकयुक्त ! (माभैष्ट) डर न कर (तव) तेरा (अपायः) नाश (न) नहीं (अस्ति) है (संसारसिन्धोः) संसार समुद्रके (तरणे) तरनेमें (उपायः) उपाय (अस्ति) है (यतयः) संन्यासी (येन-एव) जिस मार्गके द्वारा ही (अस्य) इस संसारके (पारम्) पारको (याताः) प्राप्त हुए (तम्-एव) उस ही (मार्गम्) मार्गको (तव) तुझको (निर्दिशामि) बताता हूँ ॥४५॥

(भावार्थ)-गुरुने शिष्यसे कहा, कि-भय न कर, तू विचारवान् है, इसलिये तेरा नाश नहीं होगा, संसार रूपी समुद्रमेंसे तेरे तरनेका उपाय है, जिस उपायके करनेसे संन्यासी इस संसारसे पार होगए हैं, वही मार्ग मैं तुझको बताता हूँ ॥ ४५ ॥

अस्त्युपायो महान् कश्चित्संसार-

भयनाशनः । तेन तीर्त्वा भवाम्बोधिं परमानन्दमाप्स्यसि ॥ ४६ ॥

अन्वय और पदार्थ (कश्चित्) कोई (संसारभयनाशनः) संसारके भयका नाश करनेवाला (महान्) बड़ा (उपायः) उपाय (अस्ति) है (तेन) उसके द्वारा (भवाम्बोधिम्) संसार सागरको (तीर्त्वा) तरकर (परमानन्दम्) परम आनन्दको (आप्स्यसि) प्राप्त होगा ॥ ४६ ॥

भावार्थ-संसारभयका नाश करने वाला एक बड़ा भारी उपाय है, जिस उपायको करके तू संसारसमुद्रके पार होकर परम आनन्द पावेगा ॥ ४६ ॥

वेदान्तार्थविचारेण जायते ज्ञानमुत्तमम्। तेनात्यन्तिकसंसारदुःखनाशो भवत्यनु

अन्वय और पदार्थ-(वेदान्तार्थविचारेण) वेदान्तके अर्थका विचार करनेसे (उत्तमम्) उत्तम (ज्ञानम्) ज्ञान (जायते) होता है (अनु) तदनन्तर ही (तेन) उसके द्वारा (आत्यन्तिकसंसारदुःखनाशः) सदाको संसारके दुःखका नाश (भवति) होता है ॥ ४७ ॥

भावार्थ-वेदान्तशास्त्रके अर्थका विचार करनेसे उत्तम ज्ञान प्राप्त होता है और उस ज्ञानसे तुरत ही संसारके दुःखोंका नाश होजाता है ॥ ४७ ॥

श्रद्धाभक्तिध्यानयोगान्मुमुक्षोर्मुक्तेर्हे-

तून् वक्ति साक्षाच्छ्रुतेर्गीः । यो वा एतेष्वेव तिष्ठत्यमुष्य मोक्षोऽविद्याकल्पिताद्देहबन्धात् ॥ ४८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(साक्षात्) प्रत्यक्ष (श्रुतेः) श्रुतिकी (गीः) वाणी (श्रद्धाभक्तिध्यानयोगान्) श्रद्धा भक्ति और ध्यानयोगको (मुमुक्षोः) मुमुक्षुकी (मुक्तेः) मुक्तिके (हेतून्) हेतुओंको (वक्ति) कहती है (योवा) जो (एतेषु-एव) इनमें ही (तिष्ठति) स्थित होता है (अमुष्य) इसका (अविद्याकल्पितात्) अविद्यासे कल्पित हुए (देहबन्धात्) देहके बन्धनसे (मोक्षः) मोक्ष [भवति] होता है ॥ ४८ ॥

भावार्थ-साक्षात् श्रुतिका वचन कहता है कि-मोक्षकी इच्छा करनेवालेके लिये श्रद्धा, भक्ति और ध्यानयोग मुक्ति होनेका उपाय है, जो पुरुष इन उपायोंके करनेमें ही लगा रहता है, उसकी अविद्याके रचे हुए देहके बन्धनसे मुक्ति होजाती है ॥ ४८ ॥

अज्ञानयोगात्परमात्मनस्तव ह्यनात्मबन्धस्तत एव संसृतिः । तयोर्विवेकोदितबोधवह्निरज्ञानकार्यं प्रदहेत्समूलम् ॥४९॥

अन्वय और पदार्थ-(हि) निश्चय (परमात्मनः) परमात्मा (तव) तुझको (अज्ञानयोगात्) अज्ञानके योगसे (अनात्मबन्धः) जड़ पदार्थोंसे बन्धन होरहा है

(ततः एव) तिससे ही (संसृतिः) संसार है (तयोः) उन दोनोंके (विवेकोदितबोधवह्निः) विवेकसे उत्पन्न हुआ ज्ञानाग्नि (अज्ञानकार्यम्) अज्ञानके कार्यको (समूलम्) मूलसहित (प्रदहेत्) भस्म करदेगा ॥४६॥

भावार्थ-तू कि-जो परमात्मा है, तिसको अज्ञानका सङ्ग होनेसे देह आदि जो आत्मा नहीं हैं ऐसे अनात्म जड़ पदार्थोंसे बन्धन होरहा है इसकारण ही जन्म मरणरूप संसार है, इसलिये आत्मा और अनात्माके विवेकसे उत्पन्न हुआ ज्ञानरूप अग्नि ही अज्ञानको और अज्ञानके कार्योंको जड़से नष्ट करदेगा ॥ ४६ ॥

शिष्य उवाच—

कृपया श्रूयतां स्वामिन् प्रश्नोऽयं क्रियते मया। यदुत्तरमहं श्रुत्वा कृतार्थः स्यां भवन्मुखात् ॥ ५० ॥

अन्वय और पदार्थ-(स्वामिन्) हे प्रभो (मया) मुझ करके (अयम्) यह (प्रश्नः) प्रश्न (क्रियते) किया जाता है (कृपया) कृपा करके (श्रूयताम्) सुनाजाय (अहम्) मैं (भवन्मुखात्) तुम्हारे मुखसे (यदुत्तरम्) जिसके उत्तरको (श्रुत्वा) सुनकर (कृतार्थः) कृतार्थ (स्याम्) होऊँ ॥ ५० ॥

भावार्थ-शिष्यने कहा कि-हे स्वामिन् ! मैं जो प्रश्न करता हूँ, उसको कृपा करके सुनिये, कि-जिसका उत्तर मैं आपके मुखसे सुनकर कृतार्थ होऊँ ॥ ५० ॥

को नाम बन्धः कथमेष आगत कथं प्रतिष्ठास्य कथं विमोक्षः । कोऽसावनात्मा परमः स्व आत्मा तयोर्विवेकः कथमेतदुच्यताम् ॥ ५१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(बन्धः) बन्धन (कः-नाम) कौन पदार्थ है (एष) यह (कथम्) कैसे (आगतः) आया है (अस्य) इसकी (प्रतिष्ठा) स्थिति (कथम्) कैसे है (विमोक्षः) इससे छुटकारा (कथम्) कैसे होता है (असौ) यह (अनात्मा) आत्मभिन्न पदार्थ [च] और (स्वः) अपना (परमः) परम (आत्मा) आत्मा (कः) कौन है (तयोः) उन दोनोंका (विवेकः) विवेक (कथम्) कैसे [भवति] होता है (एतत्) यह (उच्यताम्) कहा जाय ॥ ५१ ॥

भावार्थ—बन्धन कौन पदार्थ है ? यह बन्धन प्राणीको कैसे होजाता है ? इसकी स्थिति कैसी है ? इससे छुटकारा किस प्रकार होता है, आत्मासे भिन्न अनात्मा कौन पदार्थ है ? और आत्मा कौन है ? तथा अनात्मा और आत्माका विवेक किस प्रकार करना चाहिये यह कहिये ॥ ५१ ॥

श्रीगुरुरुवाच-

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि पावितं ते कुलं

त्वया। यदविद्याबन्धमुक्त्या ब्रह्मी भवितुमिच्छसि ॥ ५२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (अविद्याबन्धमुक्त्या) अविद्याके बन्धनसे मुक्त होकर (ब्रह्मीभवितुम्) ब्रह्म होनेको (इच्छसि) इच्छा करता है [अतः] इसकारण (धन्यः) धन्य (असि) है (त्वया) तूने (ते) तेरा (कुलम्) कुल (पावितम्) पवित्र करदिया ॥ ५२ ॥

भावार्थ-गुरुने कहा, कि-हे शिष्य ! तू अविद्या मेंसे छूटकर ब्रह्म होना चाहता है, इसलिये तू भाग्यशाली और कृतकृत्य है, तूने अपने कुलको पवित्र किया है ॥ ५२ ॥

ऋणमोचनकर्त्तारः पितुः सन्ति सुतादयः। बन्धमोचनकर्त्ता तु स्वस्मादन्यो न कश्चन ॥ ५३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(पितुः) पिताके (ऋणमोचनकर्त्तारः) ऋणको दूर करने वाले (सुतादयः) पुत्र आदि (सन्ति) हैं (बन्धमोचनकर्त्ता) संसार बन्धन को दूर करने वाला (तु) तो (स्वस्मात्) अपने से (अन्यः) अन्य (कश्चन) कोई (न) नहीं (अस्ति) है ॥ ५३ ॥

भावार्थ-अपने ऊपर किसीका ऋण हो तो उससे तो पुत्र आदि छुड़ा देते हैं, परन्तु संसार बन्धनसे छुड़ाने वाला अपने सिवाय दूसरा कोई नहीं है ॥ ५३ ॥

मस्तकन्यस्तभारादेर्दुःखमन्यैर्निवार्यते।
क्षुधादिकृतदुःखन्तु विना स्वेन न केनचित्

अन्वय और पदार्थ—(मस्तकन्यस्तभारादेः) मस्तक पर रक्खे हुए बोझे आदिका (दुःखम्) दुःख (अन्यैः) ओरों करके (निवार्यते) दूर कर दिया जाता है (तु) परन्तु (क्षुधादिकृतदुःखम्) भूख आदिका दुःख (स्वेन विना) अपने विना (केनचित्) किसी करके भी (न) नहीं (निवार्यते) दूर किया जाता है॥ ५४॥

भावार्थ–माथे पर बोझा आदि रक्खा हो तो उसका दुःख दूसरोंका किया दूर होसकता है, परन्तु भूख आदि से होने वाला दुःख अपने सिवाय दूसरेका किया दूर नहीं होसकता॥ ५४॥

पथ्यमौषधसेवा च क्रियते येन रोगिणा।
आरोग्यसिद्धिर्दृष्टाऽस्य नान्यानुष्ठित-कर्मणा॥ ५५॥

अन्वय और पदार्थ–(येन) जिस (रोगिणा) रोगी करके (पथ्यम्) पथ्य (औषधसेवा) औषध की सेवा (च) भी (क्रियते) कीजाती है (अस्य) इसको (आरोग्यसिद्धिः) आरोग्यकी प्राप्ति (दृष्टा) देखी है (अन्यानुष्ठितकर्मणा) औरके किये हुए कर्मसे (न) नहीं ५५

भावार्थ -यदि रोगी आप ही पथ्यका और औषधका सेवन करे तो उसको आरोग्यकी प्राप्ति होती है, परन्तु

रोगीके बदले यदि कोई दूसरा पुरुष करे तो उससे रोगी को आराम नहीं होसकता, यह बात देखनेमें आती है ५५

वस्तुस्वरूपं स्फुटबोधचक्षुषा स्वेनैव वेद्यं न तु पण्डितेन। चन्द्रस्वरूपं निजचक्षुषैव ज्ञातव्यमन्यैरवगम्यते किम् ॥ ५६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(चन्द्रस्वरूपम्) चन्द्रमाका स्वरूप (निजचक्षुषा) अपने नेत्र करके (एव) ही (ज्ञातव्यम्) जानने योग्य है (किम्) क्या (अन्यैः) औरोंके द्वारा (अवगम्यते) जाना जाता है (वस्तुस्व-रूपम्) वस्तुका स्वरूप (स्वेन-एव) अपने द्वारा ही (निजबोधचक्षुषा) अपनी ज्ञानदृष्टिसे (वेद्यम्) जानने योग्य है (तु) किंतु (पण्डितेन) पण्डितके द्वारा (न) नहीं ॥

भावार्थ—जैसे चन्द्रमाका स्वरूप अपने नेत्रसे देखने पर ही जाना जासकता है, दूसरेके द्वारा नहीं, तैसे ही आत्माका स्वरूप अपने ज्ञानरूपी नेत्रसे अपने द्वारा ही जाना जासकता है, किसी दूसरेकी पण्डिताईसे नहीं जाना जासकता ॥ ५६ ॥

अविद्याकामकर्मादिपाशबंधं विमोचितुम् कः शक्नुयाद्विनात्मानं कल्पकोटिशतै-रपि ॥ ५७ ॥

अन्वय और पदार्थ (कः) कौन (आत्मानम्-विना) अपने विना (कल्पकोटिशतैरपि) सैंकड़ों करोड़ों कल्पों

करके भी (अविद्याकामकर्मादिपाशबन्धम्) अविद्या, काम, कर्म आदिके पाशसे होने वाले बन्धनको (विमोचितुम्) काटनेको (शक्नुयात्) समर्थ होगा ॥ ५७ ॥

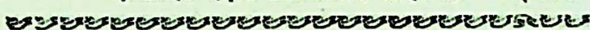
भावार्थ–अविद्या, काम, कर्म आदिकी पाशोंसे होने वाले बन्धनको अपने सिवाय सैकड़ों करोड़ कल्पका समय लगाकर भी दूसरा कौन काट सकता है ? ॥५७॥

न योगेन न सांख्येन कर्मणा नो न विद्यया । ब्रह्मात्मैकत्वबोधेन मोक्षः सिद्धयति नान्यथा ॥ ५८ ॥

अन्वय और पदार्थ–(ब्रह्मात्मैकत्वबोधेन) ब्रह्म और जीवात्माकी एकताके ज्ञानसे (मोक्षः) मोक्ष (सिद्धयति) सिद्ध होता है (योगेन) योगके द्वारा (न) नहीं (सांख्येन) सांख्यके द्वारा (न) नहीं (कर्मणा) कर्मके द्वारा (नो) नहीं (विद्यया) विद्या के द्वारा (न) नहीं (अन्यथा) और किसी उपायके द्वारा न) नहीं [सिद्धयति] सिद्ध होता है ५८

भावार्थ–जीव और परमात्माकी एकताको समझनेसे ही मोक्ष होता है, इसके बिना चाहे योग साधो, चाहे सांख्यका विचार करो, चाहे यज्ञादि कर्मानुष्ठान करो चाहे किसी विद्याको पढ़ो मुक्ति नहीं होसकती ॥५८॥

वीणाया रूपसौन्दर्यं तन्त्रिवादनसौष्ठवम्
प्रजारंजनमात्रं तन्न साम्राज्याय कल्पते



अन्वय और पदार्थ-(वीणायाः) वीणाकी (रूप-सौन्दर्यम्) रूपकी सुन्दरता (तन्त्रिवादनसौष्ठवम्) तारोंको बजानेकी चातुरी (तत्) वह (प्रजारञ्जन-मात्रम्) प्रजाको प्रसन्न करने मात्रको है (साम्राज्याय) साम्राज्यके निमित्त (न) नहीं (कल्पते) समर्थ होता है ॥ ५६ ॥

भावार्थ-वीणाके रूपकी सुन्दरता और उसके तारों को बजानेकी चतुराई, यह केवल लोगोंको प्रसन्न करने मात्रको ही है, उससे कुछ मोक्ष नहीं मिल सकती ५६

वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यान-कौशलम्। वैदुष्यं विदुषां तद्वद् भुक्तये न तु मुक्तये ॥ ६० ॥

अन्वय और पदार्थ-(वाग्वैखरी) वाणीकी रचना (शब्दझरी) शब्दोंकी लड़ी (शास्त्रव्याख्यानकौशलम्) शास्त्रोंकी व्याख्या करनेमें चतुराई (तद्वत्) तैसे ही (विदुषाम्) विद्वानोंका (वैदुष्यम्) पाण्डित्य (भुक्तये) भोगके निमित्त है (तु) किन्तु (मुक्तये) मुक्तिके निमित्त (न) नहीं है ॥ ६० ॥

भावार्थ-वाणीकी सुन्दर योजना, शब्दोंका प्रवाह और शास्त्रोंका तात्पर्य कहनेकी चतुराई इत्यादि जो पंडितोंकी प्रवीणता है, उससे सांसारिक भोग मिलते हैं, मुक्ति नहीं मिल सकती ॥ ६० ॥

अविज्ञाते परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु

निष्फला । विज्ञातेऽपि परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला ॥ ६१ ॥

अन्वय और पदार्थ–(परे तत्त्वे) परमतत्त्वके (अविज्ञाते) न जानने पर (शास्त्राधीतिः) शास्त्रका पढ़ाना (तु) तो (निष्फला) निष्फल है (परे तत्त्वे) परम तत्त्वके (विज्ञाते–अपि) जान लेने पर भी (शास्त्राधीतिः) शास्त्रका पढना (तु) तो (निष्फला) निष्फल है ६१

भावार्थ–यदि आत्मतत्त्वको नहीं जाना तो शास्त्रों का पढ़ना वृथा है, तैसे ही आत्मतत्त्वको जान लेने पर भी शास्त्रका अभ्यास करना निरर्थक है ॥ ६१ ॥

शब्दजालं महारण्यं चित्तभ्रमणकारणम् । अतः प्रयत्नाज्ज्ञातव्यं तत्त्वज्ञात्तत्त्वमात्मनः ॥ ६२ ॥

अन्वय और पदार्थ–(शब्दजालम्) शब्दोंका समूह रूप (महारण्यम्) बड़ा भारी वन (चित्तभ्रमणकारणम्) चित्तको भ्रममें डालनेका कारण है (अतः) इस कारण (प्रयत्नात्) उद्योगसे (तत्त्वज्ञात्) तत्त्वज्ञानीसे (आत्मनः) आत्माका (तत्त्वम्) तत्त्व (ज्ञातव्यम्) जानना चाहिये ॥ ६२ ॥

भावार्थ–शब्दोंका जालरूप [ग्रन्थोंका समूहरूप] बड़ाभारी वन चित्तको भ्रममें डाल देता है, इसलिये प्रपञ्चमें न पड़कर उद्योगपूर्वक किसी तत्त्वज्ञानीकी शरण में जाकर आत्माका तत्त्व जानना चाहिये ॥ ६२ ॥

अज्ञानसर्पदष्टस्य ब्रह्मज्ञानौषधं विना ।
किमु वेदैश्च शास्त्रैश्च किमु मंत्रैः किमौषधैः

अन्वय और पदार्थ-(अज्ञानसर्पदष्टस्य) अज्ञानरूपी साँपसे काटे हुएका (ब्रह्मज्ञानौषधम्-विना) ब्रह्मज्ञान-रूपी औषधके विना (वेदैः) वेदों करके (च) और (शास्त्रैः) शास्त्रों करके (च) भी (किमु) क्या है (मन्त्रैः) मन्त्रों करके (किमु) क्या है (औषधैः) औषधों करके (किम्) क्या है ॥ ६३ ॥

भावार्थ-जिसको अज्ञानरूपी सर्पने डस लिया है ऐसे प्राणीको एक ब्रह्मज्ञानरूपी औषधके सिवाय वेद, शास्त्र,मन्त्र तथा औषधिसे कुछ लाभ नहीं होसकता६३

न गच्छति विना पानं व्याधिरौषधि-
शब्दतः । विनापरोक्षानुभवं ब्रह्मशब्दैर्न
मुच्यते ॥ ६४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(पानम्-विना) पीनेके विना (औषधिशब्दतः) औषध शब्दका उच्चारण करने मात्र से (व्याधिः) रोग (न) नहीं (गच्छति) दूर होता है [एवम्] इसी प्रकार (अपरोक्षानुभवम् विना) साक्षात् अनुभवके विना (ब्रह्मशब्दैः) ब्रह्मवाचक शब्दोंके द्वारा (न) नहीं (मुच्यते) मुक्त होता है ॥ ६४ ॥

भावार्थ-जैसे औषधिको पिये विना औषधको नाम मात्र लेनेसे रोग नहीं मिटता है,तैसे ही ब्रह्मका प्रत्यक्ष-ज्ञान हुए विना ब्रह्म ब्रह्म ऐसे शब्दोंके बोलने मात्रसे मुक्ति नहीं होसकती ॥ ६४ ॥

अकृत्वा दृश्यविलयमज्ञात्वा तत्त्वमात्मनः । बाह्यशब्दैः कुतो मुक्तिरुक्तिमात्रफलैर्नृणाम् ॥ ६५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(दृश्यविलयम्) दीखने वाले पदार्थोंके प्रलयको (अकृत्वा) बिना करे (आत्मनः) आत्माके (तत्त्वम्) तत्त्वको (अज्ञात्वा) बिना जाने (उक्तिमात्रफलैः) उच्चारण करना मात्र ही है फल जिनका ऐसे (बाह्यशब्दैः) बाहरी शब्दोंसे (नृणाम्) मनुष्योंकी (मुक्तिः) मुक्ति (कुतः) कहाँ ॥ ६५ ॥

भावार्थ-दीखने वाले जगत्के पदार्थोंसे चित्तको बिना हटाये और आत्माके तत्त्वको बिना जाने केवल बाहरके शब्दोंसे कि-जिनका फल कण्ठको कष्ट देना मात्र है, उनसे मनुष्यका कौन लाभ होसकता है ? कोई नहीं ॥ ६५ ॥

अकृत्वा शत्रुसंहारमगत्वाखिलभूश्रियम् राजाहमिति शब्दान्नो राजा भवितुमर्हति

अन्वय और पदार्थ-(शत्रुसंहारम्) शत्रुओंके नाशको (अकृत्वा) बिना करे (अखिलभूश्रियम्) सकल भूमिकी लक्ष्मीको (अगत्वा) बिना प्राप्त हुए (अहम् राजा) मैं राजा हूँ (इति) ऐसे (शब्दात्) शब्दसे (राजा-भवितुम्) राजा होनेको (न) नहीं (अर्हति) योग्य होता है ॥ ६६ ॥

भावार्थ-शत्रुओंका संहार किये बिना और सकल भूमिकी प्रभुता पाये बिना केवल 'मैं राजा हूँ' ऐसा कह देनेमात्रसे कोई भी राजा नहीं होसकता ॥ ६६ ॥

आप्तोक्तिं खननं तथोपरि शिलाद्युत्कर्षणस्वीकृतिम्, विक्षेपः समपेक्षते नहि बहिःशब्दैस्तु निर्गच्छति । तद्वद् ब्रह्मविदोपदेश-मनन-ध्यानादिभिर्लभ्यते, मायाकार्यतिरोहितं स्वममलं तत्त्वं न दुर्युक्तिभिः ॥ ६७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(निक्षेपः) गढा हुआ धन (आप्तोक्तिम्) सत्यवक्ताके कथनको (खननम्) खोदनेको (तथा) तैसे ही (उपरि) ऊपर (शिलाद्युत्कर्षणस्वीकृतिम्) पत्थर आदि हटानेकी स्वीकारीको (अपेक्षते) अपेक्षा करता है (बहिःशब्दैः तु) बाहरके शब्दोंमात्रसे तो (नहि) नहीं (निर्गच्छति) निकलता है (तद्वत्) तिसी प्रकार (मायाकार्यतिरोहितम्) मायाके कार्यसे ढका हुआ (अमलम्) निर्मल (तत्त्वम्) आत्मतत्त्व (ब्रह्मविदा) ब्रह्मज्ञानीके द्वारा (उपदेशमननध्यानादिभिः) उपदेश, मनन और ध्यान आदिसे (लभ्यते) प्राप्त होता है (दुर्युक्तिभिः) कुतर्कोंसे (न) नहीं ६७

भावार्थ-जैसे पृथ्वीमें गढा हुआ धन, सत्य बोलने वालेके बताये बिना, खोदे बिना और उसके ऊपरके

पत्थर आदिको हटाये विना केवल मुखसे बातें बनानेसे ही नहीं निकलता है, तैसे ही मायाके कार्योंसे ढकाहुआ निर्मल आत्मतत्त्व भी ब्रह्मज्ञानीके उपदेश मनन और ध्यान आदिके विना केवल कुतर्कमात्र करनेसे ही जानने में नहीं आसकता ॥ ६७ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भवबन्धविमुक्तये ।
स्वैरेव यत्नः कर्त्तव्यो रोगादाविव पंडितैः॥

अन्वय और पदार्थ (तस्मात्) तिस कारणसे (पण्डितैः) पण्डितों करके(रोगादौ–इव)रोग आदिके विषैं जैसे (भवबन्धविमुक्तये) संसारबन्धनसे मुक्त होनेके लिये (स्वैः एव) अपने आप ही (सर्वप्रयत्नेन) सकल रीतिसे (प्रयत्नः) उद्योग (कर्त्तव्यः) करना चाहिये ६८

भावार्थ–इस कारण चतुर पुरुषोंको चाहिये कि– जैसे रोग आदिसे छूटनेके लिये अपनेको ही उद्योग करना पड़ता है, तैसे ही संसारके बन्धनरूप रोगसे छूटनेके लिये भी अपने आप ही सब रीतिसे उद्योग करना चाहिये ॥ ६८ ॥

यस्त्वाद्य कृतः प्रश्नो वरीयाञ्छास्त्रविन्मतः । सूत्रप्रायो निगूढार्थो ज्ञातव्यश्च मुमुक्षुभिः ॥ ६९ ॥

अन्वय और पदार्थ–(अद्य) आज (त्वया) तूने (यः) जो (वरीयान्) श्रेष्ठ (शास्त्रविन्मतः) शास्त्रके जानने

वालोंका मान्य (प्रश्नः) प्रश्न (कृतः) किया है [सः] वह (सूत्रप्रायः) सूत्रकी समान (निगूढार्थः) अर्थसे भराहुआ (च) और (मुमुक्षुभिः) मुमुक्षुओं करके (ज्ञातव्यः) जानने योग्य [अस्ति] है ॥ ६९ ॥

भावार्थ-हे शिष्य! इस समय जो तूने शास्त्रके जानने वालोंका स्वीकार किया हुआ उत्तम प्रश्न किया है वह छोटासा सूत्ररूप होने पर भी बड़ेभारी अर्थसे भराहुआ है और मोक्षकी अभिलाषा वालोंको इसका विषय अवश्य जानना चाहिये ॥ ६९ ॥

शृणुष्वावहितो विद्वन् यन्मया समुदीर्यते
तदेतच्छ्रवणात्सद्यो भवबंधाद्विमोक्ष्यसे ॥

अन्वय और पदार्थ-(विद्वन्) हे विचारवान् (यत्) जो (मया) मुझ करके (समुदीर्यते) उच्चारण किया जाता है (तत्) उसको (अवहितः) सावधान हुआ (शृणुष्व) सुन (एतच्छ्रवणात्) इसको सुननेसे (सद्यः) शीघ्र (भवबन्धात्) संसारबन्धनसे (विमोक्ष्यसे) छूट जायगा ॥ ७० ॥

भावार्थ-हे विचारशील शिष्य! मैं इसका जो कुछ उत्तर कहता हूँ, उसको सावधानीके साथ सुन, जिसको सुनते ही तू शीघ्र ही संसारबन्धनसे विमुक्त होजायगा

मोक्षस्य हेतुः प्रथमो निगद्यते वैरा-
ग्यमत्यन्तमनित्यवस्तुषु । ततः शम-

श्चापि दमस्तितिक्षा न्यासः प्रसक्ताखिलकर्मणां भृशम् ॥ ७० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अनित्यवस्तुषु)अनित्य पदार्थों में (अत्यन्तम्) अत्यन्त (वैराग्यम्) उदासीनता (मोक्षस्य) मोक्षका (प्रथमः) पहिला (हेतुः) कारण (निगद्यते) कहा जाता है (ततः)तिसके पीछे (शमः) शम (दमः) दम (तितिक्षा) सहनशीलता (च) और (प्रसक्ताखिलकर्मणाम्) साथ लगेहुए सकल कर्मोंका (भृशम्) अत्यन्त (न्यासः) त्याग (अपि) भी [मोक्षस्य] मोक्षका [हेतुः] कारण [अस्ति] है ७१

भावार्थ-सकल अनित्य पदार्थोंमेंसे चित्तका हटना रूप वैराग्य मोक्षका पहिला हेतु है, इसके अनन्तर शम दम,तितिक्षा और साथ लगेहुए कर्मोंका अत्यन्त त्याग, यह सब भी मोक्षके साधन हैं ॥ ७१ ॥

ततः श्रुतिस्तन्मननं सतत्त्वध्यानं चिरं नित्यनिरन्तरं मुने । ततोऽविकल्पं परमेत्य विद्वानिहैव निर्वाणसुखं समृच्छति

अन्वय और पदार्थ-(ततः)तदनन्तर(श्रुतिः)श्रवण (तन्मननम्) उसका मनन (चिरम्) चिरकालपर्यन्त (नित्यनिरन्तरम्) नित्य और निरन्तर(सतत्त्वध्यानम्) निदिध्यासन (मुनेः) मुनिकी [मोक्षस्य] मोक्षका [हेतुः] कारण है (ततः) तदनन्तर (परम्) अत्यन्त

(अविकल्पम्) निर्विकल्पपनेको (उपेत्य)पाकर (विद्वान्) विचारवान् (इह-एव) इस शरीरमें ही (निर्वाणसुखम्) मुक्तिके सुखको (समृच्छति) पाता है ॥ ७२ ॥

भावार्थ-तदनन्तर वेदान्तशास्त्र और गुरुके उपदेश को सुनना, उसका मनन करना और चिरकाल पर्यन्त नित्य तथा निरन्तर निदिध्यासन करना, मुमुक्षु पुरुषके मोक्षका साधन है, और इतने साधन होजाने पर परम निर्विकल्प अवस्थाको पाकर विवेकी पुरुष, इस शरीरमें ही मुक्तिके सुखको पाता है अर्थात् जीवन्मुक्त होजाता है

यद्बोद्धव्यं तवेदानीमात्मानात्मविवेचनम्
तदुच्यते मया सम्यक् श्रुत्वात्मन्यवधारय

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (आत्मानात्मविवेचनम्) आत्मा और अनात्माका विचार (इदानीम्) इस समय (तव) तेरा (बोद्धव्यम्) जाननेयोग्य है (तत्) वह (मया) मुझ करके (सम्यक्) भलेप्रकार (उच्यते) कहाजाता है (श्रुत्वा) सुनकर (आत्मनि) मनमें (अवधारय) निश्चयकर ॥ ७३ ॥

भावार्थ-आत्माका क्या स्वरूप है और अनात्मा क्या है, इसको विचार, जो कि-हे शिष्य ! तुझको अवश्य जानना चाहिये, अब मैं उसीका वर्णन भलेप्रकार करता हूँ, तू उसको सुनकर ध्यानके साथ मनमें धारणकर ७३

मज्जास्थिमेदःपलरक्तचर्मत्वगाह्वयै-
र्धातुभिरेभिरन्वितम् । पादोरुवक्षोभुज-

पृष्ठमस्तकैरङ्गैरुपाङ्गैरुपयुक्तमेतत् ॥अहं-ममेति प्रथितं शरीरं मोहास्पदं स्थूल-मितीर्यते बुधैः । नभोनभस्वद्दहनाम्बु-भूमयः सूक्ष्माणि भूतानि भवन्ति तानि परस्परांशैर्मिलितानि भूत्वा स्थूलानि च स्थूलशरीरहेतवः । मात्रास्तदीया विषया भवन्ति शब्दादयः पञ्च सुखाय भोक्तुः॥ ७६ ॥

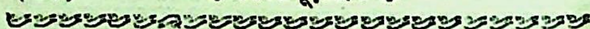
अन्वय और पदार्थ-(एतत्) यह(अहम् मम,इति) मैं मेरा इसप्रकार (प्रथितम्) प्रसिद्ध (मोहास्पदम्) मोहका स्थानरूप (शरीरम्) शरीर (मज्जास्थिमेदः-पलरक्तचर्मत्वगाह्वयैः) मज्जा,हड्डी,मेद, मांस,रुधिर, चर्म और त्वचा नाम वाले (एभिः) इन (धातुभिः) धातुओंसे (अन्वितम्) युक्त (पादोरुवक्षोभुजपृष्ठमस्तकैः) चरण, जंघा, छाती, भुजा, पीठ और मस्तक रूप अङ्गैः) अङ्गों करके (उपाङ्गैः) उपाङ्गों करके (उपयुक्तम्) उप-योगी हुआ (बुधैः) विद्वानों करके (स्थूलम् इति)स्थूल इस नाम करके (ईर्यते) कहाजाता है (नभोनभस्व-द्दहनाम्बुभूमयः) आकाश, वायु,अग्नि,जल और पृथिवी (सूक्ष्माणि) सूक्ष्म (भूतानि) भूत (भवन्ति)होते हैं (तानि) वह (परस्परांशैः) परस्परके अंशों करके

(मिलितानि) मिलेहुए (स्थूलानि) स्थूल (भूत्वा) होकर (स्थूलशरीरहेतवः) स्थूल शरीरके हेतु (च) और (तदीयाः) उसकी (मात्राः) मात्रा (शब्दादयः) शब्द आदि (पञ्च) पाँच (विषयाः) विषय (भोक्तुः) भोक्ताके (सुखाय) सुखके अर्थ(भवन्ति) होते हैं ७६

भावार्थ—यह 'मैं' और 'मेरा' इसप्रकार कहानेवाला और मोहका स्थानरूप शरीर, कि–जिसमें मज्जा, हड्डी मेद, मांस, रुधिर, चर्म और त्वचा नामक धातु हैं तथा पैर सांथल, छाती, हाथ, पीठ और मस्तक आदि अंग एवं उपाङ्ग हैं इसको विवेकी पुरुष स्थूल शरीर कहते हैं आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी नामक सूक्ष्म महाभूत अपने अपने अंशोंसे परस्पर मिलकर स्थूल होते हैं तब इस स्थूल शरीरको उत्पन्न करते हैं । पञ्च-भूतोंकी तन्मात्राएँ और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध यह पाँच विषय भोक्ताको सुख देते हैं,ऐसा मानागया है

य एषु मूढा विषयेषु बद्धा रागोरुपा-
शेन सुदुर्दमेन । आयान्ति निर्यान्त्यध
ऊर्ध्वमुच्चैः स्वकर्मदूतेन जवेन नीताः ७७

अन्वय और पदार्थ-(ये) जो (मूढाः) मूढ (सुदुर्दमेन) कठिनतासे छूटनेवाले (रागोरुपाशेन) रागरूप दृढ फाँसीसे (एषु) इन (विषयेषु) विषयोंमें (बद्धाः) बँधेहुए हैं [ते] वह (स्वकर्मदूतेन) अपने कर्मरूप दूतके द्वारा (जवेन) वेग करके (नीताः) लेजाए हुए


(अधः) नीचे (आयान्ति) आते हैं (उच्चैः) ऊँचे (निर्यान्ति) निकलकर जाते हैं ॥ ७७ ॥

भावार्थ-जो मूढ पुरुष, अति परिश्रमसे टूटनेवाली मोहरूप फाँसीसे दृढताके साथ इन विषयोंमें बँधजाते हैं वह अपने कर्मरूप दूतके हाथके वेगके साथ ढकेलेहुए संसारमें कभी नीची योनियोंमें और कभी ऊँची योनियों में आवागमन करते रहते हैं ॥ ७७ ॥

शब्दादिभिः पञ्चभिरेव पञ्च पंचत्वमापु स्वगुणेन बद्धाः । कुरङ्गमातङ्गपतङ्गमीनभृंगा नरः पंचभिरञ्चितः किं

अन्वय और पदार्थ—(स्वगुणेन) अपने गुण करके (बद्धा) बँधेहुए (कुरङ्गमातङ्गपतङ्गमीनभृङ्गाः) मृग, हाथी, पतङ्गा, मच्छी और भौंरा (पंच) पाँच (शब्दादिभिः) शब्द आदि (पञ्चभिः) पाँच करके (पञ्चत्वम्) मरणको (आपुः) प्राप्तहुए हैं (पञ्चभिः) पाचों करके (अञ्चितः) युक्तहुआ (नरः) मनुष्य (किम्) क्या है ? ॥ ७८ ॥

भावार्थ-अपने स्वभावके वशीभूत हुए हिरन, हाथी, पतंगा, मच्छी और भौंरा यह पाँच प्राणी शब्दादि पाँच विषयोंमें आसक्त होनेसे अर्थात् हिरन वीनके शब्द रूप विषयमें, हाथी हथिनीके स्पर्शरूप विषयमें, पतङ्गा दीपकके रूपमें, मच्छी काँटेमें लगे मांसके स्वादरूप विषय में और भौंरा कमलके गन्धरूप विषयमें आसक्त होनेके कारण बन्धनमें पड़कर यह पाँचों मरणको प्राप्त होजाते

हैं, जब इनका एक २ विषयमें आसक्त होनेके कारण नाश होजाता है तब जो पाँचों विषयोंमें निरन्तर आसक्त रहता है वह मनुष्य प्राणी दुःखी होगा इसका तो कहना ही क्या ? ॥ ७८ ॥

दोषेण तीव्रो विषयः कृष्णसर्पविषादपि । विषं निहन्ति भोक्तारं द्रष्टारं चक्षुषाप्ययं

अन्वय और पदार्थ-(विषयः) विषय (दोषेण) दोष करके (कृष्णसर्पविषात् अपि) काले सर्पके विषसे भी (तीव्रः) तीव्र है (विषम्) विष (भोक्तारम्) खाने वालेको (निहन्ति) मारता है (अयम्) यह विषय (चक्षुषा) चक्षुके द्वारा (द्रष्टारम्-अपि) देखनेवालेको भी [निहन्ति] मारदेता है ॥ ७९ ॥

भावार्थ-आसक्तिके साथ सेवन कियाहुआ शब्दादि विषय काले सर्पके विषसे भी अधिक तीव्र होता है, क्योंकि-विष तो केवल खानेपर ही नाश करता है परन्तु विषय तो नेत्रसे देखनेवालेका भी नाश करदेता है ७९

विषयाशामहापाशाद्यो विमुक्तः सुदुस्त्यजात् । स एव कल्पते मुक्त्यै नान्यः षट्शास्त्रवेद्यपि ॥ ८० ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (सुदुस्त्यजात्) अति कठिनाईसे छूटनेवाले (विषयाशामहापाशात्) विषयों की आशारूप बड़ीभारी फाँसीसे (विमुक्तः) छूटा है (सः-एव) वह ही (मुक्त्यै) मुक्तिके अर्थ (कल्पते)

समर्थ होता है (अन्यः) दूसरा (षट्शास्त्रवेदी-अपि) छहों शास्त्रोंका जाननेवाला भी (न) नहीं ॥ ८० ॥

भावार्थ जो मनुष्य, अत्यन्त कठिनाईसे छूटने योग्य विषयोंकी आशारूप बड़ीभारी फाँसीसे छूटजाता है वह ही मोक्ष पानेका पात्र होता है और दूसरा जो छहों शास्त्रोंका जाननेवाला हो तब भी मोक्षका अधिकारी नहीं होता है ॥ ८० ॥

आपातवैराग्यवतो मुमुक्षून् भवाब्धि-पारं प्रतियातुमुद्यतान् ।आशाग्रहो मज्ज-यतेऽन्तराले निगृह्य कण्ठे विनिवर्त्य वेगात् ॥ ८१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आपातवैराग्यवतः) ऊपरी वैराग्यवाले (भवाब्धिपारम्) संसारसमुद्रके पारको (प्रतियातुम्) जानेको (उद्यतान्) उद्यतहुए (मुमुक्षून्) मुमुक्षुओंको (आशाग्रहः) आशारूपी नाका (कण्ठे) कण्ठमें (निगृह्य) पकडकर (वेगात्) वेगसे (विनि-वर्त्य) पीछेको खेंचकर (अन्तराले) मध्यमें (मज्जयते) डुबादेता है ॥ ८१ ॥

भावार्थ-ऊपरी दिखावेका वैराग्य रखनेवाले जो मुमुक्षु संसारसमुद्रके पार जानेको उद्यत होते हैं उनको विषयभोगकी आशारूपी नाका गलेमें पकड़, वेगके साथ पीछेको खेंचकर मध्यमें डुबादेता है ॥ ८१ ॥

विषयाख्यग्रहो येन सुविरक्त्यासिना हतः। स गच्छति भवाम्भोधे पारं प्रत्यूहवर्जितः ॥ ८२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(येन) जिसने (सुविरक्त्यासिना) श्रेष्ठ वैराग्य तलवारसे (विषयाख्यग्रहः) विषय रूपी नाका (हतः) मारडाला है (सः) वह (प्रत्यूहवर्जितः) निर्विघ्नहुआ (भवाम्भोधेः) संसारसमुद्रके (पारम्) पारको (गच्छति) प्राप्त होता है ॥ ८२ ॥

भावार्थ-जो विषयोंकी आशारूप नाकेको दृढ वैराग्य तलवारसे मारडालता है वह मनुष्य, संसाररूपी समुद्र के पारको निर्विघ्न रीतिसें पहुँच जाता है ॥ ८२ ॥

विषमविषयमार्गैर्गच्छतोऽनच्छबुद्धेः। प्रतिपदमभियातो मृत्युरप्येष विद्धि। हितसुजनगुरूक्त्या गच्छतः स्वस्य युक्त्या। प्रभवति फलसिद्धिः सत्यमित्येव विद्धि॥

अन्वय और पदार्थ-(विषमविषयमार्गैः) विषयरूपीकठिनमार्गोंके द्वारा (गच्छतः) जातेहुए (अनच्छबुद्धेः) मलिनबुद्धिके (एषः) यह (मृत्युः-अपि) मृत्यु भी (प्रतिपदम्) प्रतिपद पर (अभियातः) पीछे २ जारहा है [इति] ऐसा (विद्धि) जान (हितसुजनगुरूक्त्या) हितकारी सज्जनगुरुके उपदेश करके (स्वस्य) अपनी (युक्त्या) युक्ति करके (गच्छतः) चलनेवालेकी (फल-

सिद्धिः) फलकी सिद्धि (प्रभवति) होती है (इति) ऐसा (सत्यम्-एव) सत्य ही (विद्धि) जान ॥ ८३ ॥

भावार्थ-मूढ़बुद्धि वाला जो मनुष्य विषयरूपी विषम मार्गोंमेंको चलाता है, पग२पर उसके पीछे मौत फिरती है, ऐसा जानो और जो मनुष्य, हितकारी तथा सज्जन गुरुके कथनानुसार युक्तिपूर्वक चलता है उसको अवश्य ही मुक्तिरूप फलकी सिद्धि प्राप्त होती है, ऐसा समझो

मोक्षस्य काङ्क्षा यदि वै तवास्ति त्यजातिदूराद्विषयान् विषं यथा । पीयूषवत्तोषदयाक्षमार्जवप्रशान्तिदान्तीर्भज नित्यमादरात् ॥ ८४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यदि) जो (वै) निश्चय (तव) तेरी (मोक्षस्य) मोक्षकी (काङ्क्षा) इच्छा (अस्ति) है [तर्हि] तो (विषयान्) विषयोंको (विषम्-यथा) विषकी समान (अतिदूरात्) बहुतदूरसे (त्यज) त्याग (नित्यम्) नित्य (आदरात्) आदरसे (पीयूषवत्) अमृतकी समान (तोषदयाक्षमार्जवप्रशान्तिदान्तीः) सन्तोष, दया, क्षमा सरलता परमशान्ति और दमको (भज) सेवन कर ॥ ८४ ॥

भावार्थ-यदि तुझको मोक्षको पानेकी इच्छा हो तो विषयोंको विषकी समान दूरसे ही त्यागदे, और सन्तोष दया, क्षमा, सरलता, शान्ति, तथा दमको अमृतकी समान समझकर नित्य आदरके साथ सेवन कर ।८४।

अनुक्षणं यत्परिहृत्य कृत्यमनाद्यविद्याकृतबन्धमोक्षणम् । देहः परार्थोऽयममुष्य पोषणे यः सज्जते सः स्वमनेन हन्ति ॥ ८५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यत्) जो (अनाद्यविद्याकृतबन्धमोक्षणम्) अनादि अविद्याके कियेहुए बन्धनसे छूटना (अनुक्षणम्) प्रतिक्षण (कृत्यम्) करना चाहिये [तत्] उसको (परिहृत्य) त्यागकर (अयम्) यह (देहः) शरीर (परार्थः) दूसरोंके काममें आता है (अमुष्य) इसके (पोषणे) पोषणमें (यः) जो(सज्जते) सन्नद्ध होता है (सः) वह (अनेन) इस कर्त्तव्यके द्वारा (स्वम्) अपने को (हन्ति) नष्ट करता है ॥ ८५ ॥

भावार्थ—अनादिकालसे लगीहुई अविद्याके कियेहुए बन्धनसे छूटनेका उपाय, कि—जो अवश्य करना चाहिये उसको छोड़कर जो पुरुष इस काक कूकर आदिके काम में आनेवाले शरीरका पोषण करनेमें लगा रहता है, वह मनुष्य अपने आप ही अपना सत्यानाश करता है ८५

शरीरपोषणार्थी सन् य आत्मानं दिदृक्षति । ग्राहं दारुधिया धृत्वा नदीं तर्त्तुं स गच्छति ॥ ८६ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यः) जो (शरीरपोषणार्थी सन्) शरीरको पुष्ट करनेका अभिलाषी होताहुआ (आत्मा-

नम्) आत्माको (दिदृक्षति) देखना चाहता है (सः) वह (दारुधिया) काष्ठकी बुद्धिसे (ग्राहम्) नाकेको (धृत्वा) पकड़ कर (नदीम्) नदीको (तर्त्तुम्) तरने को (गच्छति) जाता है ॥

भावार्थ–जो मनुष्य शरीरको पुष्ट करनेकी इच्छा रखकर आत्मसाक्षात्कार करना चाहता है, वह मानो ग्राह को काष्ठ समझकर उसके सहारेसे नदीके पार होना चाहता है ॥ ८६ ॥

मोह एव महामृत्युर्मुमुक्षोर्वपुरादिषु ।
मोहो विनिर्जितो येन स मुक्तिपदमर्हति

अन्वय और पदार्थ–(मुमुक्षोः) मोक्षकी इच्छा करने वालेका (वपुरादिषु) शरीर आदिमें (मोह एव) मोह ही (महामृत्युः) बड़ी भारी मृत्यु है (येन) जिसने (मोहः) मोह (विनिर्जितः) जीतलिया है (सः) वह (मुक्तिपदम्) मुक्तिपदको (अर्हति) योग्य होता है।८७।

भावार्थ–मुमुक्षु पुरुषका, शरीर आदि पदार्थोंमें मोह होना ही बड़ाभारी मरण है, जो पुरुष मोहको जीतलेता है वह ही मुक्तिपदको पानेका अधिकारी होता है

मोहं जहि महामृत्युं देहदारसुतादिषु। यं
जित्वा मुनयो यान्ति तद्विष्णोःपरमं पदं

अन्वय और पदार्थ–(देहदारसुतादिषु) शरीर स्त्री पुत्रादिकों में (मोहम्) मोहरूप (महामृत्युम्) महामृत्युको (जहि) मार (यम्) जिसको (जित्वा) जीत-

कर (मुनयः) मुनिजन (तत्) उस (विष्णोः) विष्णुके (परमम्) परम (पदम्) पदको (यान्ति) प्राप्त होते हैं

भावार्थ-हे शिष्य ! शरीर स्त्री पुत्रादिकोंमेंके मोह को, कि-जो महामृत्युरूप है मारडाल, कि-जिस मोहको जीतकर मुनिजन विष्णुके परमपद (मुक्ति) को पाते हैं

त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जास्थिसंकुलं पूर्णं मूत्रपुरीषाभ्यां स्थूलं निन्द्यमिदं वपुः

अन्वय और पदार्थ-(त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जास्थिसंकुलम्) त्वचा, मांस, रुधिर, नस, मेद, मज्जा और हड्डियोंसे व्याप्त (मूत्रपुरीषाभ्याम्) मूत्र और विष्टा से (पूर्णम्) भरा हुआ (इदम्) यह (स्थूलम्) स्थूल (वपुः) शरीर (निन्द्यम्) निन्दाके योग्य है ॥ ८९ ॥

भावार्थ-त्वचा, मांस, रुधिर नसें मेद मज्जा और हड्डियोंसे व्याप्त, तथा मूत्र और विष्टासे भराहुआ यह स्थूल शरीर घृणाके योग्य है ॥ ८९ ॥

पञ्चीकृतेभ्यो भूतेभ्यः स्थूलेभ्यः पूर्वकर्मणा । समुत्पन्नमिदं स्थूलं भोगायतनमात्मनः ॥ अवस्था जागरस्तस्य स्थूलार्थानुभवो यतः ॥ ९० ॥

अन्वय और पदार्थ-(आत्मनः) आत्माका (भोगायतनम्) भोगका स्थान (इदम्) यह (स्थूलम्) स्थूल शरीर (पञ्चीकृतेभ्यः) पञ्चीकरण किये हुए ((स्थूलेभ्यः)

स्थूल (भूतेभ्यः) पञ्चमहाभूतोंसे (पूर्वकर्मणा) पूर्वके कर्म करके (समुत्पन्नम्) उत्पन्न हुआ है (जागरः) जाग्रत (तस्य) उसकी (अवस्था) अवस्था है (यतः) जिससे (स्थूलार्थानुभवः) स्थूल पदार्थोंका अनुभव [भवति] होता है ॥ ६० ॥

(भावार्थ) आत्माका भोगोंको भोगनेका स्थान रूप यह स्थूल शरीर, पञ्चीकरणको प्राप्त हुए स्थूल पञ्च-महाभूतोंमेंसे पूर्वकर्मोंके अनुसार उत्पन्न हुआ है, जाग्रत् कहिये इन्द्रियोंसे अनेकों स्थूल विषयोंका अनुभव करना इसकी एक अवस्था है कि-जिससे यह उन स्थूल विषयों का अनुभव करता है ॥ ६० ॥

बाह्येन्द्रियैः स्थूलपदार्थसेवां स्रक्चन्द-नस्त्र्यादिविचित्ररूपाम् । करोति जीवः स्वयमेतदात्मना तस्मात्प्रशस्तिर्वपुषो-ऽस्य जागरे ॥ ६१ ॥

अन्वय और पदार्थ—(जीवः) जीव (बाह्येन्द्रियैः) बाहरी इन्द्रियोंके द्वारा (स्वयम्) आप (एतदात्मना) स्थूलरूप करके (स्रक्चन्दनस्त्र्यादिविचित्ररूपाम्) माला, चन्दन, स्त्री आदि नानाप्रकारकी (स्थूलपदार्थसेवाम्) स्थूल पदार्थोंकी सेवाको (करोति) करता है (तस्मात्) तिससे (जागरे) जाग्रत् अवस्था में (अस्य) इस (वपुषः) शरीरकी (प्रशस्ति) प्रशंसा [अस्ति] है

भावार्थ-जीव बाहरकी इन्द्रियोंसे स्वयं ही स्थूल शरीरके द्वारा माला, चन्दन और स्त्री आदि अनेकों प्रकारके स्थूल पदार्थोंको सेवन करता है, इस कारण जाग्रत् अवस्थामें स्थूल शरीर है, ऐसा कहा जाता है।६१।

सर्वोऽपि बाह्यसंसारः पुरुषस्य यदाश्रयः।
विद्धि देहमिदं स्थूलं गृहवद् गृहमेधिनः।

अन्वय और पदार्थ-(पुरुषस्य) पुरुषका (सर्वः-अपि) सब ही (बाह्यसंसारः) बाहरी संसार (यदाश्रयः) जिसके आश्रित है (इदम्) इस (स्थूलम्) स्थूल (देहम्) देहको (गृहमेधिनः) गृहस्थीके (गृहवत्) घरकी समान (विद्धि) जान ॥ ६२ ॥

भावार्थ-जैसे गृहस्थाश्रमीका घर होता है, तैसे ही जीवका यह स्थूल शरीर है, कि-जिसके आश्रयसे पुरुष का सकल बाहरी संसार चला करता है ॥ ६२ ॥

स्थूलस्य सम्भवजरामरणानि धर्माः
स्थौल्यादयो बहुविधाः शिशुताद्यवस्थाः
वर्णाश्रमादिनियमा बहुधामया स्युः।
पूजावमानबहुमानमुखा विशेषाः ॥६३॥

अन्वय और पदार्थ-(सम्भवजरामरणानि) जन्म, जरा, मरण (स्थौल्यादयः) स्थूलता आदि (बहुविधाः) बहुत प्रकार की (शिशुताद्यवस्थाः) बालकपन आदि अवस्थाएं (वर्णाश्रमादिनियमाः) वर्ण आश्रम आदि

नियम (बहुधा) बहुतप्रकारके (आमयाः) रोग (पूजावमानबहुमानमुखाः) पूजा, अपमान तथा बहुत मान आदि (विशेषाः) विशेष (स्थूलस्य) स्थूलके (धर्म्माः) धर्म (स्युः) हैं॥ ६३॥

भावार्थ–जन्म, जरा, मरण, स्थूलता आदि अवस्थाएँ, वर्ण तथा आश्रम आदिके नियम, अनेकोंप्रकारके रोग और पूजा, अपमान तथा अधिक सन्मान आदि सकल विशेषताएं स्थूल शरीरके धर्म हैं॥ ६३॥

बुद्धीन्द्रियाणि श्रवणं त्वगक्षि घ्राणं च जिह्वा विषयावबोधनात्। वाक्पाणिपादा गुदमप्युपस्थः कर्मेन्द्रियाणि प्रवणेन कर्मसु॥ ६४॥

अन्वय और पदार्थ-(श्रवणम्) कान (त्वक्) त्वचा (अक्षि) नेत्र (घ्राणम्) नासिका (च) और (जिह्वा) रसना (विषयावबोधनात्) विषयोंका ज्ञान करानेसे (बुद्धीन्द्रियाणि) ज्ञानेन्द्रिय (वाक्पाणिपादा) वाणी, हाथ, पैर (गुदम्) गुदा (उपस्थः-अपि) मूत्रेन्द्रिय भी (कर्मसु) कर्मोंमें (प्रवणेन) प्रवृत्त होनेसे (कर्मेन्द्रियाणि) कर्मेन्द्रिय [उच्यन्ते] कहे जाते हैं॥ ६४॥

भावार्थ-श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, घ्राण, और जिह्वा, यह विषयोंका ज्ञान कराती हैं, इस कारण ज्ञानेन्द्रिय कहाती हैं और वाणी, हाथ, पैर, गुदा तथा मूत्रेन्द्रिय यह कर्मों में प्रवृत्त होती हैं इसकारण कर्मेन्द्रिय कहाती हैं॥६४॥

निगद्यतेन्तःकरणं मनो धीरहङ्कृति-
श्चित्तमिति स्ववृत्तिभिः। मनस्तु सङ्कल्प-
विकल्पनादिभिर्बुद्धिः पदार्थाध्यवसाय
धर्मतः९५ अत्राभिमानादहमित्यहंकृतिः
स्वार्थानुसन्धानगुणेन चित्तम्।

अन्वय और पदार्थ-(अन्तःकरणम्) अन्तःकरण (स्ववृत्तिभिः) अपनी वृत्तियों करके (मनः) मन (धीः)बुद्धि (अहङ्कृतिः) अहंकार (चित्तम्) चित्त (इति) इस प्रकार(निगद्यते)कहा जाता है(सङ्कल्पविकल्पनादिभिः-तु) संकल्पविकल्प आदि करनेवाली वृत्तिओंसे तो(मनः)मन (पदार्थाध्यवसायधर्मतः)पदार्थोंका निश्चयरूप करना धर्मसे(बुद्धिः) बुद्धि (अत्र)इस शरीरादि में (अहम् इति)मैं हूँ ऐसा (अभिमानात्) अभिमान करनेसे (अहंकृतिः)अहंकार (स्वार्थानुसन्धानगुणेन)अपने विषयका अनुसन्धान करना रूप वृत्ति करके (चित्तम्) चित्त [भवति] होता है

भावार्थ–अन्तःकरण ही अपनी भिन्न २ वृत्तियोंके कारण मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त ऐसे चार प्रकार का कहाता है,जब यह संकल्प विकल्प आदिकी वृत्तियों से युक्त होता है तब मन कहलाता है, जब पदार्थोंके स्वरूपका निश्चय करने लगता है तब बुद्धि कहलाता है जब इस शरीर आदिमें 'मैं हूँ' ऐसा अभिमान करने लगता है तब अहंकार कहलाता है और जब अपने विषय का अनुसन्धान करने लगता है तब चित्त कहलाता है९५

प्राणापानव्यानोदानसमाना भवत्यसौ प्राणः । स्वयमेव वृत्तिभेदाद्विकृतेर्भेदात्-सुवर्णसलिलवत् ॥ ९६ ॥

अन्वय और पदार्थ (विकृतेः) विकारके (भेदात्) भेदसे (सुवर्णसलिलवत्) सोने और जलकी समान (असौ) यह (प्राणः) प्राण (स्वयम्-एव) अपने आप ही (वृत्तिभेदात्) वृत्तिके भेदसे (प्राणापानव्यानोदान-समानाः) प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान (भवति) होता है ॥ ९६ ॥

भावार्थ-जैसे सुवर्ण और जल आदि पदार्थ विकारों के भेदके कारण जुदे २ नामोंसे कहे जाते हैं तैसे ही प्राण भी अपनी भिन्न २ प्रकारकी वृत्तियोंके कारण प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान ऐसा पाँच प्रकारका गिना जाता है ॥ ९६ ॥

वागादि पञ्च श्रवणादि पंच प्राणादि पञ्चाभ्रमुखानि पञ्च । बुद्ध्याद्यविद्यापि च कामकर्मणी पुर्यष्टकं सूक्ष्मशरीरमाहुः।

अन्वय और पदार्थ-(वागादि) वाणी आदि (पञ्च) पाँच (श्रवणादि) श्रोत्र आदि (पञ्च) पाँच (प्राणादि) प्राण आदि (पञ्च) पाँच (अभ्रमुखानि) आकाश आदि (पंच) पाँच (बुद्ध्यादि) बुद्धि आदि (अविद्या) अविद्या (च) और (कामकर्मणी- अपि) काम और

कर्म भी (पुर्यष्टकम्) आठ पुरियोंको (सूक्ष्मशरीरम्) सूक्ष्म शरीर (आहुः) कहते हैं ॥ ६७ ॥

भावार्थ—वाणी आदि पाँच कर्मेन्द्रियें, श्रोत्र आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियें, प्राण आदि पाँच वायु, आकाश आदि पञ्चभूत, बुद्धि आदि चार प्रकारका अन्तःकरण अविद्या काम और कर्म इन मिलित आठ पुरियोंको सूक्ष्मशरीर कहते हैं ॥ ६७ ॥

इदं शरीरं शृणु सूक्ष्मसंज्ञितं लिङ्गं त्वपञ्चीकृतभूतसम्भवम् । सवासनं कर्म-फलानुभावकं स्वाज्ञानतोऽनादिरुपाधि-रात्मनः ॥ ६८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(शृणु) सुन (अपञ्चीकृतभूत-सम्भवम्) पञ्चीकरण नहीं किये हुए पञ्चभूतोंसे उत्पन्न हुआ (सवासनम्) वासनाओंसे भरा हुआ (कर्मफलानुभावकम्) कर्मोंके फलोंका अनुभव कराने वाला (इदम्) यह (सूक्ष्मशरीरसंज्ञितम्) सूक्ष्मशरीर नाम वाला (तु) वा (लिंगम्) लिंगशरीर (स्वाज्ञानतः) अपने स्वरूपके अज्ञानके कारण (आत्मनः) जीवकी (अनादिः) अनादिकालकी (उपाधिः) उपाधि [अस्ति]है

भावार्थ-हे शिष्य सुन ! पञ्चीकरण नहीं किये हुए पञ्चभूतोंसे उत्पन्न हुआ, वासनाओंसे भरा हुआ और कर्मोंके फलोंका अनुभव कराने वाला यह सूक्ष्म-

शरीर अथवा लिंगशरीर अपने स्वरूपके अज्ञानके कारण आत्माकी अनादि उपाधि है ॥ ९८ ॥

स्वप्नो भवत्यस्य विभक्त्यवस्था स्वमात्रशेषेण विभाति यत्र । स्वप्ने तु बुद्धिः स्वयमेव जाग्रत्कालीननानाविधवासनाभिः ॥ ९९ ॥ कर्त्रादिभावं प्रतिपद्य राजते यत्र स्वयं भाति ह्ययं परात्मा । धीमात्रकोपाधिरशेषसाक्षी न लिप्यते तत्कृतकर्मलेशैः । यस्मादसङ्गस्तत एव कर्मभिर्न लिप्यते किंचिदुपाधिनाः कृतैः

अन्वय और पदार्थ-(स्वप्नः) स्वप्न (अस्य) इसकी (विभक्त्यवस्था) स्वतन्त्रावस्था (भवति) होती है (यत्र) जिसमें (स्वमात्रशेषेण) निजमात्र शेषभावसे (विभाति) भासता है (स्वप्ने-तु) स्वप्नमें तो (बुद्धिः) बुद्धि (स्वयमेव) अपने आप ही (जाग्रत्कालीननानाविधवासनाभिः) जाग्रत् कालकी अनेकों प्रकारकी वासनाओं करके (कर्त्रादिभावम्) कर्त्ता आदिपनेको (प्रतिपद्य) पाकर (राजते) विराजता है (यत्र-हि) जिस अवस्थामें (धीमात्रकोपाधिः) बुद्धिमात्र उपाधि वाला (अशेषसाक्षी), सबका साक्षी (अयम्) यह (परात्मा) परमात्मा (स्वयम्) आप ही (भाति)

प्रकाशित होता है (तत्कृतकर्मलेशैः) तिस बुद्धिके किये हुए कर्मोंके लेशमात्रसे भी (न) नहीं (लिप्यते) लिप्त होता है (यस्मात्) जिससे (असंगः) असंग है (ततः-एव) तिस कारणसे ही (उपाधिना) उपाधि करके (कृतैः) किये हुए (कर्मभिः) कर्मों करके (किंचित्) कुछ भी (न) नहीं (लिप्यते) लिप्त होता है॥

भावार्थ-स्वप्न, ऊपर कहे हुए लिंगशरीरकी स्वतंत्र अवस्था है, कि-जिसमें लिंगशरीरमात्र ही शेष पड़ा हुआ देखनेमें आता है, स्वप्नावस्थामें बुद्धि स्वयं ही जाग्रत् अवस्थाके समयकी अनेकों प्रकारकी वासनाओं से कर्त्ता आदि रूप वाली होकर काम करती है इस अवस्थामें केवल बुद्धिरूप उपाधि वाला और सबका साक्षी यह परमात्मा स्वयं ही प्रकाशित होता है और बुद्धिके किये हुए कर्मोंके लेशमात्रसे भी लिप्त नहीं होता है, आत्मा स्वयं असङ्ग है, इसकारण ही उपाधिके किये हुए कर्मोंसे जरा भी लिप्त नहीं होता है ॥९९ ॥ १००॥

सर्वव्याप्तृतिकरणं लिंगमिदं स्याच्चिदात्मनः पुंसः । वास्यादिकमिव तक्ष्णस्तेनैवात्मा भवत्यसंगोऽयम् ॥ १०१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तक्ष्णः) तक्षाके (वास्यादिकम्-इव) वसूले आदिकी समान (इदम्) यह (लिंगशरीरम्) लिंगशरीर (चिदात्मनः) चेतनात्मा (पुंसः) पुरुषका (सर्वव्याप्तृतिकरणम्) सकल व्यापारोंका साधन

है (तेन-एव) तिस करके ही (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (असंगः) असङ्ग (भवति) होता है ॥१०१॥

भावार्थ-जैसे बढ़ईका व्यापार करनेवालेके साधन बसूला आदि होते हैं, तैसे ही चैतन्यरूप आत्माका, सकल व्यापारोंके करनेका साधन लिंगशरीर है और इसीकारण आत्मा असङ्ग है ॥ १०१ ॥

अन्धत्वमन्दत्वपटुत्वधर्माः सौगुण्य-वैगुण्यवशाद्धि चक्षुषः । वाधिर्यमूकत्व-मुखास्तथैव श्रोत्रादिधर्मा न तु वेत्तुरात्मनः

अन्वय और पदार्थ-(अन्धत्वमन्दत्वपटुत्वधर्माः) अन्धता मन्दता और दृष्टिकी समर्थतारूप धर्म (चक्षुषः) चक्षुके (सौगुण्यवैगुण्यवशात्-हि) श्रेष्ठता अधमताके कारण ही (तथा एव) तैसे ही (वाधिर्यमूकत्वमुखाः) बहिरापन गूँगापन आदि (श्रोत्रादिधर्माः) कान आदि के धर्म [सन्ति] हैं (वेत्तुः) साक्षी (आत्मनः-तु) आत्माके तो (न) नहीं [सन्ति] हैं ॥ १०२ ॥

भावार्थ-अन्धापन, दृष्टिकी कमी वा दृष्टिकी तीव्रता, यह सब चक्षुके धर्म हैं, क्योंकि-चक्षुकी उत्तमता अधमताके कारण होते हैं, इसीप्रकार बहिरापन, गूँगापन आदि भी कान-वाणी आदि इन्द्रियोंके धर्म हैं, साक्षीरूप आत्माके नहीं हैं ॥ १०२ ॥

उच्छ्वासनिःश्वासविजृम्भणक्षुत्प्रस्य-न्दमानाद्युत्क्रमणादिकाः क्रियाः । प्रा-

णादिकर्माणि वदन्ति तज्ज्ञाः प्राणस्य धर्मावशनापिपासे ॥ १०३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तज्ज्ञाः) विद्वान् (उच्छ्वासनिःश्वासविजृम्भणक्षुत्प्रस्पन्दनाद्युत्क्रमणादिकाः) श्वास लेना छोड़ना, जंभाई, छींक, हिलना, और उत्क्रमण आदि (क्रियाः) क्रियाओंको (प्राणादिकर्माणि) प्राण आदिके कर्म (अशनापिपासे) भूख प्यासको (प्राणस्य) प्राणके (धर्मौ) धर्म (वदन्ति) कहते हैं १०३

भावार्थ-ऊपरको श्वास लेना, नीचेको श्वास लेजाना जँभाई लेना, छींकना, हिलना चलना और एक शरीरमें से निकल कर दूसरे शरीरमें जाना, इत्यादि, क्रियाओं को, इसका तत्त्व जाननेवाले विवेकी, पुरुष, प्राण आदि का काम कहते हैं, तैसे ही भूख और प्यासको भी प्राणके ही धर्म कहते हैं ॥ १०३ ॥

अन्तःकरणमेतेषु चक्षुरादिषु वर्ष्माणि। अहमित्यभिमानेन तिष्ठत्याभासतेजसा अहङ्कारः स विज्ञेयः कर्त्तृभोक्त्यभिमान्ययम् । सत्त्वादिगुणयोगेन चावस्थात्रयमश्नुते ॥१०५॥ विषयाणामानुकूल्ये सुखी दुःखी विपर्यये । सुखं दुःखञ्च तद्धर्मः सदानन्दस्य नात्मनः ॥ १०६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एतेषु) इन (चक्षुरादिषु) नेत्रादिकोंमें (वर्ष्मणि) शरीरमें (आभासतेजसा) चिदाभासके तेज करके (अहम्-इति-अभिमानेन) मैं' ऐसे अभिमानके द्वारा (अन्तःकरणम्) अन्तःकरण (तिष्ठति) रहता है (सः) वह (कर्तृभोक्त्रभिमानी) कर्त्तापन और भोक्तापनके अभिमानवाला (अहङ्कारः) अहंकार (विज्ञेयः) जानना (अयम्) यह (सत्त्वादिगुणयोगेन) सत्त्व आदि गुणोंके योगसे (अवस्थात्रयम्-च) तीन अवस्थाओंको भी (अश्नुते) भोगता है (विषयाणाम्) विषयोंके (आनुकूल्ये) अनुकूल होने पर (सुखी) सुखी (विपर्यये) विपरीत होने पर (दुःखी) दुःखी [भवति] होता है (सुखम्) सुख (च) और (दुःखम्) दुःख (तद्धर्मः) उसका धर्म है (सदानन्दस्य) सदा आनन्दस्वरूप (आत्मनः) आत्माका (न) नहीं है ॥ १०४-१०६ ॥

भावार्थ-चक्षु आदि इन्द्रियोंमें और देहमें चिदाभासके तेजसे 'मैं' ऐसा अभिमान रखकर जो अन्तःकरण करता है, वही कर्त्तापनेके अभिमानवाला अहंकार है ऐसा समझना चाहिये, यह अहंकार ही सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणोंसे मिलकर तीन अवस्थाओंको भोगता है, विषय मिल जायँ तब सुखी होता है और न मिलें तब दुःखी होता है, इस कारण सुख और दुःख यह अहंकारके धर्म हैं, सदानन्द आत्माके नहीं हैं ॥ १०६ ॥

आत्मार्थत्वेन हि प्रेयान् विषयो न

स्वतः प्रियः । स्वत एव हि सर्वेषामात्मा प्रियतमो यतः ॥ १०७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विषयः) विषय (हि) निश्चय (आत्मार्थत्वेन) आत्माके अर्थ है इसकारण (प्रेयान्) परमप्रिय है (स्वतः) स्वयम् (प्रियः) प्रिय (न) नहीं है (यतः) क्योंकि (आत्मा) आत्मा (स्वतः-एव) स्वयं ही (सर्वेषाम्) सबका (प्रियतमः) परमप्रिय है

भावार्थ-विषय आत्माके निमित्त हैं, इसकारण ही प्यारे हैं, परन्तु स्वयं प्यारे नहीं हैं और आत्मा तो सब को स्वयं ही परमप्यारा है ॥ १०७ ॥

तत आत्मा सदानन्दो नास्य दुःखं कदाचन । यत्सुषुप्तौ निर्विषय आत्मानन्दोऽनुभूयते ॥ १०८ ॥ श्रुति प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानञ्च जाग्रति ।

अन्वय और पदार्थ-(ततः) तिससे (आत्मा) आत्मा (सदा) सदा (आनन्दः) आनन्दरूप है (अस्य) इसके (कदाचन) कभी (दुःखम्) दुःख (न) नहीं है (यत्) क्योंकि (सुषुप्तौ) सुषुप्ति अवस्थामें (निर्विषयः) विषयरहित (आत्मानन्दः) आत्मानन्द (अनुभूयते) अनुभव किया जाता है (जाग्रति) जाग्रत् अवस्थामें (श्रुतिः) वेद (प्रत्यक्षम्) प्रत्यक्ष (ऐतिह्यम्) लोक प्रसिद्धि (च) और (अनुमानम्) अनुमान [भवति] होता है ॥ १०८ ॥



भावार्थ-इसकारण आत्मा सर्वदा आनन्दरूप है इसको कभी दुःख नहीं होता है क्योंकि-सुषुप्तिमें विषयों के विना ही आत्मानन्दका अनुभव होता है जिसमें कि-जाग्रत् कालमें श्रुति, प्रत्यक्ष, लोकप्रसिद्धि और अनुमान प्रमाण है ॥ १०८ ॥

अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्तिरनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा। कार्यानुमेया सुधियैव माया यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते ॥ १०९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अव्यक्तनाम्नी) अव्यक्त नाम वाली (अनाद्यविद्या) अनादि अविद्यारूप (त्रिगुणात्मिका) त्रिगुणमयी (परा) पर (सुधिया-एव) पंडित करके ही (कार्यानुमेया) कार्योंसे अनुमान कीजानेवाली (परमेशशक्तिः)परमेश्वरकी शक्ति (माया) माया[कथ्यते] कहीजाती है (यया) जिस करके (इदम्) यह (सर्वम्) सब (जगत्) संसार (प्रसूयते) उत्पन्न होता है१०६

भावार्थ-'अव्यक्त' नामवाली, अनादि अविद्या रूप, त्रिगुणमयी, कार्योंसे पर और कार्योंके द्वारा पण्डितों करके अनुमान कीहुई जो परमेश्वरकी शक्ति है वह माया कहाती है, कि-जिससे यह सब जगत् उत्पन्न होता है ॥ १०६ ॥

सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो भिन्ना-

ऽप्युभयात्मिका नो। भिन्नाप्यभिन्नाप्यु-
भयात्मिका नो महाद्भुताऽनिर्वचनीय-
रूपा ॥ ११० ॥

अन्वय और पदार्थ (सत्) सच्ची (न) नहीं है (असत्-अपि) झूठी भी (न)नहीं है (उभयात्मिका-अपि) सत् और असत् दोनों स्वभाववाली भी (नो,नहीं है (भिन्ना) भिन्न (अभिन्ना) अभिन्न (अपि)और (उभयात्मिका अपि) भिन्न अभिन्न दोनों रूपवाली भी (नो) नहीं है (सत्) साकार (न) नहीं है (असत्-अपि) निराकार भी (न) नहीं है (उभयात्मिका-अपि) साकार निराकार दोनों स्वभाववाली भी (नो) नहीं है (महाद्भुता) परम अद्भुत(अनिर्वचनीयरूपा) अकथ-नीयस्वरूप [अस्ति] है ॥ ११० ॥

भावार्थ -यह माया सच्ची नहीं है, झूठी भी नहीं है और सच्चापन तथा झूठापन इन दोनों स्वभाव वाली भी नहीं है, आश्रयसे भिन्न नहीं है, अभिन्न भी नहीं है और भिन्न अभिन्न दोनों स्वरूपवाली भी नहीं है साकार नहीं है,निराकार नहीं है और साकारपना तथा निराकारपना दोनों स्वरूपवाली भी नहीं है, किन्तु परम अद्भुत अनिर्वचनीयरूपा है ॥ ११० ॥

शुद्धाद्वयब्रह्मविबोधनाश्या सर्पभ्रमो
रज्जुविवेकतो यथा । रजस्तमः सत्त्व-

मिति प्रसिद्धा गुणास्तदीयाः प्रथितैः स्वकार्यैः ॥ १११ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (रज्जुविवेकतः) रस्सीके ज्ञानसे (सर्पभ्रमः) सांपका भ्रम [नश्यति] नष्ट होता है [तथा] तैसे (शुद्धाद्वयब्रह्मविबोधनाश्या) शुद्ध अद्वितीय ब्रह्मके ज्ञानसे नष्ट होनेयोग्य है, (प्रथितैः) प्रसिद्ध (स्वकार्यैः) अपने कार्यों करके (रजः) रज (तमः) तम (सत्त्वम्) सत्त्व (इति) यह (गुणाः) उसके गुण (प्रसिद्धाः) प्रसिद्ध हैं ॥ १११ ॥

भावार्थ-जैसे रस्सीका ज्ञान होनेसे सर्पका भ्रम नष्ट होजाता है तैसे ही शुद्ध अद्वैतरूप ब्रह्मका ज्ञान होनेसे इस मायाका नाश होजाता है, कार्योंसे सत्त्व रज और तम यह तीन गुण मायाके हैं, ऐसा कहनेमें आता है।

विक्षेपशक्ती रजसः क्रियात्मिका यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी।रागादयोऽस्याः प्रभवन्ति नित्यं दुःखादयो ये मनसो विकाराः ॥ ११२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(क्रियात्मिका) क्रियारूप (विक्षेपशक्तिः) विक्षेपशक्ति (रजसः) रजोगुणकी है (यतः) जिससे (पुराणी) अनादिकालकी (प्रवृत्तिः) प्रवृत्ति (प्रसृता) फैली है (रागादयः) राग आदि(दुःखादयः) दुःख आदि (ये) जो (मनसः) मनके (विकाराः)

विकार हैं (नित्यम्) नित्य (अस्याः) इससे (प्रभवन्ति) उत्पन्न होते हैं ॥ ११२ ॥

भावार्थ-क्रियारूप जो विक्षेपशक्ति है वह रजोगुणकी है कि-जिससे यह अनादिकालकी प्रवृत्ति चली आरही है। रोग और दुःख आदि कि जो मनके विकार हैं वह सर्वदा विक्षेपशक्तिसे उत्पन्न होते हैं ॥ ११२ ॥

कामः क्रोधो लोभदम्भाद्यसूयाहङ्कारे-
र्ष्यामत्सराद्यास्तु घोराः । धर्मा एते
राजसा पुम्प्रवृत्तिर्यस्मादेषा तज्जरो बंधुहेतुः

अन्वय और पदार्थ-(कामः) काम (क्रोधः) क्रोध (लोभदम्भाद्यसूयाहङ्कारेर्ष्यामत्सराद्याः तु) लोभ, दम्भ, आदि, गुणोंमें दोषारोपण अहङ्कार, ईर्ष्या और मत्सर आदि (घोराः तु) घोरविकार तो (पाजसाः) रजोगुण के (धर्माः) धर्म हैं (यस्मात्) जिससे (एषा) यह (पुम्प्रवृत्तिः) लोकोंकी प्रवृत्ति होती है (तत्) तिससे (रजः) रजोगुण (बन्धुहेतुः) बन्धनका कारण है ११३

भावार्थ-काम, क्रोध, लोभ, दम्भ आदि तथा गुणोंमें दोषदृष्टि करनारूप असूया, अहङ्कार, ईर्ष्या और मत्सर आदि जो घोर विकार हैं वह रजोगुणके धर्म हैं कि—जिससे लोकोंकी यह प्रवृत्ति होती है, इसीकारण रजोगुण बन्धनका कारण कहाजाता है ॥११३॥

एषा वृतिर्नाम तमोगुणस्य शक्तिर्यया

वस्त्ववभासतेऽन्यथा । सैषा निदानं पुरुषस्य संसृतेर्विक्षेपशक्तेः प्रवणस्य हेतुः॥

अन्वय और पदार्थ-(यया) जिस करके (वस्तु) पदार्थ (अन्यथा) अन्यप्रकारका (अवभासते) प्रतीत होता है (एषा) यह (वृतिःनाम) आवरण शक्ति नामक (तमोगुणस्य) तमोगुणकी (शक्तिः) शक्ति है (सा) वह (एषा) यह (पुरुषस्य) पुरुषके (संसृतेः)संसारका (निदानम्) कारण है (विक्षेपशक्तेः) विक्षेप शक्तिके (प्रवणस्य) लगनेका (हेतुः) हेतु [अस्ति] है ११४

भावार्थ-आवरण शक्ति कि-जिससे एक प्रकारकी वस्तु दूसरे प्रकारकी दीखने लगती है, यह तमोगुणकी शक्ति है और यही पुरुषके संसारका कारण है तथा विक्षेपशक्तिके लगनेका कारण है ॥ ११४ ॥

प्रज्ञावानपि पण्डितोऽपि चतुरोप्यत्यन्तसूक्ष्मात्मदृक्, व्यालीढस्तमसा न वेत्ति बहुधा सम्बोधितोऽपि स्फुटम्। भ्रान्त्यारोपितमेव साधु कलयत्यालम्बते तद्गुणान्,हन्तासौ प्रबला दुरन्ततमसः शक्तिर्महत्यावृतिः ॥ ११५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्रज्ञावान्-अपि) बुद्धिमान्भी (पण्डितः-अपि) पण्डित भी (चतुरः-अपि) चतुर भी (अत्यन्तसूक्ष्मात्मदृक्) अत्यन्त सूक्ष्म विषयको जाननें


वाला [अपि] भी [पुरुषः] पुरुष (तमसां) तमोगुण करके (व्यालीढः) घिरा हुआ (बहुधा) बहुत प्रकारसे (स्फुटम्) स्पष्ट (सम्बोधितः अपि) समझाया हुआ भी (न) नहीं (वेत्ति) समझता है (भ्रान्त्या) भ्रान्ति करके (आरोपितम्-एव) माने हुएको ही (साधु) ठीक (कलयति) मानता है (तद्गुणान्) उसके गुणोंको (आलम्बते) आलम्बन करता है (हन्त) बडे खेदकी बात है (असौ) यह (महती) बड़ी भारी (आवृतिः) आवरण शक्तिरूप (दुरन्ततमसः) नीच परिणाम करने वाले तमोगुणकी (शक्तिः) शक्ति (प्रबला) प्रबल है ११५

भावार्थ–पुरुष बुद्धिमान्, पण्डित, चतुर और अत्यन्त सूक्ष्म विषयको जानने वाला होय तब भी यदि तमोगुणके चक्कर में आजाय तो उसको चाहे जैसे स्पष्ट रीतिसे समझाओ वह सच्ची बातको मानता ही नहीं, किन्तु भ्रान्तिसे मानी हुई बातको ही सच्ची मानता है, तथा उस भ्रान्तिके गुणों पर ही हट करे रहता है, हा! यह बड़ीभारी, बुद्धिको ढकने वाली आवरणशक्तिरूप, नीच परिणाम करने वाले तमोगुण की शक्ति बड़ी प्रबल है ॥ ११५ ॥

अभावना वा विपरीतभावना सम्भावना विप्रतिपत्तिरस्याः । संसर्गयुक्तं न विमुञ्चति ध्रुवं विक्षेपशक्तिः क्षपयत्यजस्रम् ॥ ११६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अस्याः) इस आवरण शक्तिके (संसर्गयुक्तम्) संसर्ग सहितको (अभावना) अश्रद्धा (वा) या (विपरीतभावना) उलटा निश्चय (सम्भावना) अर्धनिश्चय (विप्रतिपत्तिः) सन्देह (ध्रुवम्) निश्चय (न) नहीं (विमुञ्चति) छोड़ता है (विक्षेप) शक्ति (अजस्रम्) निरन्तर (क्षपयति) दुःख देती है ११६

भावार्थ-आवरण शक्तिके संसर्गवाले पुरुषको अविश्वास, उलटा निश्चय, अर्धनिश्चय और सन्देह यह कभी नहीं छोड़ते हैं और विक्षेपशक्ति निरन्तर दुःख दिया करती है ॥ ११६ ॥

अज्ञानमालस्यजड़त्वनिद्राप्रमादमूढत्वमुखास्तमोगुणाः । एतैः प्रयुक्तो नहि वेत्ति किंचिन्निद्रालुवत्स्तम्भवदेव तिष्ठति

अन्वय और पदार्थ-(अज्ञानम्) अज्ञान (आलस्यजड़त्वनिद्राप्रमादमूढत्वमुखाः) आलस्य, जड़ता, निद्रा प्रमाद और मूढ़ता आदि (तमोगुणाः) तम के गुण हैं (एतैः) इन करके (प्रयुक्तः) युक्त (किञ्चित्) कुछ (नहि) नहीं (वेत्ति) जानता है (निद्रालुवत्) ऊँघता हुआसा (स्तम्भवत्-एव) जड़ हुआसा ही (तिष्ठति) स्थित होता है ॥ ११७ ॥

भावार्थ-अज्ञान, आलस्य, जड़ता, निद्रा, असावधानी और मूढ़ता आदि तमोगुणके लक्षण हैं इन लक्षणों वाला पुरुष कुछ नहीं समझता है, किन्तु उनींदेकी समान जड़ सा बना बैठा रहता है ॥ ११७ ॥



सत्त्वं विशुद्धं जलवत्तथापि ताभ्यां मिलित्वा सरणाय कल्पते। यत्रात्मबिम्बः प्रतिबिम्बितः सन् प्रकाशयत्यर्क इवाखिलं जगत् ॥ ११८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सत्त्वम्) सत्त्वगुण (जलवत्) जलकी समान (विशुद्धम्) परम शुद्ध है (तथापि) तब भी (ताभ्याम्) तिनके साथ (मिलित्वा) मिलकर (सरणाय-कल्पते) लिङ्गशरीर रूपसे रचित होने को समर्थ होता है (यत्र) जिसमें (आत्मबिम्बः) आत्मा (प्रतिबिम्बितः-सन्) प्रतिबिम्बित होकर (अर्क इव) सूर्यकी समान (अखिलम्) सकल (जगत्) संसारको [प्रकाशयति] प्रकाशित करता है ॥ ११८ ॥

भावार्थ-सत्त्वगुण जो कि जलकी समान शुद्ध है, वह जब रजोगुण और तमोगुणसे मिलता है तब लिङ्गशरीररूप होता है, कि-जिस लिङ्गशरीरमें प्रतिबिम्बित हुआ आत्मा सूर्यकी समान सकल जगत्को प्रकाशित करता है ॥ ११८ ॥

मिश्रस्य सत्त्वस्य भवन्ति धर्माः स्वमानिताद्या नियमा यमाद्याः। श्रद्धा च भक्तिश्च मुमुक्षुता च दैवी च सम्पत्तिरसन्निवृत्तिः ॥ ११९ ॥

अन्वय और पदार्थ–(स्वमानिताद्याः) निरभिमानता आदि (नियमाः) नियम (यमाद्याः) यम आदि (श्रद्धा, च) श्रद्धा भी (भक्तिः च) भक्ति भी (मुमुक्षुता, च) मुमुक्षुपना भी (दैवी, सम्पत्तिः, च) दैवी सम्पत्ति भी (असन्निवृत्तिः) असत् से हटना (मिश्रस्य) मिले हुए (सत्त्वस्य) सत्त्वगुणके (धर्माः) धर्म [भवन्ति] होते हैं ॥ ११९ ॥

भावार्थ–निरभिमानीपना आदि नियम, यम आदि श्रद्धा, भक्ति, दैवी सम्पदा और दुष्ट वस्तुओंसे बचना यह मिले हुए सत्त्वगुणके धर्म हैं ॥ ११९ ॥

विशुद्धसत्त्वस्य गुणाः प्रसादः स्वात्मानुभूतिः परमा प्रशान्तिः । तृप्तिः प्रहर्षः परमात्मनिष्ठा यया सदानन्दरसं समृच्छति ॥ १२० ॥

अन्वय और पदार्थ–(प्रसादः) प्रसन्नता (स्वात्मानुभूतिः) अपने स्वरूपका अनुभव (परमा) परम (प्रशान्तिः) शान्ति (तृप्तिः) तृप्ति (प्रहर्षः) परमहर्ष (यया) जिस करके (सदा) सर्वदा (आनन्दरसम्) आनन्द रसको (समृच्छति) पाता है (सा) वह (परमात्मनिष्ठा) परमात्मामें निष्ठा (विशुद्धसत्त्वस्य) परम शुद्ध सत्त्वके (गुणाः) धर्म [सन्ति] हैं ॥ १२० ॥

भावार्थ–प्रसन्नता, अपने स्वरूपका अनुभव, परम शान्ति, तृप्ति, परमहर्ष और जिससे सदा आनन्दरस

मिलता है ऐसी परमात्मामें निष्ठा, यह शुद्ध सत्त्वगुण के धर्म हैं ॥ १२० ॥

अव्यक्तमेतत्त्रिगुणे निरुक्तं तत्कारणं नाम शरीरमात्मनः।सुषुप्तिरेतस्य विभक्त्यवस्था प्रलीनसर्वेन्द्रियबुद्धिवृत्तिः १२१

अन्वय और पदार्थ-(त्रिगुणे) तीनों गुणोंमें (निरुक्तम्) कहाहुआ (एतत्) यह(अव्यक्तम्) अव्यक्त है (तत्) वह (कारणं नाम) कारण नामवाला (आत्मनः) आत्माका (शरीरम्) शरीर (प्रलीनसर्वेन्द्रियबुद्धिवृत्तिः) जिसमें सकल इन्द्रियोंकी और बुद्धिकी वृत्तियें लीन होजाती हैं [सा] वह (सुषुप्तिः) सुषुप्ति (एतस्य) इसकी (विभक्त्यवस्था) स्वतन्त्र अवस्था है ॥ १२१ ॥

भावार्थ-इन तीनोंकी समान मात्रावाले तत्त्वको अव्यक्त कहते हैं और वह आत्माका कारण शरीर है। जिसमें सब इन्द्रियोंकी और बुद्धिकी वृत्तियें लय पाजाती हैं ऐसी सुषुप्ति, इस अव्यक्तकी स्वतन्त्र अवस्था है१२१

सर्वप्रकारप्रमितिप्रशान्तिर्बीजात्मनावस्थितिरेव बुद्धेः। सुषुप्तिरेतस्य किल प्रतीतिः किञ्चिन्न वेद्मीति जगत्प्रसिद्धा

अन्वय और पदार्थ-(सर्वप्रकारप्रमितिप्रशान्तिः) सब प्रकारके इन्द्रियादिक प्रमाणोंकी शान्ति (बुद्धेः)बुद्धिकी (बीजात्मना) बीजरूपसे (अवस्थितिः एव)स्थिति ही

(सुषुप्तिः) सुषुप्ति है (किल) निश्चय (किञ्चित्) कुछ (न) नहीं (वेद्मि) जानता हूँ (इति) इसप्रकार (एतस्य) इसकी (प्रतीतिः) प्रतीति (जगत्प्रसिद्धा) जगत्में प्रसिद्ध है ॥ १२२ ॥

भावार्थ–सब प्रकारके इन्द्रियादिक प्रमाणोंकी शांति और बुद्धिका बीजरूपसे रहना इसका नाम सुषुप्ति अवस्था है सुषुप्ति अवस्था वाला पुरुष, जागनेके अनन्तर 'मैं कुछ नहीं जानता था' ऐसे अपने अज्ञानके अनुभवको प्रसिद्ध करता है, इस बातको सब संसार जानता है इससे यह सिद्ध हुआ कि-आत्मा सुषुप्तिमें भी साक्षीरूपसे रहता है ॥ १२२ ॥

देहेन्द्रियप्रमाणमनोऽहमादयः सर्वे विकारा विषयाः सुखादयः । व्योमादिभूतान्यखिलञ्च विश्वमव्यक्तपर्यन्तमिदं ह्यनात्मा ॥ १२३ ॥

अन्वय और पदार्थ–(देहेन्द्रियप्राणमनोऽहमादयः) देह, इन्द्रियें, प्राण, मन और अहङ्कार आदि (सर्वे) सब (विकाराः) विकार (सुखादयः) सुख आदि (विषयाः) विषय (व्योमादिभूतानि) आकाश आदि भूत (अव्यक्तपर्यन्तम्) अव्यक्त पर्यन्त (इदम्) यह (अखिलम्) सकल (विश्वम् च) विश्व भी (हि) निश्चय (अनात्मा) अनात्मपदार्थ है ॥ १२३ ॥

भावार्थ-देह, इन्द्रियें प्राण, मन और अहङ्कार आदि सकल विकार, सुख आदि विषय, आकाश आदि भूत और अव्यक्त पर्यन्त विश्व भी, यह सब अनात्म पदार्थ हैं

मायामायाकार्यं सर्वं महदादि देहपर्यन्तम् । असदिदमनात्मकत्वं विद्धि मरुमरीचिकाकल्पम् ॥ १२४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(माया) माया (महदादि) महत्त्व आदि (देहपर्यन्तम्) शरीरपर्यन्त (सर्वम्) सब (मायाकार्यम्) मायाका कार्य (इदम्) यह (असत्) असत् हैं (अनात्मकत्वम्) अनात्मस्वरूपको (मरुमरीचिकाकल्पम्) मरुभूमिकी मरीचिकाके तुल्य (विद्धि)जान

भावार्थ-माया और महत्तत्त्वसे लेकर इस स्थूल शरीरपर्यन्त सकल मायाका कार्य अनात्मस्वरूप असत् और मरीचिकाके जलकी समान मिथ्या है, ऐसा समझना चाहिये ॥ १२४ ॥

अथ ते संप्रवक्ष्यामि स्वरूपं परमात्मनः यद्विज्ञाय नरो बन्धान्मुक्तः कैवल्यमश्नुते

अन्वय और पदार्थ-(अथ) अब (ते) तेरे अर्थ (परमात्मनः) परमात्माके (स्वरूपम्) स्वरूपको (प्रवक्ष्यामि) कहूँगा (यत्) जिसको (विज्ञाय) जानकर (बन्धात्) बन्धनसे (मुक्तः) मुक्त हुआ (नरः)मनुष्य (कैवल्यम्) मोक्षको (अश्नुते) पाता है ॥१२५॥

भावार्थ हे शिष्य ! अब तुझसे परमात्माका स्वरूप कहता हूँ, कि--जिसको जाननेसे मनुष्य बन्धनमेंसे मुक्त होकर मोक्ष पाता है ।। १२५ ।।

अस्ति कश्चित्स्वयं नित्यमहम्प्रत्ययलंबनः
अवस्थात्रयसाक्षी सत्पञ्चकोशविलक्षणः

अन्वय और पदार्थ -(स्वयम्) अपने आप (नित्यम्) सदा (अहम्प्रत्ययलम्बनः) मैं हूँ ऐसी प्रतीतिका आश्रय (अवस्थात्रयसाक्षी) तीनों अवस्थाओंका साक्षी (सत्) सत्यस्वरूप (पञ्चकोशविलक्षणः) पाँच कोशोंसे न्यारा (कश्चित्) कोई (अस्ति) है ॥ १२६ ॥

भावार्थ-हे शिष्य!मैं सदा हूँ.ऐसी प्रतीतिका आश्रय, तीनों अवस्थाओंका साक्षी,सत्स्वरूप,पाँच कोशोंसे न्यारा और जिसका मन वाणीसे वर्णन नहीं होसकता ऐसा कोई आत्मा है ॥ १२६ ॥

यो विजानाति सकलं जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु
बुद्धितद्वृत्तिसद्भावमभावमहमित्ययम् ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु) जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थामें (सकलम्) सब दृश्यको (बुद्धितद्वृत्तिसद्भावम्) बुद्धि और उसकी वृत्तियोंके भावको (अभावम्) अभावको (विजानाति) जानता है (इति) इसप्रकारका (अयम्) यह (अहम्)मैं हूँ

भावार्थ-जागतेमें, स्वप्न देखतेमें और घोर निद्रारूप सुषुप्तिमें सर्वदा जो सकल दृश्यको बुद्धिको तथा उसकी वृत्तियोंके भावको और अभावको जानता है वह,मैं ही हूँ



यः पश्यति स्वयं सर्वं यं न पश्यति कश्चन । यश्चेतयति बुद्ध्यादि न तद्यं चेतयत्ययम् ॥ १२८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (स्वयम्) अपनेआप (सर्वम्) सबको (पश्यति) देखता है (यम्) जिसको (कश्चन) कोई (न) नहीं (पश्यति) देखता है (यः) जो (बुद्ध्यादि) बुद्धि आदिको (चेतयति) चेतना देता है (तत्) वह (यम्) जिसको (न) नहीं (चेतयति) चेतना देता है (अयम्) यह आत्मा है ॥ १२८ ॥

भावार्थ-जो अपने आप सब पदार्थोंको जानता है, जिसको कोई भी पदार्थ नहीं जानता, जो स्वयं बुद्धि आदिको चेतना देता है और बुद्धि आदि जिसको चेतना नहीं देसकते वह ही आत्मा है ॥ १२८ ॥

येन विश्वमिदं व्याप्तं यन्न व्याप्नोति किंचन । आभारूपमिदं सर्वं यं भान्तमनुभात्ययम् ॥ १२९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इदम्) यह (विश्वम्) सब (येन) जिस करके (व्याप्तम्) व्याप्त है (यम्) जिस को (किञ्चन) कुछ भी (न) नहीं (व्याप्नोति) व्याप्त करता है (यम्) जिस (भान्तम्-अनु) प्रकाशित होनेके पीछे (इदम्) यह (आभारूपम्) आभासरूप (सर्वम्) सब (भाति) प्रकाशित होता है (अयम्) यह आत्मा है ॥ ११९ ॥

भावार्थ–जो अपने आप सब जगत्में व्याप्त है, जिस को कोई व्याप्त नहीं कर सकता है, जिसके प्रकाशके पीछे आभासरूप यह सब प्रकाशित होता है वह ही आत्मा है ॥ १२९ ॥

यस्य सन्निधिमात्रेण देहेन्द्रियमनोधियः । विषयेषु स्वकीयेषु वर्त्तंते प्रेरिता इव ॥ १३० ॥ अहङ्कारादिदेहान्ता विषयाश्च सुखादयः । वेद्यन्ते घटवद्येन नित्यबोधस्वरूपिणा ॥ १३१ ॥

अन्वय और पदार्थ–(यस्य) जिसकी (सन्निधिमात्रेण) समीपतामात्र करके (देहेन्द्रियमनोधियः) देह, इन्द्रियें मन और बुद्धि (प्रेरिता इव) प्रेरणा किये हुएसे (स्वकीयेषु) अपने (विषयेषु) विषयोंमें (प्रवर्त्तन्ते) प्रवृत्त होते हैं । (येन) जिस (नित्यबोधस्वरूपिणा) सदा ज्ञानस्वरूप करके (अहंकारादिदेहान्ताः) अहंकारसे लेकर देहपर्यन्त पदार्थ (च) और (सुखादयः) सुख आदि (विषयाः) विषय (घटवत्) घटकी समान (वेद्यंते) जाने जाते हैं (स,एव,आत्मा) वह ही,आत्मा है॥

भावार्थ-जिसके समीपमें रहनेसे ही शरीर इन्द्रिय मन और बुद्धि, मानो प्रेरणा किये हुए हैं इस प्रकार अपने२ विषयोंमें प्रवृत्त होते हैं । जैसे सूर्य घटको जानता है, तैसे ही जो नित्यबोधस्वरूप वस्तु अहंकारसेह दे-

पर्यन्तके पदार्थोंको तथा सुख आदि विषयोंको जानता है वह ही आत्मा है ॥ १३० ॥ १३१ ॥

एषोन्तरात्मा पुरुषः पुराणो निरन्तराखण्डसुखानुभूतिः । सदैकरूपः प्रतिबोधमात्रो येनेषिता वागसवश्चरन्ति ॥

अन्वय और पदार्थ-(एषः) यह (अन्तरात्मा) अंतर्यामी आत्मा (पुराणः) पुरातन (पुरुषः) पुरुष(निरन्तराखण्डसुखानुभूतिः) निरन्तर अखण्ड सुखका अनुभवरूप (सदा) सर्वदा (एकरूपः) एकरूप (प्रतिबोधमात्रः) ज्ञानस्वरूप [अस्ति] है (येन) जिस करके (इषिता) प्रेरणा कीहुई (वाक्)वाणी (असवः) प्राण (चरन्ति) प्रवृत्त होते हैं ॥ १३२ ॥

भावार्थ-यह अन्तर्यामी आत्मा पुरातनपुरुष है, निरन्तर तथा अखण्ड सुखका अनुभवरूप है सदा अविनाशी है और ज्ञानमात्र है, जिसकी प्रेरणासे वाणी और इन्द्रियें अपने २ विषयोंमें प्रवृत्त होती हैं ॥ १३२ ॥

अत्रैव सत्त्वात्मनि धीगुहायामव्याकृताकाश उशत्प्रकाशः । आकाश उच्चै रविवत्प्रकाशते स्वतेजसा विश्वमिदं प्रकाशयन् ॥ १३३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सत्त्वात्मनि) सत्त्वगुणमय (अत्रैव) इस ही (धीगुहायाम्) बुद्धिरूप गुफामें

(अव्याकृताकाशः) अव्याकृत आकाश है (आकाशे) आकाशमें (उशत्प्रकाशः) परमप्रकाशस्वरूप (रविवत्) सूर्यकी समान (स्वतेजसा) अपने तेज करके (इदम्) इस (विश्वम्) विश्वको (प्रकाशयन्) प्रकाशित करता हुआ (उच्चैः) अधिक (प्रकाशते) प्रकाशित होता है

भावार्थ–इस सत्त्वगुणमयी बुद्धिरूप गुफामें अव्याकृत आकाश है और उस आकाशमें प्रकाशस्वरूप आत्मा सूर्यकी समान बहुत ही प्रकाशित होरहा है कि-जिसके प्रकाशसे यह सब जगत् प्रकाशित है ॥ १३३ ॥

ज्ञाता मनोऽहङ्कृतिविक्रियाणां देहेन्द्रियप्राणकृतक्रियाणाम् । अयोऽग्निवत्ताननुवर्त्तमानो न चेष्टते नो विकरोति किञ्चन ॥ १३४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(मनोऽहंकृतिविक्रियाणाम्) मन तथा अहंकारके विकारोंका (देहेन्द्रियप्राणकृतक्रियाणाम्) देह इन्द्रियें और प्राणकी करी हुई क्रियाओंका (ज्ञाता) जाननेवाला (अयोऽग्निवत्) लोहेके अग्निकी समान (तान्, अनुवर्त्तमानः) उनका अनुसरण करता हुआ (न) नहीं (चेष्टते) चेष्टा करता है (नो) नहीं (किञ्चन) कुछ (विकरोति) विकारको प्राप्त होता है ॥ १३४ ॥

भावार्थ–मन तथा अहंकारके विकारोंको और देह इन्द्रियें तथा प्राणकी करी हुई क्रियाओंको जानने वाला, तथा जैसे लोहेके गोलेके साथमें अग्नि निर्लेप रहता है

तैसे ही इन मन आदि के साथमें रहता हुआ भी आत्मा स्वयं न तो कुछ क्रिया करता है और न कुछ विकारको ही प्राप्त होता है ॥ १३४ ॥

न जायते नो म्रियते न वर्धते न क्षीयते नो विकरोति नित्यः । विलीयमानेऽपि वपुष्यमुष्मिन्न लीयते कुम्भ इवाम्बरः स्वयम् ॥ १३५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(नित्यः) अविनाशी (न) नहीं (जायते) उत्पन्न होता है (न) नहीं (म्रियते) मरता है (न) नहीं (वर्धते) बढता है (न) नहीं (क्षीयते) क्षीण होता है (नो) नहीं (विकरोति) विकारको प्राप्त होता है (कुम्भे) घड़ेमें (अम्बरः इव) आकाश जैसे (अस्मिन्) इस (वपुषि) शरीरके (विलीयमाने अपि) विलीन होनेपर भी (स्वयम्) अपने आप (न) नहीं (लीयते) लीन होता है ॥ १३५ ॥

भावार्थ-यह अविनाशी आत्मा न जन्मता है, न मरता है; न बढता है, न घटता है, न विकारको प्राप्त होता है और जैसे घड़ा फूटजाने पर उसके भीतरका आकाश नष्ट नहीं होता है, तिसीप्रकार इस शरीरके विलीन होने पर भी यह आत्मा स्वयम् लयको नहीं पाता है ॥ १३५ ॥

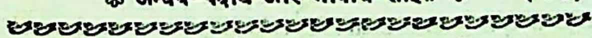
प्रकृतिविकृतिभिन्नः शुद्धबोधस्वभावः,

सदसदिदमशेषं भासयन्निर्विशेषः। विल-
सति परमात्मा जाग्रदादिष्ववस्थास्वह-
मिति साक्षात्साक्षिरूपेण बुद्धेः ॥१३६॥

अन्वय और पदार्थ–(प्रकृतिविकृतिभिन्नः) प्रकृति और विकारोंसे भिन्न (शुद्धबोधस्वभावः) शुद्धज्ञान स्वरूप (इदम्) इस (अशेषम्) सकल (सत्) कारण रूपको (असत्) कार्यरूपको (भासयन्) प्रकाशित करताहुआ (निर्विशेषः) सब प्रकारके विशेषोंसे रहित (परमात्मा) परमात्मा (अहम्, अहम् इति) मैं मैं इस प्रकार (बुद्धेः) बुद्धिके (साक्षिरूपेण) साक्षीरूपसे (जाग्रदादिषु) जाग्रत् आदि (अवस्थासु) अवस्थाओं में (साक्षात्) साक्षात् (विलसति) भासता है १३६

भावार्थ–प्रकृति तथा विकारोंसे पृथक्, शुद्ध ज्ञान स्वरूप, इस सकल कार्य कारणरूप जगत्को प्रकाश देता हुआ भी स्वयं सब प्रकारके विशेषोंसे रहित यह परमात्मा 'मैं मैं' इसप्रकार बुद्धिके साक्षीरूपसे जाग्रत् आदि अवस्थाओंमें साक्षात् भास रहा है ॥ १३६ ॥

नियमितमनसामुं त्वं स्वमात्मानमा-
त्मन्ययमहमिति साक्षाद्विद्धि बुद्धिप्रसा-
दात् । जनिमरणतरङ्गापारसंसारसिन्धुं
प्रतर भव कृतार्थो ब्रह्मरूपेण संस्थः ॥



अन्वय और पदार्थ-(त्वम्) तू (नियमितमनसा) नियममें किये हुए मनके द्वारा (बुद्धिप्रसादात्) बुद्धि के निर्मलपनेके द्वारा (अयम्) यह (अहम्) मैं [अस्मि] हूँ (इति) इस प्रकार (आत्मनि) मनमें (अमुम्) इस (स्वम्) अपने (आत्मानम्) आत्मस्वरूपको (साक्षात्) स्पष्ट (विद्धि) जान (जनिमरणतरङ्गापारसंसारसिंधुम्) जन्म मरणरूप तरङ्गोंसे अपार संसारसमुद्रको (प्रतर) तर (ब्रह्मरूपेण) ब्रह्मस्वरूप करके (संस्थः) स्थितहुआ (कृतार्थः) कृतकृत्य (भव) हो ॥ १३७ ॥

भावार्थ-हे शिष्य ! तू वशमें करे हुए मनसे और बुद्धिके स्वच्छपनेसे 'यह आत्मा मैं हूँ' इस प्रकार मनमें अपने स्वरूपका स्पष्ट निश्चय कर, जन्म तथा मरणरूपी तरङ्गोंसे जिसका पार पाना कठिन है, ऐसे संसाररूप समुद्रके पार होजा और ब्रह्मरूपसे रहकर कृतार्थ हो ॥

अत्रानात्मन्यहमिति मतेर्बन्ध एषो-
ऽस्य पुंसः, प्राप्तोऽज्ञानाज्जननमरण-
क्लेशसम्पातहेतुः । येनैवायं वपुरिदम-
सत्सत्यमित्यात्मबुद्ध्या,पुष्यत्युक्षत्यवति
विषयैस्तन्तुभिः कोशकृद्वत् ॥ १३८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अत्र) इस (अनात्मनि) अनात्म पदार्थमें (अहम्-इति) मैं हूँ ऐसी (मतेः) बुद्धि से (एषः) यह (अस्य) इस (पुंसः) पुरुषका (बन्धः)

बन्धन (अज्ञानात्) अज्ञानसे (प्राप्तः) प्राप्त हुआ है (जननमरणक्लेशसम्पातहेतुः) जन्ममरणरूप क्लेशोंके आपड़नेका हेतु [अस्ति] है (येन-एव) जिस अज्ञान के द्वारा ही (अयम्) यह प्राणी (इदम्) इस (असत्) मिथ्या (वपुः) शरीरको (सत्यम्) सत्य है (आत्म-बुद्ध्या) मैं हूँ ऐसी बुद्धि करके (तन्तुभिः) तन्तुओं करके (कोशकृत् वत्) कोशकार जैसे (विषयैः) विषयों करके (पुष्यति) पुष्ट करता है (उक्षति) सिंचन करता (अवति) पालन करता है ॥ १३८ ॥

भावार्थ-पुरुषको जो आत्मा नहीं है ऐसे इन शरीर आदिके विषैं 'यह मैं हूँ' ऐसी बुद्धिरूप बन्धन,अज्ञानसे प्राप्त हुआ है, कि-जिससे जन्ममरणके क्लेशोंका समूह ऊपर आपड़ा है, इस मिथ्या शरीरको सत्य और 'मैं हूँ' ऐसा समझ कर विषयोंके द्वारा पुष्ट करता है, सींचता है और रक्षा करता है, यह भी उस अज्ञानके कारण ही करता है कि-जिसके करनेसे, जैसे रेशमके बनाने वाले कीड़ेका आपा अपने बनाये हुए तन्तुओंसे बँधजाता है,

अतस्मिंस्तद्बुद्धिः प्रभवति विमूढस्य तमसा, विवेकाभावाद्वै स्फुरति भुजगे रज्जुधिषणा। ततोऽनर्थव्रातो निपतति समादातुरधिकस्ततोयोऽसद्ग्राहः,स हि भवति बन्धः शृणु सखे ॥ १३९ ॥



अन्वय और पदार्थ-[यथा] जैसे (वै) निश्चय (विवेकाभावात्) विवेकके न होनेसे (भुजगे) सर्पमें (रज्जुधिषणा) रज्जुबुद्धि (स्फुरति) उत्पन्न होती है [तथा] तैसे ही (तमसा) अज्ञान करके (विमूढस्य) विवेकहीन हुएकी (अतस्मिन्) अनात्मामें (तद्बुद्धिः) आत्मबुद्धिः (प्रभवति) उत्पन्न होती है (ततः)तिससे (समादातुः) ग्रहण करने वालेको (अधिकः) बहुत (अनर्थव्रातः) अनर्थोंका समूह (निपतति) निष्पन्न होता है (ततः) तिससे (यः) ;जो (असद्ग्राहः) मिथ्या आग्रह [भवति] होता है (सखे) प्रिय शृणु) सुन (हि) निश्चय (सः) वह (बन्धः) बन्धन है १३६

भावार्थ-जैसे विवेक न होनेके कारण सर्पमें 'यह रस्सी है' ऐसी बुद्धि होजाती है तैसे ही अज्ञानसे मूढ हुए पुरुषकी अनात्म देहादिमें आत्मबुद्धि होती है, इस बुद्धिके होनेसे अनात्माको आत्मा माननेवालेको अपार अनर्थोंका समूह उत्पन्न होने पर तिससे ही मिथ्या आग्रह उत्पन्न होजाता है, हे प्रिय ! सुन वह आग्रह ही बन्धन है ॥ १३६ ॥

अखण्डनित्याद्वयबोधशक्त्या स्फुरं-
तमात्मानमनन्तवैभवम् । समावृणोत्या-
वृतिशक्तिरेषा,तमोमयी राहुरिवार्कबिंबम्

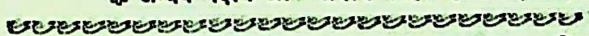
अन्वय और पदार्थ-(एषा) यह (तमोमयी) तमो-गुणस्वरूपा (शक्तिः) आवरणशक्ति (राहुः) राहु (अर्क-

बिम्बम् इव) सूर्यमण्डलको जैसे (अखण्डनित्याद्वयबोधशक्त्या) अखण्ड नित्य तथा एकरूप बोधशक्ति करके (स्फुरन्तम्) फुरते हुए (अनन्तवैभवम्) अनन्त महिमा वाले (आत्मानम्) आत्माको (समावृणोति) ढक लेती है ॥ १४० ॥

भावार्थ—अखण्ड, नित्य तथा एकरूप बोधशक्तिसे प्रकाशित और अनन्त महिमावाले आत्माको जैसे राहु सूर्यके बिम्बको ढक लेता है, वैसे ही यह तमोगुणमयी आवरणशक्ति ढक लेती है ॥ १४० ॥

तिरोभूते स्वात्मन्यमलतरतेजोवति पुमाननात्मानं मोहादयमिति शरीरं कलयति। ततः कामक्रोधप्रभृतिभिरमुं बन्धनगुणैर्वरं विक्षेपाख्या रजस उरुशक्तिर्व्यथयति ॥ १४१ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अमलतरतेजोवति) परमनिर्मल प्रकाशवाले (स्वात्मनि) आत्मस्वरूपके (तिरोभूते) ढक जाने पर (पुमान्) पुरुष (मोहात्) मोहसे (शरीरम्) शरीरको (अहम्-इति) मैं हूँ ऐसा (कलयति) मानता है (ततः) तदनन्तर (रजसः) रजोगुण की (विक्षेपाख्या) विक्षेप नामवाली (उरुशक्तिः) बड़ी शक्ति (कामक्रोधप्रभृतिभिः) काम क्रोध आदिके द्वारा (बन्धनगुणैः) बन्धनके गुणों करके (वरम्) बहुत (व्यथयति) पीड़ा देती है ॥ १४१ ॥



भावार्थ—अत्यन्त निर्मल प्रकाशवाले आत्मस्वरूपके ढक जाने पर, पुरुष मोहके कारण शरीरको, जो अनात्मा है, 'मैं हूँ' ऐसा मानने लगता है और ऐसा होजानेके अनन्तर रजोगुणकी विक्षेप नामवाली बड़ी भारी शक्ति, काम तथा क्रोध आदि बन्धनके गुणों (रज्जुओं) करके बाँधती हुई अत्यन्त ही पीड़ा देती है ॥ १४१ ॥

महामोहग्राहग्रसनगलितात्मावगमनो, धियो नानावस्थां स्वयमभिनयं तद्गुण-तया । अपारे संसारे विषयविषपूरे जल-निधौ, निमज्योन्मज्यायं भ्रमति कुमतिः कुत्सितगतिः ॥ १४२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(महामोग्राहग्रसनपलितात्माव-गमनः) महामोहरूपी नाके करके निगल जानेके कारण जिसको आत्मज्ञान नहीं रहा है (धियः) बुद्धिकी (नानावस्थाम्) अनेकों अवस्थाओंको (स्वयम्) आप (तद्गुणतया) उसके गुणोंवालेपनसे (अभिनयन्) वर्त्ताव करता हुआ (अयम्) यह (कुत्सितगतिः) कुमार्गसे चलनेवाला (कुमतिः) दुर्बुद्धि (विषयविष-पूरे) विषयरूपी विषसे भरे हुए (अपारे) अपार (संसारे) संसार (जलनिधौ) समुद्रमें (निमज्य) भीतरको डूब कर (उन्मज्य) ऊपरको उछल कर (भ्रमति) भ्रमता है



भावार्थ–महामोहरूपी नाकेने निगल लिया है इस कारण जिसको अपने वास्तविक स्वरूपका ज्ञान नहीं रहा है और जिसने अपनेको अनात्मा मान लेनेके कारण बुद्धिकी अनेकों दशाओंको अपने गुण मान कर उनके अनुसार बर्त्ताव किया है, ऐसा यह खोटे मार्गसे चलने वाला दुर्बुद्धि पुरुष, विषयरूपी विषसे भरेहुए इस अपार संसारसमुद्रमें गोते खा खाकर कभी डूबता और कभी उछलता हुआ भ्रम रहा है ॥ १४२ ॥

भानुप्रभासञ्जनिताभ्रपंक्तिर्भानुं तिरोधाय विजृम्भते यथा । आत्मोदिताहंकृतिरात्मतत्त्वं तथा तिरोधाय विजृम्भते स्वयम् ॥ १४३ ॥

अन्वय और पदार्थ–(यथा) जैसे (भानुप्रभासञ्जनिताभ्रपंक्तिः) सूर्यके तेजसे उत्पन्न हुई बादलोंकी पंक्ति, (भानुम्) सूर्यको (तिरोधाय) ढककर (विजृम्भते) फैलती है (तथा) तैसे (आत्मोदिता) आत्मा से उत्पन्न हुआ (अहंकृतिः) अहंकार (आत्मतत्त्वम्) आत्मतत्त्वको (तिरोधाय) ढक कर (स्वयम्) आप (विजृम्भते) फैलता है ॥ १४३ ॥

भावार्थ-जैसे सूर्यके तेजसे उत्पन्न हुई बादलोंकी पंक्ति सूर्यको ढककर अपने आप प्रकाशित होती है तैसे ही आत्मासे उत्पन्न हुआ अहंकार, आत्माको ढककर स्वयं प्रकाशित होता है ॥ १४३ ॥

कवलितदिननाथे दुर्दिने सान्द्रमेघै-
र्व्यथयति हिमझञ्झावायुरुग्रो यथैतान्।
अविरततमसात्मन्यावृते मूढबुद्धिं, क्षप-
यति बहुदुःखैस्तीव्रविक्षेपशक्तिः॥१४४॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (दुर्दिने) मेघाडम्बरके दिन (सान्द्रमेघैः) घने मेघों करके (कवलितदिननाथे) सूर्यके छिप जाने पर (उग्रः) तीक्ष्ण (हिमझञ्झावायुः) ठण्डा जोरका पवन (एतान्) इनको (व्यथयति) पीड़ा देता है [तथा] तैसे ही (अविरततमसा) निरन्तर तमोगुण करके (आत्मनि) आत्माके (आवृते) ढक जाने पर (तीव्रविक्षेपशक्तिः) विक्षेपशक्ति (मूढबुद्धिम्) मूढबुद्धिको (बहुदुःखैः) अनेकों दुःखोंके द्वारा (क्षपयति) पीड़ित करती है ॥ १४४ ॥

भावार्थ-जैसे मेघाडम्बरके दुर्दिनमें घनी घटाओंसे सूर्यके छुप जाने पर ठण्डा प्रचण्ड पवन, प्राणियोंको पीड़ा देता है, तैसे ही निरन्तर तमोगुण वा अज्ञानसे आत्माके आच्छादित होजाने पर बड़ी तीव्र विक्षेपशक्ति मूढबुद्धि पुरुषको अनेकों दुःखोंके द्वारा पीड़ा देती है ॥

एताभ्यामेव शक्तिभ्यां बंधः पुंसः समागतः। याभ्यां विमोहितो देहं मत्वाऽ-
त्मानं भवत्ययम् ॥ १४५ ॥



अन्वय और पदार्थ-(एताभ्याम्) इन (शक्तिभ्याम्, एव) शक्तियोंसे ही (पुंसः) पुरुषको (बन्धः) बन्धन (समागतः) प्राप्त हुआ है (याभ्याम्) जिन करके (अयम्) यह (देहम्) देहको (आत्मानम्) आत्मा (मत्वा) मानकर (विमोहितः) विशेष मोहग्रस्त (भवति)होता है

भावार्थ-इन दोनों आवरणशक्ति और विक्षेप शक्तिसे ही पुरुषको बन्धन हुआ है, कि-जिन शक्तियोंके कारण पुरुष देहको आत्मा मानकर अत्यन्त मोह (अज्ञान) में पड़ा हुआ है ॥ १४५ ॥

बीजं संसृतिभूमिजस्य तु तमो देहात्मधीरंकुरो, रागः पल्लवमम्बु कर्म तु वपुः स्कन्धोऽसवः शाखिका अग्राणीन्द्रियसंहतिश्च विषयाः पुष्पाणि दुःखं फलं नानाकर्मसमुद्भवं बहुविधं भोक्तात्र जीवः खगः ॥ १४६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तमः) आवरणशक्ति (संसृतिभूमिजस्य) संसाररूपी भूमिमें उत्पन्न हुए वृक्षका (बीजम्) बीज है (देहात्मधीः) शरीरमें आत्मबुद्धि (अंकुरः) अंकुर है (रागः) राग (पल्लवम्) पत्ता है (कर्म) कर्म (अम्बु) जल है (वपुः तु) शरीर तो (स्कन्धः) स्कन्ध है (असवः) प्राण (शाखिका) शाखा हैं (च) और (इन्द्रियसंहतिः) इन्द्रियोंका समूह

(अग्राणि) टहनी हैं (विषयाः) विषय (पुष्पाणि) फूल हैं (नानाकर्मसमुद्भवम्) अनेकों प्रकारके कर्मोंसे उत्पन्न हुआ (बहुविधम्) अनेकों प्रकारका (दुःखम्) दुःख (फलम्) फल है (अत्र) इस पर (भोक्ता) भोगने वाला (जीवः) जीव (खगः) पक्षी है ॥१४६॥

भावार्थ–संसाररूपी भूमिमें उत्पन्न होनेवाले वृक्षका बीज आवरणशक्ति है, शरीरको आत्मा मानना इसका अंकुर है, मोह इसके पत्ते हैं, सकाम कर्म करना मानो इस वृक्षको जलसे सींचना है, स्थूल-सूक्ष्म लिङ्ग शरीर-रूप इसके गुद्दे हैं, प्राण इसकी शाखा हैं, इन्द्रियोंका समूह इसकी टहनियें हैं, शब्दादि विषय इस वृक्षके फूल हैं, अनेकों प्रकारके कर्मोंसे उत्पन्न हुआ नानाप्रकार का दुःख ही इस वृक्षका फल है और उस दुःखको भोगनेवाला जीव ही इस वृक्ष पर बैठनेवाला पक्षी है ॥

अज्ञानमूलोऽयमनात्मबन्धो नैसर्गि-
कोऽनादिरनन्त ईरितः । जन्माप्ययव्या-
धिजरादिदुःखप्रवाहपातं जनयत्यमुष्य ।

अन्वय और पदार्थ–(अज्ञानमूलः) अज्ञान है जड़ जिसकी ऐसा (अयम्) यह (नैसर्गिकः) स्वाभाविक (अनात्मबन्धः) अनात्मपदार्थोंका बन्धन (अनादिः) नहीं है आदि जिसकी ऐसा (अनन्तः) नहीं है अन्त जिसका ऐसा (ईरितः) कहा है (अमुष्य) इसके (जन्माप्ययव्याधिजरादिदुःखप्रवाहपातम्) जन्म, मरण

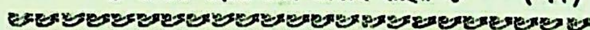
व्याधि और जरा आदि दुःखोंके प्रवाहमें पतनको (जनयति) उत्पन्न करता है ॥ १४७ ॥

भावार्थ–जिसका आदिकारण अज्ञान है ऐसा यह अनात्मपदार्थोंका बन्धन जीवका स्वभावसा होरहा है और जिसको अनादि और अनन्त कहा है, यह ही इस जीवको जन्म, मरण, रोग और बुढ़ापे आदिके कारण होनेवाले दुःखोंके प्रवाहमें डालता है ॥ १४७ ॥

नास्त्रैर्न शस्त्रैरनिलेन वन्हिना छेत्तुं न शक्यो न च कर्मकोटिभिः । विवेकविज्ञानमहासिना विना धातुः प्रसादेन सितेन मंजुना ॥ १४८ ॥

अन्वय और पदार्थ–[अयम्] यह (धातुः) विधाता के (प्रसादेन) अनुग्रह करके (सितेन) चमकते हुए (मञ्जुलेन) मनोहर (विवेकविज्ञानमहासिना विना) विवेकविज्ञानरूप बड़े भारी खड्गके विना (अस्त्रैः) अस्त्रों करके (न) नहीं (शस्त्रैः) शस्त्रों करके (न) नहीं (अनिलेन) पवन करके (वन्हिना) अग्नि करके (न) नहीं (च) और (कर्मकोटिभिः) करोड़ों कर्मों करके (छेत्तुम्) काटनेको (न) नहीं (शक्यः) समर्थ है ॥ १४८ ॥

भावार्थ–यह बन्धन, ईश्वरकी कृपासे सजाये हुए सुन्दर विवेक और विज्ञानरूप बड़ेभारी खड्गके विना दूसरे अस्त्रोंसे, शस्त्रोंसे, वायुसे, अग्निसे और करोड़ों कर्मोंसे भी नहीं काटा जासकता ॥ १४८ ॥



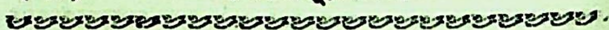
श्रुतिप्रमाणैकमतेः स्वधर्मनिष्ठा तयै-वात्मविशुद्धिरस्य। विशुद्धबुद्धेः परमात्म-वेदनं तेनैव संसारसमूलनाशः ॥१४९॥

अन्वय और पदार्थ-(श्रुतिप्रमाणैकमतेः) वेदको ही अद्वितीय प्रमाण माननेवालेकी (स्वधर्मनिष्ठा) अपने धर्ममें श्रद्धा [भवति] होती है (तया एव) उस करके ही (अस्य) इसकी (आत्मविशुद्धिः) अन्तःकरणकी शुद्धि [भवति] होती है, (विशुद्धबुद्धेः) शुद्ध बुद्धिवाले को (परमात्मवेदनम्) परमात्माका ज्ञान [भवति]होता है (तेन-एव) उसके द्वारा ही (संसारसमूलनाशः) संसारका मूलसहितनाश [भवति] होता है ॥१४९॥

भावार्थ-वेदको ही प्रमाण माननेसे स्वधर्ममें श्रद्धा होने लगती है,ऐसा होने पर ही इस प्राणीके अंतःकरण की शुद्धि होती है, तब इसको परमात्माका ज्ञान होता है और परमात्मस्वरूपका ज्ञान होते ही संसारका समूल नाश होजाता है ॥ १४९ ॥

कोशैरन्नमयाद्यैः पञ्चभिरात्मा न सम्वृतो भाति । निजशक्तिसमुत्पन्नैः शैवलपटलैरिवाम्बु वापिस्थम् ॥१५०॥

अन्वय और पदार्थ-(निजशक्तिसमुत्पन्नैः) अपनी शक्तिसे ही उत्पन्न हुए (अन्नमयाद्यैः) अन्नमय आदि (पञ्चभिः) पाँच (कोशैः) कोशोंसे (सम्वृतः) ढका



हुआ (आत्मा) आत्मा (शैवलपटलैः) सिवारके समूहों करके (वापिस्थम्) वावड़ीमें स्थित (अम्बु इव) जल जैसे (न) नहीं (भाति) प्रतीत होता है ॥ १५० ॥

भावार्थ–जो कि–अपनी शक्ति मायासे ही उत्पन्न हुआ है ऐसे अन्नमय आदि पाँच कोशोंसे ढका हुआ आत्मा इस प्रकार प्रतीत नहीं होता, कि–जैसे सिवार के समूहोंसे ढकाहुआ वावडीमेंका जल नहीं दीखता है

तच्छैवालापनये सम्यक् सलिलं प्रतीयते शुद्धम्। तृष्णासन्तापहरं सद्यः सौख्यप्रदं परं पुंसः॥१५१॥पञ्चानामपि कोशानामपवादे विभात्ययं शुद्धः। नित्यानन्दैकरसः प्रत्यग्रूपः परं स्वयंज्योतिः॥

अन्वय और पदार्थ–(तच्छैवालापनये) उस सिवार को हटा देने पर (सद्यः) शीघ्र ही (पुंसः) पुरुषकी (तृष्णासन्तापहरम्) प्यास और खेदको दूर करनेवाला (परम्) अत्यन्त (सौख्यप्रदम्) सुखका देनेवाला (शुद्धम्) शुद्ध (जलम्) जल सम्यक् (भले प्रकार) (प्रतीयते) प्रतीत होता है (पञ्चानाम्, अपि) पाँचों ही (कोशानाम्) कोशोंके (अपवादे) अपवाद होने पर (अयम्) यह (शुद्धः) शुद्ध (नित्यानन्दैकरसः) नित्य आनन्द एकरस (परम्) पर (स्वयंज्योतिः) स्वयंप्रकाश (प्रत्यग्रूपः) प्रत्यगात्मा (विभाति) स्पष्ट प्रतीत होता है

भावार्थ-जैसे शैवालको अलग कर देने पर निर्मल, प्यास और खेदको हरनेवाला और पुरुषको तत्काल परम सुख देनेवाला उत्तम जल स्पष्ट प्रतीत होने लगता है, तैसे ही पञ्चकोशोंका आवरण दूर होने पर शुद्ध, नित्य आनन्द, एकरस, पर और स्वयंप्रकाश यह प्रत्यक् आत्मा स्पष्ट प्रतीत होने लगता है ॥ १५१ ॥ १५२ ॥

आत्मानात्मविवेकः कर्त्तव्यो बन्धमुक्तये विदुषा । तेनैवानन्दी भवति स्वं विज्ञायैव सच्चिदानन्दम् ॥ १५३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विदुषा) विद्वान् करके (बन्धमुक्तये) बन्धनसे मुक्तिके लिये (आत्मानात्मविवेकः) आत्मा और अनात्मपदार्थका विवेक (कर्त्तव्यः) करना चाहिये (तेन एव) तिस करके ही (सच्चिदानन्दम्) सच्चिदानन्द (स्वम्) अपनेको (विज्ञाय एव) जान कर ही (आनन्दी भवति) आनन्दित होता है ॥१५३॥

भावार्थ-बुद्धिमान् पुरुषको बन्धनसे छूटनेके निमित्त आत्मा तथा अनात्मपदार्थका विवेक करना चाहिये कि जिससे अपने सच्चिदानन्दस्वरूपको जान कर आनन्द पाता है ॥ १५३ ॥

मुंजादिषीकामिव दृश्यवर्गात्प्रत्यञ्चमात्मानमसङ्गमक्रियम् । विविच्य तत्र प्रविलाप्य सर्वं तदात्मना तिष्ठति यः स मुक्तः ॥ १५४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (मुञ्जात्) मूँजमेंसे (इषीकाम् इव) सींकको जैसे (दृश्यवर्गात्) दृश्यसमूह मेंसे (असङ्गम्) सङ्गरहित (अक्रियम्) क्रियारहित (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक् (आत्मानम्) आत्माको (विविच्य) विवेक करके (तत्र) उसमें (सर्वम्) सबको (प्रविलाप्य) विलीन करके (तदात्मना) तद्रूप करके (तिष्ठति) स्थित होता है (सः) वह (मुक्तः) मुक्त [भवति] होता है

भावार्थ-जैसे मूँजमेंसे सींकको खेंच लेते हैं तिसी प्रकार जो पुरुष इन दीखनेवाले पाँच कोशोंमेंसे असङ्ग और क्रियारहित प्रत्यगात्माका विवेचन करके तिस प्रत्यगात्मामें ही सबोंको लीन करके तिस प्रत्यागात्मा स्वरूप करके ही स्थित होता है, उस पुरुषको ही मुक्त मानना चाहिये ॥ १५४ ॥

देहोऽयमन्नभवनोऽन्नमयस्तु कोश-
श्चान्नेन जीवति विनश्यति तद्विहीनः ।
त्वक्चर्ममांसरुधिरास्थिपुरीषराशिर्नायं
स्वयं भवितुमर्हति नित्यशुद्धः ॥१५५॥

अन्वय और पदार्थ-(अयम्) यह (देहः) शरीर (अन्नभवनः) अन्नसे उत्पन्न हुआ है (अन्नेन) अन्न करके (जीवति) जीता है (तद्विहीनः-तु) तिस करके रहित हुआ तो (विनश्यति) विनष्ट होता है [अतः] इसकारण (अन्नमयः) अन्नमय (कोशः) कोश है (त्वक्चर्ममांसरुधिरास्थिपुरीषराशिः) त्वचा, चर्म, मांस,

रुधिर, हड्डी और विष्टाका समूहरूप (अयम्) यह अन्नमयकोश (स्वयम्) आप (नित्यशुद्धः) नित्यशुद्ध (भवितुम्) होनेको (न) नहीं (अर्हति) योग्य होता है

भावार्थ-यह शरीर अन्नसे उत्पन्न हुआ है, अन्नसे ही जीवित रहता है और अन्नके विना विनष्ट होजाता है, इसकारण यह अन्नमय है, त्वचा, चर्म,मांस,रुधिर, हड्डी और विष्टाका ढेररूप यह अन्नमय शरीर स्वयं नित्य शुद्ध आत्मा नहीं होसकता ॥ १५५ ॥

पूर्वं जनेरपि मृतेरपि नायमस्ति,
जातक्षणः क्षणगुणोऽनियतस्वभावः ।
नैको जडश्च घटवत्परिदृश्यमानः, स्वा-
त्मा कथं भवति भावविकारवेत्ता १५६

अन्वय और पदार्थ-(अयम्) यह (जनेः) जन्मसे (पूर्वम्-अपि) पहिले भी (मृतेः) मरणके [पश्चात्] पीछे (अपि) भी (न) नहीं (अस्ति) है (जातक्षणः) उत्पन्न होनेके वर्तमान कालमें होनेवाला (क्षणगुणः) क्षणिकगुणवाला (अनियतस्वभावः) अनियमित स्वभाव वाला (नैकः) अनेकरूप (घटवत्) घड़ेकी समान (जडः) जड़ (परिदृश्यमानः) दीखता हुआ (च) भी (भावविकारवेत्ता) सकल भावोंके विकारोंको जानने वाला (स्वात्मा) आत्मा (कथम्) कैसे (भवति) होता है १५६

भावार्थ-यह शरीर, कि-जो जन्मसे पहिले नहीं था और मरणके पीछे भी नहीं रहता है, केवल वर्तमान

कालमें ही देखनेमें आता है, अनिश्चित स्वभाववाला है घड़ेकी समान देखनेमें आता है और क्षण २ में बदलने वाले गुणोंवाला है ऐसा यह देह, सकल जन्म आदि विकारोंका जाननेवाला आत्मा कैसे होसकता है।१५६।

पाणिपादादिमान् देहो नात्मा व्यङ्गे-ऽपि जीवनात्। तत्तच्छक्तेरनाशाच्च न नियम्यो नियामकः ॥ १५७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(व्यङ्गे अपि) अङ्गोंरहित होने पर भी (जीवनात्) जीवनसे (पाणिपादादिमान् ,हाथ पैर आदिवाला (देहः) शरीर (आत्मा) आत्मा (न) नहीं है (तत्तच्छक्तेः) तिन २ शक्तियोंके (अनाशात् च) नाश न होनेसे भी (नियम्यः) नियम्य (न) नहीं है (नियामकः) नियामक है ॥ १५७ ॥

भावार्थ-हाथ पैर आदि अवयवों वाला यह शरीर आत्मा नहीं है, क्योंकि-जब हाथ पैर आदि अवयव नहीं होते हैं, तो शरीर मरजाता है, परन्तु आत्मा अखण्डित रहता है, आत्माकी शक्तियोंका नाश नहीं होता है और देहकी शक्तियोंका होजाता है, इसकारण आत्मा देह नहीं है, किन्तु देहका नियंता है ॥ १५७ ॥

देहतद्धर्मतत्कर्मतदवस्थादिसाक्षिणः। स्वत एव स्वतः सिद्धं तद्वैलक्षण्यमात्मनः

अन्वय और पदार्थ-(देहतद्धर्मतत्कर्मतदवस्थादिसाक्षिणः) शरीर उसके धर्म, कर्म और अवस्था आदिके

साक्षी (आत्मनः) आत्माका (तद्वैलक्षण्यम्) तिससे विलक्षणपना (स्वत एव) अपने स्वरूपसे ही (स्वतः सिद्धम्) स्वयं सिद्ध है ॥ १५८ ॥

भावार्थ-आत्मा, देहका, देहके धर्मोंका, देहके कर्मोंका और देहकी अवस्था आदिका साक्षी है, इसकारण आत्मा में अपने आपसे ही देहसे विलक्षणपना सिद्ध होता है १५८

शल्यराशिर्मांसलिप्तो मलपूर्णोऽतिकश्मलः । कथं भवेदयं वेत्ता स्वयमेतद्विलक्षणः ॥ १५९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(शल्यराशिः) हाड़ोंका समूह (मांसलिप्तः) मांससे लिहसा हुआ (मलपूर्णः) मलसे भराहुआ (अतिकश्मलः) अत्यन्त घिनौना (अयम्) यह शरीर (स्वयम्) अपने आप (एतद्विलक्षणः) इस से विलक्षण (वेत्ता) साक्षी (कथम्) कैसे (भवेत्)हो ॥

भावार्थ-यह शरीर जो कि-ज्ञानरहित, हाड़ोंका ढेर रूप, मांससे लिहसा हुआ, मलोंसे भरा हुआ और अत्यन्त बीभत्स है वह क्या आत्मा होसकता है? क्योंकि-आत्मा जाननेवाला है, हाड़ोंका समूहरूप नहीं है, मांससे लिहसा नहीं है, मलसे भरा नहीं है और अतिबीभत्स भी नहीं है ॥ १५९ ॥

त्वङ्मांसमेदोऽस्थिपुरीषराशावहंमतिं मूढजनः करोति। विलक्षणं वेत्ति विचारशीलो निजस्वरूपं परमार्थभूतम् १६०

अन्वय और पदार्थ–(मूढजनः) मूढबुद्धि पुरुष (त्वङ्मांसमदोस्थिपुरीषराशौ) त्वचा, मांस, चरवी, हड्डी और विष्टाके समूहमें (अहंमतिम्) अहं बुद्धिको (करोति) करता है (विचारशीलः) विचारवान् (परमार्थभूतम्) परमार्थभूत (निजस्वरूपम्) अपने स्वरूप को (विलक्षणम्) विलक्षण (वेत्ति) जानता है १६०

भावार्थ–यह शरीर, जो त्वचा, मांस, चरवी, हड्डी और विष्टाका समूहरूप है, तिसको मूढ बुद्धि वाला पुरुष, 'मैं हूँ' ऐसा मानता है और विचारवाला पुरुष तो परमार्थरूप अपने स्वरूपको देहसे विलक्षण जानता है

देहेऽहमित्येव जडस्य बुद्धिर्देहे च जीवे विदुषस्त्वहंधीः । विवेकविज्ञानवतो महात्मनो ब्रह्माहमित्येव मतिः सदात्मनि

अन्वय और पदार्थ–(अहम्) मैं (देहः) देह [अस्मि] हूँ (इति) ऐसी (जडस्य-एव) जड़की ही (देहे) देह में (बुद्धिः) बुद्धि [भवति] होती है (च) और (विदुषः तु) विद्वान्‌की तो (जीवे) जीवमें (अहंधीः) अहम्बुद्धि [भवति] होती है (विवेकविज्ञानवतः) विवेक विज्ञान वाले (महात्मनः) महात्माकी (सदात्मनि) सत्स्वरूप आत्मामें (अहम्) मैं (ब्रह्म) ब्रह्म [अस्मि] हूँ (इत्येव) ऐसी ही (मतिः) बुद्धि [भवति] होती है ॥ १६१ ॥


भावार्थ–मूढबुद्धि पुरुष, देहको ही 'मैं हूँ' ऐसा मानता है, समझदार पुरुष, जीवको 'मैं हूँ' ऐसा मानता है और विवेक तथा विज्ञानवाला महात्मा तो आत्माको ही सदा 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा मानता है ॥ १६१ ॥

अत्रात्मबुद्धिं त्यज मूढबुद्धे, त्वङ्मांस-मेदोऽस्थिपुरीषराशौ। सर्वात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पे कुरुष्व शान्तिं परमां भजस्व।

अन्वय और पदार्थ–(मूढबुद्धे) हे मूढबुद्धि पुरुष (आत्मबुद्धिम्) आत्मबुद्धिको (त्वङ्मांसमेदोस्थिपुरीष-राशौ) त्वचा, मांस मेद हड्डी और विष्ठाके ढेरमें (त्यज) त्याग (सर्वात्मनि) सबके आत्मास्वरूप (निर्वि-कल्पे) विकल्परहित (ब्रह्मणि) ब्रह्ममें (कुरु) कर (परमाम्) परम (शान्तिम्) शान्तिको (भजस्व) सेवन कर ॥ १६१ ॥

भावार्थ–हे मूढ ! जो कि–त्वचा, मांस, मेद, हड्डी और विष्ठाका ढेररूप है ऐसे इस शरीरको 'मैं हूँ' ऐसा मानना छोडदे और सबका आत्मारूप जो निर्विकल्प ब्रह्म है, वह ही 'मैं हूँ' ऐसा निश्चय रखकर परमशान्ति को प्राप्त कर ॥ १६२ ॥

देहेन्द्रियादावसतिं भ्रमोदितां विद्वान-हन्तां न जहाति यावत्। तावन्न तस्या-

स्ति विमुक्तिवार्त्ताप्यस्त्वेष वेदान्तनया-
न्तदर्शी ॥ १६३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यावत्) जबतक (विद्वान्) जाननेवाला (असति) मिथ्याभूत (देहेन्द्रियादौ) देह-इन्द्रिय आदिमें (भ्रमोदिताम्) भ्रमसे उत्पन्न हुई (अह-न्ताम्) अहम्बुद्धिको (न) नहीं (जहाति) त्यागता है (तावत्) तब तक (एषः) यह (वेदान्तनयान्तदर्शी, अपि) वेदान्तकी नीतिका पारगामी भी (अस्तु) हो (तस्य) उसकी (विमुक्तिवार्ता) विमुक्तिकी बात (न) नहीं (अस्ति) है ॥ १६३ ॥

भावार्थ--जब तक विवेकी पुरुष, इन देह और इन्द्रिय आदि मिथ्या पदार्थोंमें भ्रान्तिसे होनेवाली अहम्बुद्धि (मैं हूँ ऐसी बुद्धि) को नहीं त्यागता है तब तक वह चाहे स्वयं वेदान्तशास्त्रका पारगामी ही क्यों न हो उस की मुक्ति कहने मात्रको भी नहीं होती है ॥ १६३ ॥

छायाशरीरे प्रतिबिम्बगात्रे यत्स्वप्न-
देहे हृदि कल्पिताङ्गे । यथात्मबुद्धिस्तव
नास्ति काचिज्जीवच्छरीरे च तथैव मास्तु

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (छायाशरीरे) पर-छाहींके शरीरमें (प्रतिबिम्बगात्रे) प्रतिबिम्बके देहमें (हृदि) हृदयमें (कल्पिताङ्गे) हृदयमें कल्पना करे हुए शरीरमें (स्वप्नदेहे) स्वप्नके देहमें (यथा) जैसे (तव)

तेरी (कचित्) कुछ (आत्मबुद्धिः) अहं बुद्धि (नास्ति) नहीं है (तथैव) तैसे ही (जीवच्छरीरे च) जीवित शरीरमें भी (मास्तु) मत हो ॥ १६४ ॥

भावार्थ–जैसे परछाहींके शरीरमें, जल दर्पण आदि में प्रतिबिम्बरूपसे दीखनेवाले देहमें स्वप्नमें देखेहुए अपने शरीरमें और हृदयमें कल्पना करेहुए शरीरमें तू कभी भी 'मैं हूँ' ऐसी बुद्धि नहीं करता है,तैसे ही इस जीवित शरीरमें भी मत रख ॥ १६४ ॥

देहात्मधीरेव नृणामसद्धियां जन्मादि दुःखप्रभवस्य बीजम् । यतस्ततत्वं जहि तां प्रयत्नात्त्यक्ते तु चित्ते न पुनर्भवाशा

अन्वय और पदार्थ (असद्धियाम्) मलिनबुद्धिवाले (नृणाम्) मनुष्योंकी (देहात्मधीः, देहात्मबुद्धिही(यतः) क्योंकि–(जन्मादिदुःखप्रभवस्य) जन्म आदिके दुःखोंकी उत्पत्तिका (बीजम्) आदिकारण है (ततः) तिससे(त्वम्) तू (ताम्) उस असद्बुद्धिको (प्रयत्नात्) प्रयत्नसे (जहि) त्याग (चित्ते) चित्तके (त्यक्ते) इससे छूटजाने पर (पुनर्भवाशा), पुनर्जन्मकी आशा (न) नहीं [अस्ति] है ॥ १६५ ॥

(भावार्थ)–मलिन बुद्धिवाले मनुष्योंका देहमें 'मैं हूँ' ऐसा अभिमान ही जन्म मरण आदिके दुःखोंके उत्पन्न होनेका बीज है, इसकारण प्रयत्न करके चित्तसे इस अभिमानको छोड़दे, चित्तके इस मलसे मुक्त होजाने पर फिर जन्म होनेकी आशा नहीं है ॥ १६५ ॥

कर्मेन्द्रियैः पञ्चभिरञ्चितोऽयं प्राणो भवेत्प्राणमयस्तु कोशः। येनात्मवानन्नमयोन्नपूर्णात्प्रवर्त्ततेऽसौ सकलक्रियासु

अन्वय और पदार्थ-(पञ्चभिः) पांच (कर्मेन्द्रियैः) कर्मेन्द्रियों करकै (अञ्चितः) युक्त (अयम्) यह (प्राणः तु) प्राण तो (अन्नमयः) अन्नमय (कोशः) कोश (भवेत्) हो (येन) जिस करकै (अन्नपूर्णात्) अन्नसे भरा होनेके कारण (अन्नमयः) अन्नमय (असौ) यह (आत्मवान्) आत्मावाला (सकलक्रियासु) सकलक्रियाओंमें (प्रवर्त्तते) प्रवृत्त होता है ॥ १६६ ॥

(भावार्थ)-पांच कर्मेन्द्रियों सहित जो प्राण हैं वह प्राणमयकोश कहाता है, अन्नसे पूर्ण होनेके कारण ही अपने स्वरूपसे प्रतीत होनेवाला यह अन्नमय कोश जिस प्राणमयकोशके द्वारा सकल क्रियाओंमें प्रवृत्त होता है १६६

नैवात्मापि प्राणमयो प्राणविकारो गन्तागन्ता वायुवदन्तर्बहिरेषः। यस्मात्किञ्चित्क्वापि न वेत्तीष्टमनिष्टं स्वं वान्यं वा किंचन नित्यं परतन्त्रः ॥ १६७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वायुविकारः) वायुका विकार-रूप (प्राणमयः अपि) प्राणमय कोश भी (आत्मा) आत्मा (न-एव) नहीं ही [अस्ति] है (एषः) यह

(वायुवत्) वायुकी समान (अन्तः) भीतर (गन्ता) जानेवाला (बहिः) बाहर (आगन्ता) आनेवाला [अस्ति] है (यस्मात्) जिससे (क्वापि) किसी समयभी (किंचत्) कुछ (इष्टम्) अच्छेको (अनिष्टम्) बुरेको (स्वम्) अपनेको (वा) या (अन्यम्) दूसरेको (वा) या (किञ्चन) कुछ (न) नहीं (वेत्ति) जानता है (नित्यम्) सदा (परतन्त्रः) पराधीन है ॥ १६७ ॥

(भावार्थ)-प्राणमय कोश भी आत्मा नहीं है, क्यों कि यह कोश वायुका विकाररूप है, वायुकी समान भीतर बाहर आता जाता है, किसी इष्ट या अनिष्टको अथवा अपने वा परायेको किसी समय कुछभी नहीं जानता है और सदा परतन्त्र है ॥ १६७ ॥

ज्ञानेन्द्रियाणि च मनश्च मनोमयः स्यात्कोशो ममाहमिति वस्तुविकल्पहेतुः । संज्ञादिभेदकलनाकलितो बलीयांस्तत्पूर्वकोशमभिपूर्य विजृम्भते यः ॥

अन्वय और पदार्थ-(ज्ञानेन्द्रियाणि) ज्ञानेन्द्रियें (च) और (मनः च) मन भी (मनोमयः) मनोमय (कोशः) कोश (स्यात्) हो (यः) जो (मम-अहम् इति) मेरा है, मैं हूँ ऐसे (वस्तुविकल्पहेतुः) वस्तुओंमें कल्पनाका कारण (संज्ञादिभेदकलनाकलितः) नाम आदि भेदोंकी रचनासे भराहुआ (बलीयान्) बलवान् (तत्पूर्व-

कोशम्) अपनेसे पहिले कोशको (अभिपूर्य) पूर्ण करके (विजृम्भते) बढ़ता है ॥ १६८ ॥

(भावार्थ)-पाँच ज्ञानेन्द्रियें और मन मिल कर मनोमय कोश कहलाता है, इस कोशसे ही वस्तुओंमें मैं और मेरा ऐसी कल्पनाएँ होती हैं, नाम आदि भेदोंकी रचनाओंसे भराहुआ यह बलवान् कोश अपनेसे पहिले कोशोंको पूर्ण करके वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ १६८ ॥

पञ्चेन्द्रियैः पंचभिरेव होतृभिः प्रचीयमानो विषयाज्यधारया । जाज्वल्यमानो बहुवासनेन्धनैर्मनोमयाग्निर्वहति प्रपञ्चम् ॥ १६९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(पञ्चेन्द्रियैः,एव) पाँच इन्द्रियरूप ही (पञ्चभिः) पाँच (होतृभिः) हवन करनेवालों करके (विषयाज्यधारया) विषयरूपी घृतकी धाराके द्वारा (प्रचीयमानः) बढ़ाया हुआ, (बहुवासनेन्धनैः) अनेकों वासनारूपी ईंधनोंके द्वारा (जाज्वल्यमानः) प्रज्वलित किया हुआ (मनोमयाग्निः) मनोमयकोशरूप अग्नि (प्रपञ्चम्) प्रपञ्चको (वहति) दिखाता है।

(भावार्थ)-पाँच होताओंकी समान पाँच इन्द्रियोंने विषयरूप घृतकी धारासे जिसको बढ़ाया है और बहुतसी विषय वासनारूप काठोंसे प्रज्वलित हुआ यह मनोमय कोशरूप अग्नि प्रपञ्चको दिखाता है ॥ १६९ ॥

न ह्यस्त्यविद्या मनसोऽतिरिक्ता मनो ह्यविद्याभवबन्धहेतुः । तस्मिन् विनष्टे सकलं विनष्टं विजृम्भतेऽस्मिन् सकलं विजृम्भते ॥ १७० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अविद्या) अविद्या (मनसः) मनसे (अतिरिक्ता) पृथक् (नहि) नहीं (अस्ति) है (हि) क्योंकि (मनः) मनःस्वरूप (अविद्या) अविद्या (भवबन्धहेतुः) संसाररूपी बन्धनका कारण है (तस्मिन्) तिसके (विनष्टे) विनाशको प्राप्त होनेपर (सकलम्) सब (विनष्टम्) विनष्ट [भवति] होता है (अस्मिन्) इसके (विजृम्भते) बढ़ने पर (सकलम्) सब (विजृम्भते) बढ़ता है ॥१७०॥

(भावार्थ)-अविद्या मनसे जुदी नहीं है, जो मन है वही संसाररूपी बन्धनका कारण अविद्या है, मनका नाश होनेपर तिस सकल प्रपञ्चका नाश होजाता है और मनके फैलने पर यह सकल प्रपञ्चभी फैलने लगता है ॥

स्वप्नेऽथ शून्ये सृजति स्वशक्त्या भोक्त्रादि विश्वं मन एव सर्वम् । तथैव जाग्रत्यपि नो विशेषस्तत्सर्वमेतन्मनसो विजृम्भणम् ॥ १७१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथ) और (शून्ये) शून्य

(स्वप्ने) स्वप्नमें (मनः-एव) मन ही (स्वशक्त्या) अपनी शक्ति करके (भोक्त्रादि) भोक्ता आदि (सर्वम्) सकल (विश्वम्) विश्वको (सृजति) रचता है (तथैव) तिसप्रकारही (जाग्रति-अपि) जाग्रत् अवस्थामें भी (विशेषः) विशेष (नो) नहीं है (तत्) तिससे (एतत्) यह (सर्वम्) सब (मनसः) मनका (विजृम्भणम्) फैलाव है ॥ १७१ ॥

(भावार्थ)-स्वप्नमें दूसरे किसीके न होनेपर भी मन ही अपनी शक्तिसे भोक्ता आदि सकल जगत्को उत्पन्न करता है और जैसे स्वप्नमें उत्पन्न करता है तैसे ही जाग्रत्में भी यह मनही उत्पन्न करता है, स्वप्नमें और जाग्रत्में कुछ भेद नहीं है, इसकारण यह सब प्रपञ्च मनका ही कल्पना करा हुआ है ॥ १७१ ॥

सुषुप्तिकाले मनसि प्रलीने नैवास्ति किंचित्सकलप्रसिद्धेः। अतो मनःकल्पित एव पुंसः संसार एतस्य न वस्तुतोऽस्ति

अन्वय और पदार्थ-(सुषुप्तिकाले) सुषुप्तिकालमें (मनसि) मनके (प्रलीने) लीन होनेपर (किञ्चित् एव) कुछभी (न) नहीं (अस्ति) है (सकलप्रसिद्धेः) सबमें प्रसिद्ध (अतः) इस कारणसे (एतस्य) इस (पुंसः) पुरुषका (संसारः) संसार (मनःकल्पितः एव) मनका कल्पना किया हुआ ही है (वस्तुतः) वास्तविक (न) नहीं (अस्ति) है ॥ १७२ ॥

(भावार्थ)-सुषुप्तिकालमें मनका लय होजाता है तब कुछ भी नहीं रहता है, यह बात सबके अनुभवमें है, इस कारण पुरुषका यह संसार मनका ही कल्पना कियाहुआ है, वास्तविक नहीं है ॥ १७२ ॥

वायुना नीयते मेघः पुनस्तेनैव नीयते ।
मनसा कल्प्यते बंधो मोक्षस्तेनैव कल्प्यते

अन्वय और पदार्थ-(मेघः) मेघ (वायुना) वायु करके (आनीयते) लाया जाता है (पुनः) फिर (तेन-एव) तिस करके ही (नीयते) लेजाया जाता है (बन्धः) बन्धन (मनसा) मन करके (कल्प्यते) कल्पना किया जाता है (तेन-एव) तिस करके हीं (मोक्षः) मोक्ष (कल्प्यते) कल्पना किया जाता है ॥ १७३ ॥

भावार्थ-जैसे बादलोंको वायु लाता है और फिर वायु ही उनको हटाकर लेजाता है, तैसे ही बन्धनका कल्पना करनेवाला और उसको दूर करनेवाला मन ही है

देहादिसर्वविषये परिकल्प्य रागं बध्नाति तेन पुरुषं पशुवद् गुणेन । वैरस्यमत्र विषवत्सुविधाय पश्चादेनं विमोचयति तन्मन एव बन्धात् ॥ १७४ ॥

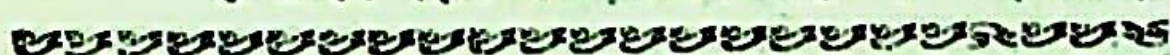
अन्वय और पदार्थ-(मनः) मन (देहादिसर्वविषये) देह आदि सकल विषयमें (रागम्) रागको (परिकल्प्य) उत्पन्न करके (तेन) तिस करके (पुरुषम्) पुरुषको

(गुणेन) रस्सी करके (पशुवत्) पशुओंको जैसे (बध्नाति) बाँध लेता है (पश्चात्) पीछे (तत्-एव) वह मन ही (अत्र) इस देहादिमें (विषवत्) विषकी समान (वैरस्यम्) वैराग्यको (सुविधाय) पूर्णतया उत्पन्न करके (एनम्) इस पुरुषको (बन्धात्) बन्धनसे, (विमोचयति) छुटाता है ॥ १७४ ॥

भावार्थ—जैसे मनुष्य डोरीसे पशुको बाँधता है तैसे ही मन, देह आदि सब विषयोंमें आसक्तिको उत्पन्न करके उस आसक्तिसे ही पुरुषको बाँध देता है और पीछे वह ही मन, विषयोंमें वैराग्यको उत्पन्न करके पुरुषको बन्धनसे छुटा भी देता है ॥ १७४ ॥

तस्मान्मनः कारणमस्य जन्तोर्बन्धस्य मोक्षस्य च वा विधाने। बन्धस्य हेतुर्मलिनं रजोगुणैर्मोक्षस्य शुद्धं विरजस्तमस्कम् ॥ १७५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तस्मात्) तिससे (मनः) मन (अस्य) इस (जन्तोः) प्राणीके (बन्धस्य) बन्धनके (वा) या (मोक्षस्य) मोक्षके (च) भी (विधाने) करनेमें (कारणम्) कारण है (रजोगुणैः) रजः और तमोगुण करके (मलिनम्) मलिन (बन्धस्य) बन्धनका (विरजस्तमस्कम्) रजोगुण तथा तमोगुणसे रहित (शुद्धम्) शुद्ध (मोक्षस्य) मोक्षका (हेतुः) कारण है



भावार्थ-इसकारण मन ही, पुरुषके बन्धनका और छूटनेका कारण है, मन यदि रजोगुण और तमोगुणसे मैला हो तब बन्धनका कारणरूप होता है, और यदि रजोगुण तथा तमोगुणसे रहित होकर शुद्ध होजाय तब मोक्षका कारणरूप होता है ॥ १७५ ॥

विवेकवैराग्यगुणातिरेकाच्छुद्धत्वमा-
साद्य मनो विमुक्त्यै । भवत्यतो बुद्धिमतो
मुमुक्षोस्ताभ्यां दृढाभ्यां भवितव्यमग्रे ॥

अन्वय और पदार्थ-(मनः) मन (विवेकवैराग्य-गुणातिरेकात्) विवेक और वैराग्य गुणके बढनेसे (शुद्धत्वम्) शुद्धताको (आसाद्य) प्राप्त होकर (विमुक्त्यै) मुक्तिके अर्थ (भवति) होता है (अतः) इससे (बुद्धिमतः) बुद्धिमान् (मुमुक्षोः) मुमुक्षुके (ताभ्याम्) तिन दोनों करके [अग्रे] आगे (दृढाभ्याम्) दृढ (भवितव्यम्) होना चाहिये ॥ १७६ ॥

भावार्थ-विवेक और वैराग्यरूप गुणके बढनेसे मन, मुक्तिको पानेमें समर्थ होता है, इसकारण बुद्धिमान् मुमुक्षुको चाहिये कि-वह पहिले विवेक और वैराग्यको दृढ करे ॥ १७६ ॥

मनोनाम महाव्याघ्रो विषयारण्यभूमिषु ।
चरत्यत्र न गच्छन्तु साधवो ये मुमुक्षवः ॥



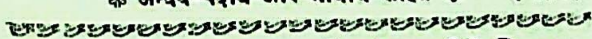
अन्वय और पदार्थ-(विषयारण्यभूमिषु) विषयरूपी वनकी भूमियोंमें (मनः नाम) मन नाम वाला (महा-व्याघ्रः) बड़ा व्याघ्र (चरति) विचरता है (ये) जो (मुमुक्षवः) मोक्ष चाहनेवाले (साधवः) साधु हैं [ते] वह (अत्र) यहाँ (न) नहीं (गच्छन्तु) जायँ १७७

भावार्थ-विषयरूपी वनकी भूमियोंमें मन नामक बड़ा बाघ फिरता है, इसकारण मुक्तिकी इच्छा करने वाले जो साधु हों उनको तहाँ नहीं जाना चाहिये ॥ १७७॥

मनः प्रसूते विषयानशेषान्स्थूलात्मना सूक्ष्मतया च भोक्तुः । शरीरवर्णाश्रमजातिभेदान्गुणक्रियाहेतुफलानि नित्यम् ॥ १७८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(मनः) मन (भोक्तुः) भोक्ता के (स्थूलात्मना) स्थूलरूप करके (च) और (सूक्ष्मतया) सूक्ष्म भाव करके (अशेषान्)सकल विषयान्) विषयोंको (शरीरवर्णाश्रमजातिभेदान्) शरीर, वर्ण, आश्रम तथा जातियोंके भेदोंको (गुणक्रियाहेतुफलानि) गुण, क्रिया, कारण तथा फलोंको (नित्यम्) सदा (प्रसूते) उत्पन्न करता है ॥ १७८ ॥

भावार्थ-भोक्ताके निमित्त सकल स्थूल सूक्ष्म विषयों को शरीर,वर्ण,आश्रम तथा जातियोंके भेदोंको और गुण क्रिया कारण तथा उनके फलोंको सदा मन ही उत्पन्न करता है ॥ १७८ ॥



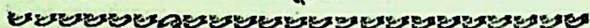
असङ्गचिद्रूपममुं विमोह्य देहेन्द्रिय-
प्राणगुणैर्निबध्य। अहं ममेति भ्रमयत्य-
जस्रं मनः स्वकृत्येषु फलोपभुक्तिषु १७९

अन्वय और पदार्थ-(मनः) मन (असंगचिद्रूपम्) असंग और चैतन्यरूप (अमुम्) इस आत्माको (विमोह्य) विमूढ करके (देहेन्द्रियप्राणगुणैः) देह इंद्रियें तथा प्राणरूप गुणोंसे (निबध्य) बाँध कर (स्वकृत्येषु) अपने कृत्यरूप (फलोपभुक्तिषु) फलके उपभोगोंमें (अहं-मम इति) मैं-मेरा-इसप्रकार (अजस्रम्) निरन्तर (भ्रमयति) घुमाता है ॥ १७९ ॥

भावार्थ-आत्मा कि-जो असंग और चैतन्यरूप है, उसको अत्यन्त मोहमें डालकर तथा देह, इन्द्रियें और प्राणरूप रस्सियोंसे बाँधकर मन ही, अपने कृत्यरूप फल के भोगोंमें अहंभाव और ममता कराकर निरन्तर भ्रमाता रहता है ॥ १७९ ॥

अध्यासदोषात्पुरुषस्य संसृतिरध्यास-
बन्धस्त्वमुनैव कल्पितः। रजस्तमो-
दोषवतोऽविवेकिनो जन्मादिदुःखस्य
निदानमेतत् ॥ १८० ॥

अन्वय और पदार्थ-(पुरुषस्य) पुरुषके (अध्यास-दोषात्) अध्यासके दोषसे (संसृतिः) संसार है,



(अमुना-एव) इस करके ही (अध्यासबन्धः) अध्यास-रूप बन्धन (कल्पितः) कल्पना किया गया है (रजस्तमोदोषवतः) रजोगुण और तमोगुणरूप दोष वाले (अविवेकिनः) अविवेकीके (जन्मादिदुःखस्य) जन्म आदि दुःखका (एतत्) यह (निदानम्) आदिकारण है १८०

भावार्थ-पुरुषके देहरूप अध्यासके दोषसे संसार होता है और अध्यासरूप बन्धन इस मनका ही कल्पना कियाहुआ है, इसकारण रजोगुण और तमोगुणवाले अविवेकीके जन्म आदि दुःखोंका मूलकारण यह मन ही है।

अतः प्राहुर्मनोऽविद्यां पंडितास्तत्त्वदर्शिनः । येनैव भ्राम्यते विश्वं वायुनेवाभ्रमण्डलम् ॥ १८१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अतः) इस कारण (तत्त्वदर्शिनः) तत्त्वज्ञानी (पण्डिताः) पण्डित (मनः) मन को (अविद्याम्) अविद्या (प्राहुः) कहते हैं (येन-एव) जिस करके ही (वायुना) वायु करके (अभ्रमण्डलम्-इव) मेघमण्डलकी समान (विश्वम्) संसार (भ्राम्यते) घुमाया जाता है ॥ १८१ ॥

भावार्थ-इसकारण तत्त्वको जानने वाले पण्डित जन मनको ही अविद्यारूप कहते हैं, कि-जो मन जिसप्रकार वायु मेघमण्डलको घुमाता फिरता है, तिसी प्रकार जगत् भरको भ्रमाता है ॥ १८१ ॥

तन्मनःशोधनं कार्यं प्रयत्नेन मुमुक्षुणा।
विशुद्धे सति चैतस्मिन्मुक्तिः करफलायते

अन्वय और पदार्थ-(तत्) तिसकारणसे (मुमुक्षुणा) मुमुक्षु करके (प्रयत्नेन) प्रयत्नके द्वारा (मनःशोधनम्) मनका शोधन (कार्यम्) करना चाहिये (एतस्मिन् च) इसके ही (विशुद्धे-सति) विशुद्ध होने पर (मुक्तिः) मुक्ति (करफलायते) हाथमेंके फलकी समान होजाती है

भावार्थ-ऐसा है इसकारण मुमुक्षुको चाहिये कि-उद्योग करके मनको शुद्ध करलेय, एक मनके शुद्ध होते ही मुक्ति हथेली पर रक्खेहुए आमलेके फलकी समान सुलभ होजाती है ॥ १८२ ॥

मोक्षैकसक्त्या विषयेषु रागं निर्मूल्य संन्यस्य च सर्वकर्म । सच्छ्रद्धया यः श्रवणादिनिष्ठो रजःस्वभावं स धुनोति बुद्धेः ॥ १८३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (मोक्षैकसक्त्या) एक मोक्ष पर आसक्ति करके (विषयेषु) विषयोंमें (रागम्) रागको (निर्मूल्य) उखाड़कर (च) और (सर्वकर्म) सकल कर्मको (संन्यस्य) पूर्णतया त्याग कर (सच्छ्र-द्धया) उत्तम श्रद्धापूर्वक (श्रवणादिनिष्ठः) श्रवण आदि में आस्थावाला [भवति] होता है (सः) वह (बुद्धेः)

बुद्धिके (रजःस्वभावम्) रजोगुणी स्वभावको (धुनोति) दूर करदेता है ॥ १८३ ॥

भावार्थ–जो पुरुष मोक्ष पर परम आसक्तिसे विषयों के ऊपरके प्रेमको उखाड़ डालता है, तथा सकल सकाम कर्मोंको त्याग देता है और श्रद्धापूर्वक वेदान्त और सद्गुरुके उपदेशको सुननेमें निष्ठा रखता है वह पुरुष बुद्धिके रजोगुणी स्वभावको टाल देता है ॥ १८३ ॥

मनोमयो नापि भवेत्परात्मा ह्याद्यंत-वत्त्वात्परिणामिभावात् । दुःखात्मकत्वा-द्विषयत्वहेतोर्द्रष्टाहि दृश्यात्मतया न दृष्टः।

अन्वय और पदार्थ–(हि) निश्चय (आद्यन्तवत्त्वात्) आदि अन्तवाला होनेसे (परिणामिभावात्) परिणाम वाला होनेसे (दुःखात्मकत्वात्) दुःखरूप होनेसे विषय-त्वहेतोः) विषयरूप होनेसे (अपि) भी (मनोमयः) मनोमय (परात्मा) परआत्मा (न) नहीं (भवेत्) होगा (हि) क्योंकि (द्रष्टा) देखनेवाला (दृश्यात्मतया) देखने योग्य वस्तुरूपसे (न) नहीं (दृष्टः) देखा है ॥

भावार्थ–मनोमय कोश आत्मा नहीं है, क्योंकि-यह कोश आदि तथा अन्तवाला, परिणाम वाला तथा दुःख-मय है आत्मा तो आदि अन्तसे रहित, परिणामरहित और दुःखरहित है,मनोमय कोश आत्माका दृश्य है,इस कारण भी यह आत्मा नहीं होसकता, आत्मा तो द्रष्टा है, उसको दृश्यपना हो ही नहीं सकता है ॥ १८४ ॥

बुद्धिबुद्धीन्द्रियैः सार्द्धं सवृत्तिः कर्त्तृ-लक्षणः । विज्ञानमयकोशः स्यात्पुंसः संसार कारणम् ॥ १८५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(बुद्धिबुद्धीन्द्रियैः, सार्धम्) बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियों सहित (सवृत्तिः) वृत्तियोंसे युक्त (कर्त्तृलक्षणः) कर्त्तारूप (विज्ञानमयकोशः) विज्ञानकोश (पुंसः) पुरुषको (संसारकारणम्) संसार का कारण (स्यात्) हो ॥ १८५ ॥

भावार्थ-ज्ञानेन्द्रियें, उनकी वृत्तियें और बुद्धि यह सब मिलकर कर्त्तारूप विज्ञानमय कोष है और यह ही पुरुषके संसारका कारण होता है ॥ १८५ ॥

अनुव्रजच्चित्प्रतिबिम्बशक्तिर्विज्ञान-संज्ञः प्रकृतेर्विकारः । ज्ञानक्रियावानह-मित्यजस्रं देहेंद्रियादिष्वभिमन्यते भृशम्

अन्वय और पदार्थ-(अनुव्रजच्चित्प्रतिबिम्बशक्ति) पीछे २ आती है चैतन्यके प्रतिबिम्बकी शक्ति जिसमें ऐसा (विज्ञानसंज्ञः) विज्ञाननामक (प्रकृतेः) प्रकृति का (विकारः) विकार (देहेन्द्रियादिषु) देह इन्द्रिय आदिकों में (ज्ञानक्रियावान्) ज्ञानक्रिया वाला (अहम्) मैं [अस्मि] हूँ (इति) इसप्रकार (अजस्रम्) निरन्तर (भृशम्) अत्यन्त (अभिमन्यते) अभिमान करता है

भावार्थ—जिसमें चैतन्यके प्रतिबिम्बकी शक्ति साथ ही साथ आती है ऐसा यह विज्ञानमय कोषनामक प्रकृतिका विकार, देह तथा इन्द्रिय आदिमें 'ज्ञान क्रियावाला 'मैं हूँ' इसप्रकार निरन्तर बड़ाभारी अभिमान रखता है १८६

अनादिकालोऽयमहंस्वभावो जीवः समस्तव्यवहारवोढा। करोति कर्माण्यपि पूर्ववासनः पुण्यान्यपुण्यानि च तत्फलानि ॥ १८७ ॥ भुङ्क्ते विचित्रास्वपि योनिषु योनिषु व्रजन्नायाति निर्यात्यध ऊर्ध्वमेष । अस्यैव विज्ञानमयस्य जाग्रत्स्वप्नाद्यवस्थाः सुखदुःखभोगः ॥१८८॥ देहादिनिष्ठाश्रमधर्मकर्मगुणाभिमानं सततं ममेति ।

अन्वय और पदार्थ-(अयम्) यह (अनादिकालः) अनादिकालका (अहंस्वभावः) मैं हूँ, ऐसे स्वभाववाला (समस्तव्यवहारवोढा) सकल व्यवहारोंको उठानेवाला (पूर्ववासनः) पूर्वकी हैं वासना जिसमें ऐसा (जीवः) जीव (पुण्यानि) पुण्यरूप (च) और (अपुण्यानि-अपि) पापरूप भी (कर्माणि) कर्मोंको (करोति) करता है (च) और (तत्फलानि) उनके फलोंको (भुङ्क्ते) भोगता है (एषः) यह (विचित्रासु) नाना प्रकारकी

(योनिषु) योनियोंमें (व्रजन्) जाता हुआ (अधः) नीचे (आयाति) आता है (अपि) और (ऊर्ध्वम्) ऊपर (निर्याति) जाता है (अस्य) इस (विज्ञानमयस्य एव) विज्ञानमयकोशको ही (जाग्रत्स्वप्नाद्यवस्थाः) जाग्रत् स्वप्न आदि अवस्था (सुखदुःखभोगः सुख और दुःखका भोग (सततम्) निरन्तर (मम-इति) मेरे हैं इसप्रकार (देहादिनिष्ठाश्रमधर्मकर्मगुणाभिमानम्) देह आदिमें रहनेवाले आश्रम, धर्म, कर्म, तथा गुणोंका अभिमान [भवति] होता है ॥ १८८ ॥

भावार्थ-अनादिकालका मैं हूँ इस प्रकार माननेके स्वभाववाला और सकल व्यवहारोंको चलानेवाला यह विज्ञानमय कोश जीव कहाता है, कि-जो जीव बडी २ पूर्वकी वासनाओंके कारण पाप तथा पुण्यरूप कर्मोंको करता है उनके फलोंको भोगता है, अनेकों प्रकारकी योनियोंमें जाता है, ऊँचे नीचे लोकोंमें जाता है, विज्ञान-मय कोशको जाग्रत् स्वप्न आदि अवस्था, सुख तथा दुःख का भोग और देह आदिमें रहनेवाले, आश्रम, धर्म, कर्म तथा गुण मेरे हैं, ऐसा निरन्तर अभिमान है ही ॥

विज्ञानकोशोऽयमतिप्रकाशः प्रकृष्ट-
सान्निध्यवशात्परात्मनः। अतो भवत्येष
उपाधिरस्य यदात्मधीः संसरति भ्रमेण

अन्वय और पदार्थ-(अयम्) यह (विज्ञानकोशः) विज्ञानमय कोश (परात्मनः) परात्माके (प्रकृष्टस-

न्निध्यवशात्) उत्तम सामीप्य होनेके कारण (अति-प्रकाशः) अत्यन्त प्रकाशवाला है (अतः) इस कारण (अस्य) इसकी (उपाधिः एव) उपाधि ही (भवति) होता है (यत्) जिसमें (भ्रमेण) भ्रम होनेसे (आत्मधीः) आत्मबुद्धि करनेवाला (संसरति) संसारमें पड़ता है॥

भावार्थ–परमात्माकी उत्तम समीपताके कारण यह विज्ञानमयकोश परमप्रकाशवाला है और इसकारण ही आत्माकी उपाधिरूप है, कि–जिस उपाधिमें भ्रान्तिसे मैं हूँ ऐसा अभिमान होनेसे जन्म मरणको पाता है १८९

योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृदि स्फुरत्ययं ज्योतिः । कूटस्थः सन्नात्मा कर्त्ता भोक्ता भवत्युपाधिस्थः ॥ १९० ॥

अन्वय और पदार्थ–(यः) जो (अयम्) यह (हृदि) हृदयमें (विज्ञानमयः) स्वयंप्रकाश (आत्मा) आत्मा है (अयम्) यह (कूटस्थः सन्) कूटस्थ होता हुआ (प्राणेषु) इन्द्रियोंमें (ज्योतिः) ज्ञानरूपसे (स्फुरति) फुरता है (उपाधिस्थ) उपाधिमें स्थित हुआ (कर्त्ता) करनेवाला (भोक्ता) भोगने वाला (भवति) होता है ॥ १९० ॥

भावार्थ स्वयंप्रकाश आत्मा इन्द्रियोंमें सामान्य ज्ञानरूपसे स्फुरित होता है, तब कूटस्थ कहलाता है और जब उपाधिमें स्थित होता है तब कर्म करनेवाला और उन कर्मोंके फलोंको भोगनेवाला कहाता है ॥ १९० ॥

स्वयं परिच्छेदमुपेत्य बुद्धेस्तादात्म्य-दोषेण परं मृषात्मनः। सर्वात्मकः सन्नपि वीक्षते स्वयं स्वतः पृथक्त्वेन मृदो घटानिव ॥ १६१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(परम्) अत्यन्त (मृषात्मनः) मिथ्या स्वरूप (बुद्धेः) बुद्धिसे (तादात्म्यदोषेण) एकत्व के दोष करके (स्वयम्) अपने आप (परिच्छेदम्) परि-च्छिन्नभावको (उपेत्य) प्राप्त होकर (स्वयम्) अपने आप (सर्वात्मकः सन् अपि) सर्वात्मक होता हुआ भी (मृदः) मट्टीसे (घटान् इव) घडोंको जैसे (स्वतः) अपनेसे (पृथक्त्वेन) भिन्नरूप करके (वीक्षते) देखता है

भावार्थ-बुद्धि, जो कि-मिथ्या पदार्थ है, उसके साथ अपनी एकता माननारूप दोषसे स्वयं परिच्छेदको प्राप्त होकर स्वरूपसे सर्वात्मक होने पर भी मट्टीसे अलग घड़े की समान पदार्थोंको अपनेसे भिन्न देखता है ॥१६१॥

उपाधिसम्बन्धवशात्परात्मा ह्युपाधि-धर्माननुभाति तद्गुणः अयोविकारान-विकारि वन्हिवत्सदैकरूपोऽपि परस्व-भावात् ॥ १६२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सदा) सदा (एकरूपः अपि) एकरूप भी (परात्मा) पर आत्मा (अयोविकारान्-

अविकारि वन्हिवत्) लोहेके विकारोंके अनुसार भासने वाले अविकारी अग्निकी समान (उपाधिसम्बन्धवशात्) उपाधियोंके सम्बन्धके कारण (परस्वभावात्) दूसरेके स्वभावसे (उपाधिधर्मान् अनु) उपाधिके धर्मोंके अनुसार (तद्गुणः) उसके धर्मोंवाला (हि) निश्चय (भाति) भासता है ॥ ९२ ॥

भावार्थ–आत्मा सर्वदा स्वभावसे एकरूप है तो भी जैसे अग्नि निर्विकार होने पर भी लोहेके विकारोंके अनुसार उसके गुणोंवालासा ही प्रतीत होता है, तैसे ही आत्मा उपाधियोंके संबंधके कारण उन उपाधियोंके गुणोंके अनुसार अपने आप भी उन धर्मोंवाला प्रतीत होता है

शिष्य उवाच—

भ्रमेणाप्यन्यथा वास्तु जीवभावः परात्मनः । तदुपाधेरनादित्वान्नानादेर्नाश इष्यते ॥ ११३ ॥ अतोऽस्य जीवभावेऽपि नित्याभवति संसृतिः । न निवर्तेत तन्मोक्षः कथं मे श्रीगुरो वद १९४

अन्वय और पदार्थ-(शिष्यः) शिष्य (उवाच) बोला (श्रीगुरो) हे श्रीगुरुजी (वा) या (भ्रमेण) भ्रमकरके (परात्मनः) परमात्माका (अन्यथा) विपरीत (जीवभावः अपि) जीवपना भी (अस्तु) हो (तदुपाधेः) जिसकी उपाधिके (अनादित्वात्) अनादि होनेसे

(अनादेः) अनादिका (नाशः) नाश (न) नहीं (इष्यते) चाहा जाता है (अतः) इस कारण (अस्य) इसका (जीवभावः) जीवपना (संसृतिः अपि) संसार भी (नित्या) नित्य (भवति) होता है (न) नहीं (निवर्त्तेत) निवृत्त होगा (मोक्षः) मोक्ष (कथम्) कैसे होगा (तत्) सो (मे) मेरे अर्थ (वद कहो ॥१६३॥१६४॥

(भावार्थ)-शिष्य कहता है, कि-हे गुरो! भ्रान्तिके कारण परमात्माको विपरीत जीवपना होगया है, ऐसा आप कहते हैं, यह हो तब भी इस परमात्माकी उपाधियें अनादि होनेके कारण उनका नाश नहीं होना चाहिये और यदि नाश न होगा तो उसका जीवपना नित्य रहा और संसार भी नित्य रहा अर्थात् कभी नहीं मिटेगा, तब मोक्ष कैसे होगा ? इसका उत्तर मुझ से कहिये ॥ १६३॥१६४ ॥

श्रीगुरुरुवाच--

सम्यक् पृष्टं त्वया विद्वन्सावधानेन तच्छृणु । प्रामाणिकी न भवति भ्रान्त्या मोहितकल्पना ॥ १६५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विद्वन्) हे विद्वन् (त्वया) तूने (सम्यक्) भलीप्रकार (पृष्टम्) बूझा (तत्) उस को (सावधानेन) सावधानता करके (शृणु) सुन (भ्रान्त्या) भ्रान्ति करके (मोहितकल्पना) मोहको प्राप्त हुएकी कल्पना (प्रामाणिकी) प्रामाणिक (न) नहीं (भवति) होती है ॥ १६५ ॥

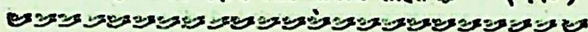
भावार्थ-गुरु कहते हैं कि-हे विद्वान् शिष्य ! तूने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, इसके उत्तरको सावधान होकर सुन, भ्रान्तिसे मोहको प्राप्त होकर जो कल्पना कीजाती है वह प्रमाणसिद्ध (सच्ची) नहीं होती है १९५

भ्रान्तिं विना त्वसङ्गस्य निष्क्रियस्य निराकृतेः। न घटेतार्थसम्बन्धो नभसो नीलतादिवत् ॥ १९६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(नभसः) आकाशकी (नीलतादिवत) नीलता आदिकी समान (भ्रान्तिम्, विना) भ्रान्तिके विना (तु) तो (असङ्गस्य) सङ्गरहित (निष्क्रियस्य) क्रियाहीन (निराकृतेः) आकृतिरहित [आत्मनः] आत्माका (अर्थसम्बन्धः) पदार्थसे सम्बन्ध (न) नहीं (घटेत) घटसकता ॥ १९६ ॥

भावार्थ-आकाशके नीलपने आदिका सम्बन्ध जैसे भ्रान्तिके विना नहीं होसकता,तैसे ही असङ्ग क्रियारहित निराकार आत्माका उपाधियोंके साथ जो सम्बन्ध प्रतीत होता है वह भ्रान्तिके विना नहीं होसकता ॥ १९६ ॥

स्वस्य द्रष्टुर्निर्गुणस्याक्रियस्य प्रत्यग्बोधानन्दरूपस्य बुद्धेः। भ्रान्त्या प्राप्तो जीवभावो न सत्यो, मोहापाये नास्त्यवस्तुस्वभावात् ॥ १९७ ॥



अन्वय और पदार्थ-(द्रष्टुः) द्रष्टा (निर्गुणस्य) गुणरहित (अक्रियस्य) क्रियारहित (प्रत्यग्बोधानन्दरूपस्य) सामान्यबोधरूप और आनन्दस्वरूप (स्वस्य) आत्मा का (बुद्धेः) बुद्धिकी (भ्रान्त्या) भ्रान्ति करके (प्राप्तः) प्राप्त हुआ (जीवभावः) जीवभाव (सत्यः) सत्य (न) नहीं है (अवस्तु) कल्पित पदार्थ (मोहापाये) मोहके दूर होने पर (स्वभावात्) स्वभावसे (न) नहीं (अस्ति) है ॥ १९७ ॥

भावार्थ—आत्मा, कि जो द्रष्टा, निर्गुण, क्रियारहित ज्ञानस्वरूप और आनन्दरूप है, उसको भ्रान्तिसे प्राप्त हुआ जीवभाव सत्य नहीं है इससे यह समझना चाहिये कि-जब भ्रान्ति मिट जाती है तब जीवभाव है ही नहीं कल्पित पदार्थका स्वभाव ही ऐसा होता है कि भ्रान्ति के मिटते ही उसकी सत्ता नहीं रहती ॥ १९७ ॥

यावद् भ्रान्तिस्तावदेवास्य सत्ता, मिथ्याज्ञानोज्जृम्भितस्य प्रमादात्। रज्ज्वां सर्पो भ्रान्तिकालीन एव, भ्रान्तेर्नाशे नैव सर्पोऽपि तद्वत् ॥ १९८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यद्वत्) जैसे (रज्ज्वाम्) रस्सीमें (सर्पः) सर्प (भ्रान्तिकालीनः एव) भ्रान्तिके समयपर्यन्त ही होता है (भ्रान्तेः) भ्रान्तिके (नाशे) नाश होने पर (सर्पः अपि) सर्प भी (नैव) नहीं ही होता है (तद्वत्) तैसे ही (यावत्) जबतक (भ्रान्ति) भ्रांति

रहती है (तावत् एव) तबतक ही (प्रमादात्) प्रमाद से (मिथ्याज्ञानोज्जृम्भितस्य) मिथ्याज्ञानके कारण प्रकट हुए (अस्य) इसकी (सत्ता) सत्ता होती है ९८

भावार्थ-प्रमादवश होने वाले मिथ्या ज्ञानके कारण उत्पन्न हुए पदार्थकी सत्ता, जब तक भ्रान्ति होती है तब तक ही रहती है, जैसे जब तक भ्रान्ति होती है, तब तक ही रस्सीमें भासने वाला सर्प रहता है, जब भ्रान्तिका नाश होजाता है तब सर्प रहता ही नहीं ॥

अनादित्वमविद्यायाः कार्यस्यापि तथेष्यते । उत्पन्नायान्तु विद्यायामाविद्यकमनाद्यपि ॥ १९९ ॥ प्रबोधे स्वप्नवत्सर्वं सहमूलं विनश्यति । अनाद्यपीदं नो नित्यं प्रागभाव इव स्फुटम् ॥ २०० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अविद्यायाः) अविद्याका (तथा) तिसीप्रकार (कार्यस्य, अपि) कार्यका भी (अनादित्वम्) अनादिपना (इष्यते) माना जाता है (विद्यायाम्, उत्पन्नायाम्, तु) विद्याके उत्पन्न होने पर तो (अनादि, अपि) अनादि भी (सर्वम्) सब (आविद्यकम्) अविद्याका कार्य (प्रबोधे) जागने पर (स्वप्नवत्) स्वप्नकी समान (सहमूलम्) मूलसहित (विनश्यति) विनष्ट होजाता है (इदम्) यह (अनादि अपि) अनादि भी (प्रागभाव इव) प्रागभावकी समान (नित्यम्) नित्य (नो) नहीं है (स्फुटम्) प्रकट है ॥

भावार्थ-जो,कि-अविद्याका और अविद्याके कार्यका अनादिपना माननेमें आता है जैसे जागने पर स्वप्न नष्ट होजाता है, तिसीप्रकार विद्याके उत्पन्न होने पर अविद्याका कार्य अनादि होने पर भी अविद्या सहित नाशको प्राप्त होजाता है जैसे घटका प्रागभाव अर्थात् उत्पत्तिसे पहिलेका अभाव अनादि होने पर भी नित्य नहीं है, तैसे ही अविद्या और अविद्याका कार्य अनादि होने पर भी नित्य नहीं है ॥ १९९-२०० ॥

अनादेरपि विध्वंसः प्रागभावस्य वीक्षितः । यद्बुद्ध्युपाधिसम्बन्धात्परिकल्पितमात्मनि ॥ २०१ ॥ जीवत्वं न ततोऽन्यत्तु स्वरूपेण विलक्षणः । संबंधः स्वात्मनो बुद्ध्या मिथ्याज्ञानपुरःसरः॥२०२ विनिवृत्तिर्भवेत्तस्य सम्यग्ज्ञानेन नान्यथा। ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानं सम्यग्ज्ञानं श्रुतेर्मतम्

अन्वय और पदार्थ-(अनादेः, अपि) अनादि भी (प्रागभावस्य) प्रागभावका (विध्वंसः) विनाश (वीक्षितः) देखा है (यत्) जो (बुद्ध्युपाधिसम्बन्धात्) बुद्धिरूप उपाधिके सम्बन्धसे (आत्मनि) आत्मामें (जीवत्वम्) जीवपना (कल्पितम्) कल्पना किया है (ततः) तिस कल्पनासे (स्वरूपेण) स्वरूप करके (विल-

यथा:) अन्य प्रकारका (अन्यत्, तु) दूसरा तो (न) नहीं है (स्वात्मनः) आत्माका (बुद्ध्या) बुद्धि करके (सम्बन्धः) सम्बन्ध (मिथ्याज्ञानपुरःसरः) मिथ्याज्ञानपूर्वक है (तस्य) उसकी (विनिवृत्तिः) निवृत्ति (सम्यग्ज्ञानेन) यथार्थ ज्ञान करके (भवेत्) होगी (अन्यथा) और प्रकारसे (न) नहीं (ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानम्) ब्रह्म और आत्माकी एकताका ज्ञान (सम्यग्ज्ञानम्) यथार्थ ज्ञान हैं [इति] यह (श्रुतेः) श्रुतिका (मतम्) मत है ॥ २०१ ॥ २०२ ॥

भावार्थ–जैसे प्रागभावके अनादि होने पर भी घटकी उत्पत्ति होनेके पीछे,उसका नाश हुआ देखनेमें आता है तैसे ही अविद्या और अविद्याका कार्य, अनादि हैं तब भी विद्याकी उत्पत्ति होनेपर उनका विध्वंस होजाता है बुद्धिरूप उपाधिके संबंधसे,आत्मामें जो जीवपना कल्पना कियागया है उसका स्वरूप कल्पनासे जुदा नहीं है, किंतु कल्पनामात्र ही है,आत्माका बुद्धिके साथ सम्बन्ध होनेमें मिथ्याज्ञान कारणरूप है और इस मिथ्याज्ञानकी निवृत्ति यथार्थ ज्ञानसे ही होती है, और किसी प्रकारसे नहीं होती, आत्मा और परब्रह्मकी एकताका पूरा२ ज्ञान होजाय, यह ही यथार्थ ज्ञानका स्वरूप है और यह ही वेदका सिद्धान्त है ॥ २०१–२०३ ॥

तदात्मानात्मानोः सम्यग्विवेकेनैव सिद्ध्यति । ततो विवेकः कर्त्तव्यः प्रत्यगात्मासदात्मनोः ॥ २०४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्) वह (आत्मानात्मनोः) आत्मा और अनात्माके (सम्यक्, विवेकेन, एव) भले प्रकार, विवेकसे ही (सिद्ध्यति) सिद्ध होता है (ततः) तिस कारणसे (प्रत्यगात्मासदात्मनोः) आत्मा और अनात्माका (विवेकः) विवेक (कर्तव्यः) करना चाहिये

भावार्थ-यह यथार्थज्ञान आत्मा और अनात्माके विवेकसे ही सिद्ध होता है, इस कारण सत्स्वरूप और असत्स्वरूपका विवेक करना ही चाहिये ॥ २०४ ॥

जलं पङ्कवदत्यन्तं पङ्कापाये जलं स्फुटं । असन्निवृत्तौ तु सदात्मना स्फुटं प्रतीतिरेतस्य भवेत्प्रतीचः । ततो निरासः करणीय एव, सदात्मनः साध्वहमादि-वस्तुनः ॥ २०६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अत्यन्तम्) बहुत ही (पंकवत्) काई वाला (जलम्) जल (पङ्कापाये) उस काईके दूर होजाने पर (स्फुटम्) स्पष्ट (जलम्) जल रहता है [तद्वत्] तिसी प्रकार (असन्निवृत्तौ-तु) अनात्म पदार्थकी निवृत्ति होने पर तो (एतस्य) इस (प्रतीचः) प्रत्यगात्माकी (सदात्मना) सद्रूपसे (स्फुटम्) स्पष्ट (प्रतीतिः) प्रतीति [भवति] होती है (ततः) तिससे (सदात्मनः) प्रत्यगात्मामेंसे (अहमादिवस्तुनः) अहंकार आदि पदार्थोंका (निरासः) निराकरण (साधु) भले प्रकार (करणीयः, एव) करना चाहिये ॥ २०५ ॥

भावार्थ-जिसप्रकार बहुत ही काईवाले वा कीचकी मलिनतावाले जलमेंसे उस काई वा मलिनताको दूर कर देने पर स्वच्छ जल दीखने लगता है तिसप्रकार जब अनात्मपदार्थकी निवृत्ति होजाती है तब प्रत्यगात्माकी सद्रूपसे स्पष्ट प्रतीति होने लगती है, इस कारण प्रत्यगात्मामेंसे अहंकार आदि अनात्म पदार्थोंका यथार्थ रीतिसे पूर्णतया निरास (त्याग) करना चाहिये २०५

अतो नायं परात्मा स्याद्विज्ञानमयशब्दभाक् । विकारित्वाज्जडत्वाच्च परिच्छिन्नत्वहेतुतः । दृश्यत्वाद्व्यभिचारित्वान्नानित्यो नित्य इष्यते ॥ २०६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अतः) इस कारण (अयम्) यह (परात्मा) पर आत्मा (विज्ञानमयशब्दभाक्) विज्ञानमय शब्दका भागी (न) नहीं (स्यात्) होगा (विकारित्वात्) विकार युक्त होनेके कारण (जडत्वात्) जड़ होनेके कारण (परिच्छिन्नत्वहेतुतः) परिच्छिन्न होनेके कारण (दृश्यत्वात्) दृश्य होनेके कारण (व्यभिचारित्वात्, च) व्यभिचारी होनेके कारण भी (अनित्यः) अनित्य ।(नित्यः) नित्य (न) नहीं (इष्यते) माना जाता है ॥ २०६ ॥

भावार्थ-इस प्रकार आत्मा, विज्ञानमय कोश नहीं कहासकता, क्योंकि-विज्ञानमयकोश जड़ है, विकारी है

परिच्छिन्न है और लौट बदल पानेवाला है; ऐसा विज्ञानमयकोश, कि-जो अनित्य है उसको नित्य आत्मा नहीं कहा जासकता ॥ २०६ ॥

आनन्दप्रतिबिम्बचुम्बिततनुर्वृत्तिस्तमोज्जृम्भिता, स्यादानन्दमयः प्रियादिगुणकः स्वेष्टार्थलाभोदयः । पुण्यस्यानुभवे विभाति कृतिमानानन्दरूपः स्वयम् । भूत्वानन्दति यत्र साधु तनुभृन्मात्रः प्रयत्नम्बिना ॥ २०७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(कृतिनाम्) पुण्यात्माओंके (पुण्यस्य) पुण्यका (अनुभवे) अनुभव होने पर (प्रियादिगुणकः) प्रिय आदि गुणवाला (स्वेष्टार्थलाभोदयः) अपने इष्ट पदार्थोंके लाभका उदयरूप (आनन्दप्रतिबिम्बचुम्बिततनुः) आनन्दके प्रतिबिम्बसे चुंबित है शरीर जिसका ऐसी (तमोज्जृम्भिता) तमोगुणसे फैली हुई (वृत्तिः) वृत्ति (आनन्दमयः) आनन्दमय (स्यात्) होगा (यत्र) जिस वृत्तिमें (तनुभृन्मात्रः) शरीरधारीमात्र (प्रयत्नं विना) उद्योगके बिना (स्वयम्) अपने आप (आनन्दमयः) आनन्दमय (भूत्वा) होकर (साधु) भले प्रकार (आनन्दति) आनन्द पाता है ॥

भावार्थ-पुण्यात्माओंके पुण्यके फलका अनुभव होने के समयमें अपने प्यारे पदार्थोंके मिलने पर आनन्दकी

परछाहींसे मिली हुई प्रिय, मोद और प्रमोद गुणवाली तमोगुणकी वृत्ति, आनन्दमयकोश कहलाती है, कि-जिस वृत्तिका उदय होने पर प्राणीमात्र उद्योग विना किये ही स्वयं आनन्दमय होकर पूर्णरूपसे सुख पाता है॥२०७॥

आनंदमयकोशस्य सुषुप्तौ स्फूर्त्तिरुत्कटा
स्वप्नजागरयोरीषदिष्टसन्दर्शनादिना ॥

अन्वय और पदार्थ-(सुषुप्तौ) सुषुप्तिमें (आनन्दमयकोशस्य) आनन्दमयकोशकी (उत्कटा) उत्कट (स्फूर्त्तिः) स्फूर्त्ति [भवति] होती है (स्वप्नजागरयोः) स्वप्न और जाग्रत्‌में (इष्टसन्दर्शनादिना) प्रिय पदार्थ के दर्शन आदि करके (ईषत्) थोड़ी सी [भवति] होती है ॥ २०८ ॥

भावार्थ-सुषुप्तिदशामें आनन्दमय कोशको बहुत स्फूर्त्ति होती है और स्वप्न तथा जाग्रत्‌दशामें तो प्रिय पदार्थोंका दर्शन आदि होने पर थोड़ीसी स्फूर्त्ति होती है

नैवायमानन्दमयः परात्मा, सोपाधिकत्वात् प्रकृतेर्विकारात् । कार्यत्वहतोः सुकृतक्रियाया, विकारसंघातसमाहितत्वात् ॥ २०९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अयम्) यह (आनन्दमयः) आनन्दमयकोश (सोपाधिकत्वात्) उपाधियुक्त होनेसे (प्रकृतेः) प्रकृतिके (विकारात्) विकाररूप होनेसे

(सुकृतक्रियायाः) पुण्यकार्यके (विकारसंघातसमाहितत्वात्) विकारोंके समूहके अधीन होनेसे (परात्मा) परब्रह्म (न, एव) नहीं है ॥ २०९ ॥

भावार्थ-यह आनंदमयकोश उपाधिसहित है, प्रकृति का विकाररूप है, कार्यरूप है और पुण्यकार्यके विकारों के समूहके अधीन है इसकारण परमात्मा नहीं है २०९

पञ्चानामपि कोशानां निषेधे युक्तितः श्रुतेः । तन्निषेधावधिः साक्षी बोधरूपोऽवशिष्यते ॥ २१० ॥

अन्वय और पदार्थ-(युक्तितः) युक्तिसे (श्रुतेः) श्रुतिसे (पञ्चानाम्, अपि) पाँचों ही (कोशानाम्) कोशोंका (निषेधे) निषेध होने पर (तन्निषेधावधिः) उस निषेधकी सीमारूप (बोधरूपः) बोधस्वरूप (साक्षी) साक्षी (अवशिष्यते) अवशिष्ट रहता है ॥ २१० ॥

भावार्थ-युक्तियोंसे और श्रुतियोंसे पाँचों कोशोंका निषेध होने पर उस निषेधका अवधिरूप ज्ञानस्वरूप साक्षी शेष रहता है ॥ २१० ॥

योऽयमात्मा स्वयंज्योतिः पञ्चकोशविलक्षणः । अवस्थात्रयसाक्षी सन्निर्विकारो निरञ्जनः ॥ सदानन्दः स विज्ञेयः स्वात्मन्येव विपश्चिता ॥२११॥

अन्वय और पदार्थ-(पञ्चकोशविलक्षणः) पाँचों कोशोंसे न्यारा (स्वयंज्योतिः) स्वयंप्रकाश (अवस्था-त्रयसाक्षी,सन्) तीनों अवस्थाओंका साक्षी होता हुआ (निर्विकारः) निर्विकार (निरञ्जनः) निरञ्जन (सदा-नन्दः) सदानन्दरूप (यः) जो (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा [अस्ति] है (सः) वह (विपश्चिता) विवेकी करके (स्वात्मनि, एव) अपने आत्मामें ही (विज्ञेयः) जानना चाहिये ॥ २११ ॥

भावार्थ-पाँचों कोशोंसे न्यारा, स्वयंप्रकाश, तीनों अवस्थाओंका साक्षी होकर भी निर्विकार और निर्लेप रहनेवाला जो सच्चिदानंदरूप आत्मा है यह परमात्मा अपना ही आत्मा है,ऐसा बुद्धिमान्को जानना चाहिये॥

शिष्य उवाच—

मिथ्यात्वेन निषिद्धेषु कोशेष्वेतेषु पञ्चसु। सर्वाभावम्बिना किञ्चिन्न पश्या-म्यत्र हे गुरो ॥ विज्ञेयं किमु वस्त्वस्ति स्वात्मत्वेन विपश्चिता ॥ २१२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(शिष्यः) शिष्य (उवाच) बोला (हे गुरो) हे गुरुजी (मिथ्यात्वेन) मिथ्यापने करके(एतेषु) इन (पञ्चसु) पाँच (कोशेषु) कोशोंके (निषिद्धेषु) निषिद्ध होनेपर (अत्र) इसमें (सर्वाभावम्,विना) सबके अभाव के अतिरिक्त (किञ्चित्) कुछ (न) नहीं (पश्यामि) देखता हूँ (विपश्चिता) बुद्धिमान् करके (स्वात्मनि)

अपने शरीरमें (विज्ञेयम्) जाननेयोग्य (किम्नु) क्या (वस्तु) पदार्थ (अस्ति) है ॥ १२ ॥

भावार्थ–शिष्य बूझता है,कि हे गुरो ! मिथ्यापना होनेसे इन पाँचों कोशोंका निषेध करने पर तो सबका अभाव ही मेरे देखनेमें आता है, इसके सिवाय और कुछ भी देखनेमें नहीं आता है,इसकारण चतुर पुरुषको अपने आत्मस्वरूपसे जाननेयोग्य कौन वस्तु है ॥२१२॥

श्रीगुरुरुवाच—

सत्यमुक्तं त्वया विद्वन्निपुणोऽसि विचारणे। अहमादिविकारास्ते तदभावो-ऽयमप्यनु ॥ २१३ ॥ सर्वे येनानुभूयन्ते यः स्वयं नानुभूयते । तमात्मानं वेदि-तारं विद्धि बुद्ध्या सुसूक्ष्मया ॥ २१४ ॥

अन्वय और पदार्थ–(श्रीगुरुः) गुरु (उवाच) बोले (विद्वन्) हे विद्वन् (त्वया) तूने (सत्यम्) सत्य (उक्तम्) कहा (विचारणे) विचार करनेमें (निपुणः) चतुर (असि) है (ते) वह (अहमादिविकाराः) अहंकार आदि विकार (अनु) पीछे (अयम्) यह (तदभावः,अपि) उनका अभाव भी (सर्वे) सब (येन) जिस करके (अनुभूयन्ते) अनुभव कियेजाते हैं (यः) जो (स्वयम्) आप (न) नहीं (अनुभूयते) अनुभव कियाजाता है (तम्) उस (वेदितारम्) जाननेवालेको (सुसूक्ष्मया) परमसूक्ष्म (बुद्ध्या) बुद्धि करके (आत्मानम्) आत्मा (विद्धि)जान

भावार्थ-श्रीगुरु कहते हैं, कि हे विवेकी शिष्य! तूने सत्य कहा, तू विचार करनेमें बड़ा निपुण है, जो अहंकार आदि विकारोंको और पीछेसे उनके अभाव को भी जानता है और जो अपने आप किसीके जाननेमें नहीं आता, उस जाननेवालेको तू परमसूक्ष्म बुद्धिसे आत्मा जान ॥ २१३ ॥

तत्साक्षिकं भवेत्तत्तद्यद्येनानुभूयते ।
कस्याप्यननुभूतार्थे साक्षित्वं नोपयुज्यते

अन्वय और पदार्थ-(यत्, यत्) जो जो (येन) जिस २ करके (अनुभूयते) अनुभव किया जाता है(तत्, तत्) वह वह (तत्साक्षिकम्) उसकी साक्षी वाला (भवेत्) होगा (अननुभूतार्थे) अनुभव न कीहुई वस्तुमें (कस्य, अपि) किसीका भी (साक्षित्वम्)साक्षीपना (न) नहीं (उपयुज्यते) होसकता है ॥ २१५ ॥

भावार्थ-जो २ वस्तु जिसके अनुभवमें आती हैं, उन २ वस्तुओंका ही वह साक्षी कहलाता है,जिस वस्तु का अनुभव न हुआ हो, उस वस्तुमें किसीका भी साक्षीपना नहीं होसकता ॥ २१५ ॥

असौ स्वसाक्षिकोऽभावो यतः स्वेनानुभूयते । अतः परं स्वयं साक्षात्प्रत्यगात्मा न चेतरः ॥ २१६ ॥



अन्वय और पदार्थ-(असौ) यह (अभाव:) अभाव (स्वसाक्षिकः) आत्मा ही है साक्षी जिसमें ऐसा है (यतः) क्योंकि (स्वेन) अपने करके (अनुभूयते) अनुभव कियाजाता है (अतः) इसकारण (परम्) सबसे पर (स्वयम्) आप (साक्षात्) साक्षी (प्रत्यगात्मा) प्रत्यगात्मा है (च) और (इतरः) दूसरा (न) नहीं है

भावार्थ-अहंकार आदिके अभावका साक्षी स्वयं आत्मा ही है, क्योंकि-हम आप ही उसको जानते हैं, इस कारण सबसे पर और सबका साक्षी साक्षात्प्रत्यगात्मा ही है, दूसरा कोई नहीं है ॥ २१६ ॥

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु स्फुटतरं योऽसौ समुज्जृम्भते, प्रत्यग्रूपतया सदाहमहमित्यन्तः स्फुरन्नेकधा। नानाकारविकारभागिन इमान्पश्यन्नहंधीमुखान्, नित्यानन्दचिदात्मना स्फुरति तं विद्धि स्वमेतं हृदि ॥ २१७ ॥

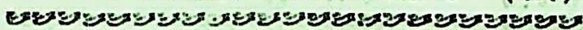
अन्वय और पदार्थ-(सदा) सदा (अन्तः) भीतर (प्रत्यग्रूपतया) प्रत्यक्रूपसे (अहम्, अहम्, इति) मैं मैं इसप्रकार (एकधा) एक प्रकारसे (स्फुरन्) फुरता हुआ (जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु) जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थामें (यः) जो (स्फुटतरम्) अत्यन्त स्फुट (समुज्जृम्भते) प्रतीत होता है (असौ) यह (नानाविकार-

भागिनः) अनेकों विकारोंको पानेवाले (इमान्) इन (अहंधीमुखान्) अहंकार बुद्धि आदिको (पश्यन्) देखता हुआ (हृदि) हृदयमें (नित्यानन्दचिदात्मना) नित्य आनन्द चित्स्वरूप करके (स्फुरति) फुरता है (तम्) उस (एतम्) इसको (स्वम्) आत्मा (विद्धि) जान

भावार्थ–प्रत्यक्स्वरूपसे सर्वदा 'मैं मैं' इस प्रकार भीतर एकरूपसे ही फुरनेवाला जो आत्मा जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिमें अत्यन्त स्फुट प्रतीत होता है तथा अनेकों विकारोंको प्राप्त होनेवाले इन अहंकार बुद्धि आदि पदार्थोंको देखता हुआ हृदयमें सच्चिदानन्दस्वरूपसे स्फुरता है वह तू ही है, ऐसा जान ॥ २१७ ॥

घटोदके बिम्बितमर्कबिम्बमालोक्य मूढो रविमेव मन्यते। तथा चिदाभासमुपाधिसंस्थं, भ्रान्त्याहमित्येव जडोऽभिमन्यते ॥ २१८ ॥

अन्वय और पदार्थ–[यथा] जैसे (मूढः) मूर्ख (घटोदके) घड़ेमेंके जलमें (बिम्बितम्) प्रतिबिम्बितहुए (अर्कबिम्बम्) सूर्यमण्डलको (आलोक्य) देख कर (रविम्, एव) सूर्यको ही (मन्यते) मानता है (तथा) तिसी प्रकार (जडः) अज्ञानी (उपाधिसंस्थम्) उपाधि में स्थित (चिदाभासम्) चिदाभासको (भ्रान्त्या) भ्रांति करके (अहम्, एव) मैं ही हूँ (इति) ऐसा (अभिमन्यते) अभिमान करता है ॥ २१८ ॥



भावार्थ-जैसे मूर्ख मनुष्य घड़ेके जलमें प्रतिबिंबित हुए सूर्यके बिम्बको देखकर सूर्य ही मान लेता है, तैसे ही अज्ञानी पुरुष, उपाधिमें रहनेवाले चिदाभासको 'मैं ही हूँ' ऐसा मानकर अभिमान करने लगता है ॥२१८॥

घटं जलं तद्गतमर्कबिम्बं, विहाय सर्वं विनिरीक्ष्यतेऽर्कः। तटस्थ एतात्त्रितयावभासकः स्वयंप्रकाशो विदुषा यथा तथा ॥ २१९ ॥ देहं धियं चित्प्रतिबिंबमेवं, विसृज्य बुद्धौ निहितं गुहायाम्। द्रष्टारमात्मानमखण्डबोधं, सर्वप्रकाशं सदसद्विलक्षणम् ॥ २२० ॥ नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्ममन्तर्बहिः शून्यमनन्यमात्मनः। विज्ञाय सम्यङ् निजरूपमेतत्पुमान् विपाप्मा विरजो विमृत्युः२२१ विशोक आनन्दघनो विपश्चित्स्वयं कुतश्चिन्न बिभेति कश्चित्। नान्योऽस्ति पन्था भवबन्धमुक्तेर्विना स्वतत्त्वावगमं मुमुक्षोः ॥ २२२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (विद्वुषा) विद्वान् करके (घटम्) घड़ेको (जलम्) जलको (तद्गतम्) उस जलमेंके (अर्कबिम्बम्) सूर्यबिम्बको (सर्वम्) सबको (विहाय) छोड़कर (तदस्थः) इनसे पृथक् (एतत्त्रितयावभासकः) इन तीनोंका प्रकाशक (स्वयंप्रकाशः) स्वयंप्रकाश (अर्कः) सूर्य (निनिरीक्ष्यते) देखा जाता है (तथा) तिसी प्रकार (देहम्) देहको (धियम्) बुद्धिको (एवम्) ऐसे ही (बुद्धौ) बुद्धिमें (चित्प्रतिबिम्बितम्) रहनेवाले चैतन्यके आभासको (विसृज्य) त्याग कर (गुहायाम्) गुहामें (निहितम्) स्थित (द्रष्टारम्) द्रष्टा (अखण्डबोधम्) अखण्डज्ञानस्वरूप (सर्वप्रकाशम्) सबके प्रकाशक (सदसद्विलक्षणम्) कार्य कारण से न्यारे (नित्यम्) नित्य (विभुम्) व्यापक (सर्वगतम्) सबमें रहनेवाले (सुसूक्ष्मम्) अत्यन्त सूक्ष्म (अन्तर्बहिःशून्यम्) भीतर बाहरसे शून्य (आत्मनः) अपनेसे (अनन्यम्) अभिन्न (निजरूपम्) स्वरूपभूत (एतत्) इसको (सम्यक्) भले प्रकार (विज्ञाय) जान कर (विपश्चित्) विद्वान् (पुमान्) पुरुष (विपाप्मा) पापरहित (विरजः) निर्मल (विमृत्युः) मृत्युरहित (विशोकः) शोकरहित (आनन्दघनः) आनन्दघन [भवति] होता है (कश्चित्) कोई (स्वयम्) आप (कुतश्चित्) किसीसे (न) नहीं (बिभेति) डरता है (स्वतत्त्वावगमम्, विना) अपने आत्माके तत्त्वको जाननेके अतिरिक्त (मुमुक्षोः) मुमुक्षुकी (भवबन्धमुक्तेः) संसारबन्धनसे मुक्तिका (पन्थाः) मार्ग (न) नहीं (अस्ति) है

भावार्थ-घड़ा, जल और उसमें रहनेवाला सूर्यका प्रतिविम्ब इन सबको छोड़कर जैसे इन सबसे न्यारा इन तीनोंका प्रकाश करनेवाला और स्वयंप्रकाश सूर्य देखनेमें आता है, तैसे ही देह, बुद्धि और बुद्धिमें रहने वाले चैतन्यका आभास, इन सबको छोड़कर जब द्रष्टा, अखण्डबोधरूप, सबका प्रकाशक, कार्य कारणसे न्यारा, नित्य, व्यापक, सबमें रहताहुआ, अत्यन्तसूक्ष्म, अपने से अभिन्न और जिसके बाहर वा भीतर दूसरा कोई पदार्थ नहीं है ऐसा स्वरूपभूत आत्मा भले प्रकारसे जाननेमें आता है, तब विद्वान् पुरुष पापरहित शोक-रहित मृत्युरहित, रजरहित और आनन्दघन होजाता है और अपने आप किसीसे भय नहीं मानता है मुमुक्षुको अपने आत्माके तत्त्वको जाननेके सिवाय दूसरा कोई भी संसारबन्धनसे छूटनेका मार्ग नहीं है ॥२१९-२२२॥

ब्रह्माभिन्नत्वविज्ञानं भवमोक्षस्य कारणम् । येनाद्वितीयमानन्दं ब्रह्म सम्पद्यते बुधैः ॥ २२३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ब्रह्माभिन्नत्वविज्ञानम्) ब्रह्म से अभिन्न होनेका ज्ञान (भवमोक्षस्य) संसारसे मुक्त होनेका (कारणम्) कारण है (येन) जिसके द्वारा (बुधैः) विद्वानों करके (अद्वितीयम्) अद्वितीय (आनंदम्) आनन्दस्वरूप (ब्रह्म) ब्रह्म (सम्पद्यते) हुआ जाता है

भावार्थ–मैं ब्रह्मसे अभिन्न हूँ, ऐसा ज्ञान संसारसे छुटकारा होनेका कारण है, कि–जिस ज्ञानके द्वारा ज्ञानी पुरुष अद्वितीय और आनन्दरूप ब्रह्म होजाता है २२३

ब्रह्मभूतस्तु संसृत्यै विद्वान्नावर्त्तते पुनः। विज्ञातव्यमतःसम्यग्ब्रह्माभिन्नत्वमात्मनः

अन्वय और पदार्थ–(ब्रह्मभूतः तु) ब्रह्मरूप हुआ तो (विद्वान्) विवेकी (पुनः) फिर (संसृत्यै) संसार के अर्थ (न) नहीं (आवर्त्तते) लौटता है (अतः) इस कारण (आत्मनः) अपना (ब्रह्माभिन्नत्वम्) ब्रह्मसे अभिन्नपना (सम्यक्) भले प्रकार (विज्ञातव्यम्) जानना चाहिये ॥ २२४ ॥

भावार्थ–ब्रह्मरूप हुआ विद्वान् पुरुष, फिर जन्ममरण के चक्रमें नहीं पड़ता है, इस कारण अपना ब्रह्मसे अभिन्नपना भलेप्रकार जानना चाहिये ॥ २२४ ॥

सत्यं ज्ञानमनन्तं, ब्रह्म विशुद्धं परं स्वतःसिद्धम्। नित्यानन्दैकरसं प्रत्यगभिन्नं निरन्तरं भाति ॥ २२५ ॥

अन्वय और पदार्थ–(सत्यम्) सत्यरूप (ज्ञानम्) ज्ञानस्वरूप (अनन्तम्) अन्तरहित (विशुद्धम्) परम शुद्ध (स्वतः सिद्धम्) स्वतःसिद्ध (नित्यानन्दैकरसम्) नित्य आनन्द एकरस (प्रत्यगभिन्नम्) प्रत्यागात्मासे अभिन्न (परम्, ब्रह्म) परब्रह्म (निरन्तरम्) सर्वदा (भाति) सबसे उत्कृष्ट है ॥ २२५ ॥

भावार्थ-सत्यरूप ज्ञानस्वरूप, अनन्त, परमशुद्ध स्वतःसिद्ध, नित्य-आनन्द-एकरस और प्रत्यगात्मासे अभिन्न परब्रह्म सर्वदा सर्वोत्तम है ॥ २५ ॥

सदिदं परमाद्वैतं स्वस्मादन्यस्य वस्तुनोऽभावात्। न ह्यन्यदस्ति किंचित्सम्यक् परमार्थतत्त्वबोधदशायाम् ॥ २२६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(स्वस्मात्) अपनेसे (अन्यस्य) दूसरे (वस्तुनः) वस्तुके (अभावात्) न होनेसे (इदम्) यह (परमाद्वैतम्) परम अद्वैत (सत्) सत्य है (सम्यक्) भले प्रकार (परमार्थतत्त्वबोधदशायाम्) परमार्थ तत्त्वज्ञानकी दशामें (अन्यत्) और (किञ्चित्) कुछ (न हि) नहीं (अस्ति) है ॥ २२६ ॥

भावार्थ-अपनेसे भिन्न कोई वस्तु न होनेके कारण यह परम अद्वैत ही सत्य है, वास्तविक तत्वका ज्ञान होजानेकी दशामें दूसरी कोई भी वस्तु निरूपण करनेके योग्य नहीं रहती है ॥ २२६ ॥

यदिदं सकलं विश्वं नानारूपं प्रतीतमज्ञानात्। तत्सर्वं ब्रह्मैव प्रत्यस्ताशेषभावनादोषम् ॥ २२७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (इदम्) यह (सकलम्) सब (विश्वम्) विश्व (अज्ञानात्) अज्ञानसे (नानारूपम्) अनेकों रूपवाला (प्रतीतम्) प्रतीत [भवति]

होता है (प्रत्यस्ताशेषभावनादोषम्) जिसमें सकल भावनाओंका दोष अस्त होगया है ऐसा (तत्) वह (सर्वम्) सब (ब्रह्म एव) ब्रह्म ही है ॥ २२७ ॥

भावार्थ–जो यह सकल जगत् अज्ञानके कारण अनेकों रूपवाला दीख रहा है सो सब ब्रह्म ही है कि–जिसमें सकल भावनाओंका दोष अस्त होजाता है ॥ २२७ ॥

मृत्कार्यभूतोऽपि मृदो न भिन्नः कुम्भोऽस्ति सर्वत्र तु मृत्स्वरूपात् । न कुम्भरूपं पृथगस्ति कुम्भः कुतो मृषा कल्पितनाममात्रः ॥ २२८ ॥

अन्वय और पदार्थ–(मृत्कार्यभूतः, अपि) मट्टीका कार्यरूप भी (कुम्भः) घड़ा (मृदः) मट्टीसे (भिन्नः) भिन्न (न) नहीं (अस्ति) है (सर्वत्र) सब स्थलमें (कुम्भरूपम्) घड़ेका रूप (मृत्स्वरूपात्) मट्टीके स्वरूप से (पृथक्) भिन्न (न तु) नहीं (अस्ति) है (कल्पितनाममात्रः) नाममात्र जिसका कल्पना किया गया है ऐसा (मृषा) मिथ्याभूत (कुम्भः) घड़ा (कुतः) कहाँ ॥

भावार्थ–मट्टीका कार्यरूप होनेपर भी घड़ा मट्टीसे भिन्न नहीं है, सर्वत्र घड़ेका रूप मट्टीके रूपसे जुदा नहीं है, तब घड़ा, कि–जिसका नाममात्र ही मिथ्या कल्पित है वह मट्टीसे जुदा कैसे होसकता है ॥२२८॥

केनापि मृद्भिन्नतया स्वरूपं घटस्य

संदर्शयितुं न शक्यते। अतो घटः कल्पित एव मोहान्मृदेव सत्यं परमार्थभूतम् ॥

अन्वय और पदार्थ-(घटस्य) घड़ेका (स्वरूपम्) स्वरूप (मृद्भिन्नतया) मट्टीसे भिन्न रूप करके (केन अपि) किसी करके भी (सन्दर्शयितुम्) दिखानेको (न) नहीं (शक्यते) समर्थ होता है (अतः) इसकारण (घटः) घड़ा (मोहात्) अज्ञानसे (कल्पितः-एव) कल्पित ही है (परमार्थभूतम्) वास्तविक (मृत् एव) मट्टी ही (सत्यम्) सत्य है ॥ २२९ ॥

भावार्थ-घड़ेका स्वरूप मट्टीसे जुदा कोई भी नहीं दिखा सकता, इसकारण घड़ा अज्ञानसे कल्पना किया हुआ है वास्तवमें सत्य तो मट्टी ही है, इसीप्रकार जगत्का स्वरूप ब्रह्मसे जुदा कोई भी नहीं दिखा सकता, इस कारण जगत् अज्ञानसे कल्पना किया हुआ है, वास्तवमें सत्य तो ब्रह्म ही है ॥ २२९ ॥

सद्ब्रह्मकार्यं सकलं सदैव तन्मात्रमेतन्न ततोऽन्यदस्ति । अस्तीति यो वक्ति न तस्य मोहो विनिर्गतो निद्रितवत्प्रजल्पः ॥ २३० ॥

अन्वय और पदार्थ-(एतत्) यह (सकलम्) सब (सद्ब्रह्मकार्यम्) सत्‌रूप ब्रह्मका कार्य है (सदा-एव) सब कालमें ही (तन्मात्रम्-एव) ब्रह्मरूप ही है (ततः)

तिससे (अन्यत्) और (न) नहीं (अस्ति) है (अस्ति) है (इति) ऐसा (यः) जो (वक्ति) कहता है (तस्य) उसका (मोहः) अज्ञान (न) नहीं (विनिर्गतः) दूर हुआ है [यतः] क्योंकि (निद्रितवत्प्रजल्पः) सोयेहुए की समान प्रलाप है ॥ २३० ॥

भावार्थ-यह सब जगत् सद्रूप ब्रह्मका कार्य है, इस कारण त्रिकालमें ब्रह्मरूप ही है, ब्रह्मसे जुदा नहीं है। जो मनुष्य 'जगत् ब्रह्मसे जुदी सत्ता वाला है' ऐसा कहता है, उसका अज्ञान नहीं मिटा है, इसकारण यह मानो सोते हुएकी समान बकरहा है, ऐसा समझना चाहिये ॥ २३० ॥

ब्रह्मैवेदं विश्वमित्येव वाणी श्रौत्री ब्रूतेऽथर्वनिष्ठा वरिष्ठा। तस्मादेतद् ब्रह्ममात्रं हि विश्वं नाधिष्ठानाद्भिन्नतारोपितस्य ॥ २३१ ॥

अन्वय और पदार्थ--(अथर्वनिष्ठा) अथर्ववेदमेंकी (वरिष्ठा) उत्तम (श्रौती) श्रुतिकी (वाणी) वाणी (इदम्) यह (विश्वम्) जगत् (ब्रह्म-एव) ब्रह्म ही है (इति-एव) ऐसा ही (ब्रूते) कहती है (तस्मात्) तिस से (एतत्) यह (विश्वम्) सकल (हि) निश्चय (ब्रह्ममात्रम्) ब्रह्म ही है (आरोपितस्य) कल्पितपदार्थ की (अधिष्ठानात्) अधिष्ठानसे (भिन्नात्) भिन्नपना (न) नहीं [भवति] होता है ॥ २३१ ॥

भावार्थ-अथर्ववेदकी उत्तम श्रुतिरूप वाणी कहती है कि-यह जगत् ब्रह्म ही है, इसकारण यह सब जगत् ब्रह्म ही है, कल्पित पदार्थ अपने अधिष्ठानसे भिन्न होता ही नहीं ॥ २३१ ॥

सत्यं यदि स्याज्जगदेतदात्मना न तत्त्वहानिर्निगमाप्रमाणता। असत्यवादित्वमपीशितुः स्यान्नैतत्त्रयं साधुहितं महात्मनाम् ॥ २३२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यदि) जो (जगत्) संसार (एतदात्मना) ब्रह्मरूप करकै (सत्यम्) सत्य (स्यात्) हो [एवम्] ऐसा (न) नहीं है (तत्त्वहानिः) तत्त्व की हानि (निगमाप्रमाणता) वेदकी अप्रमाणिकता (ईशितुः) ईश्वरका (असत्यवादित्वम्-अपि) असत्यवादीपना भी (स्यात्) होगा (एतत्त्रयम्) यह तीनों दोष (महात्मनाम्) महात्माओंको (साधु) ठीक (हितम्) हित (न) नहीं है ॥ २३२ ॥

भावार्थ-'यदि ऐसा है तब तो जगत् ब्रह्मरूपसे सत्य होना चाहिये, ऐसी शंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि-जगत्को सत्य माननेसे तत्वकी हानि होती है, वेदकी अप्रामाणिकता होती है और श्रीकृष्ण भगवान्का गीता मेंका कथन असत्य होता है यह तीनों दोष आने देना महात्माओंको इष्ट नहीं है अर्थात् इन तीनों अटल सत्यों के प्रमाणसे जगत् सत्यरूप नहीं है ॥ २३२ ॥

ईश्वरो वस्तुतत्त्वज्ञो न चाहं तेष्ववस्थितः।
न च मत्स्थानि भूतानीत्येवमेव व्यची-
क्लृपत् ॥ २३३ ॥

अन्वय और पदार्थ—(तेषु) तिन दृश्यपदार्थोंमें (अहम्) मैं (न च) नहीं (अवस्थितः) स्थित हूँ (भूतानि) भूत (मत्स्थानि) मुझमें स्थित (न च) नहीं हैं (इति एवम्-एव) इस प्रकार ही (वस्तुतत्त्वज्ञः) वस्तुओंके तत्वको जाननेवाला (ईश्वरः) ईश्वर (व्यचीक्लृपत्) सिद्ध करता हुआ ॥२३३॥

भावार्थ--वस्तुओंके तत्वको जानने वाले ईश्वर श्रीकृष्णने भगवद्गीतामें कहा है,कि-दृश्य पदार्थ कल्पित हैं इस कारण उनमें मैं नहीं रहता हूँ और वह भी मुझ में नहीं रहते हैं ॥ २३३ ॥

यदि सत्यं भवेद्विश्वं सुषुप्तावुपलभ्यताम्।
यन्नोपलभ्यते किंचिदतोसत्स्वप्नवन्मृषा॥

अन्वय और पदार्थ–(यदि) जो (विश्वम्) विश्व (सत्यम्) सत्य (भवेत्) हो (सुषुप्तौ) सुषुप्तिमें (उपलभ्यताम्) प्रतीत हो (यत्) जा (किञ्चित्)कुछ (न) नहीं (उपलभ्यते) दीखता है (अतः) इसकारण (स्वप्नवत्) स्वप्नकी समान (असत्) असत् (मृषा) मिथ्या [अस्ति] है ॥ २३४ ॥

भावार्थ–यदि जगत् सत्य होता तो सुषुप्तिमें भी दीखना चाहिये था, परन्तु सुषुप्तिमें तो कुछ भी देखनेमें

नहीं आता इससे सिद्ध होता है कि-जगत् असत् और स्वप्नकी समान मिथ्या है ॥ २३४ ॥

अतः पृथङ्नास्ति जगत्परात्मनः पृथक्प्रतीतिस्तु मृषा गुणादिवत् । आरोपितस्यास्ति किमर्थवत्ताधिष्ठानमाभाति तथा भ्रमेण ॥ २३५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अतः) इस कारण (जगत्) संसार (परमात्मनः) परमात्मासे (पृथक्) भिन्न (न) नहीं (अस्ति) है (पृथक्-प्रतीतिः-तु) भिन्न, प्रतीति तो (गुणादिवत्) रज्जु आदिकी समान (मृषा) मिथ्या है (आरोपितस्य) आरोपित पदार्थकी (किम्) क्या (अर्थवत्ता) स्वतन्त्रसत्ता (अस्ति) है (भ्रमेण) भ्रांति करके (अधिष्ठानम्) अधिष्ठान (तथा) इसी प्रकार आरोपितसा (आभाति) प्रतीत होता है ॥ २३५ ॥

भावार्थ-इसकारण जगत्की सत्ता परमात्मासे जुदी नहीं है, जगत्की जो जुदी प्रतीति होती है सो रज्जुमें सर्पकी प्रतीति होने आदिकी समान मिथ्या है, आरोपित पदार्थकी स्वतन्त्रसत्ता होती ही नहीं, इसकारण भ्रान्तिवश अधिष्ठान ही आरोपित रूपसे प्रतीत होता है, ऐसा मानना चाहिये ॥ २३५ ॥

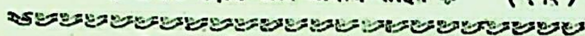
भ्रान्तस्य यद्यद् भ्रमतः प्रतीतं ब्रह्मैव तत्तद्रजतं हि शुक्तिः । इदंतया ब्रह्म सदैव

रूप्यते त्वारोपितं ब्रह्मणि नाममात्रम् ॥

अन्वय और पदार्थ-(हि) निश्चय (भ्रान्तस्य) भ्रांति पाये हुए पुरुषको (भ्रमतः) भ्रमसे (यत्-यत्) जो २ (रजतम्) रजत (प्रतीतम्) प्रतीत [भवति] होती है (तत्-तत्) वह वह (शुक्तिः) सीपी है [एवम्, प्रतीतम्, जगत्] ऐसे ही प्रतीत होने वाला जगत् (ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही है (सदा-एव) सदा ही (इदन्तया) यह इस निर्देश करके (ब्रह्म) ब्रह्म (निरूप्यते) निरूपण कियाजाता है (ब्रह्मणि) ब्रह्ममें (आरोपितम्, तु) आरोपित तो (नाममात्रम्) नाममात्र है ॥ २३६ ॥

भावार्थ-भ्रममें पड़ेहुए मनुष्यको जो कुछ भी भ्रम से प्रतीत होता है वह अधिष्ठानसे जुदा नहीं होता है, जैसे कि-सीपीमें प्रतीत होनेवाला रूपा, सीपीसे जुदा नहीं होता है। भ्रान्तिके समयमें 'यह रूपा है' इस वाक्यमें 'यह' इतना भान जैसे सीपी है, तैसे ही 'यह जगत् है' इस वाक्यमें 'यह' इतना अंश सर्वदा ब्रह्मरूप है, सीपीमें आरोपित रूपा जैसे नाममात्र है, तैसे ब्रह्म में आरोपित जगत् भी नाममात्र है ॥ २३६ ॥

अतः परं ब्रह्म सदद्वितीयं विशुद्ध-विज्ञानघनं निरञ्जनम् । प्रशान्तमाद्यन्तविहीनमक्रियं निरन्तरानन्दरसस्वरूपम् ॥ २३७ ॥



अन्वय और पदार्थ-(अतः) इसकारण (परं ब्रह्म) ब्रह्म (सत्) सत्य (अद्वितीयम्) अद्वितीय (विशुद्ध-विज्ञानघनम्) परमशुद्ध विज्ञानमय (निरञ्जनम्) निर्लेप (प्रशान्तम्) परमशान्त (आद्यन्तविहीनम्) आदि अन्तरहित (अक्रियम्) निष्क्रिय (निरन्तरानन्दरस-स्वरूपम्) निरन्तर आनन्दरस स्वरूप [अस्ति] है १३७

भावार्थ-इसकारण परब्रह्म सत्य है, अद्वितीय है, परमशुद्ध विज्ञानमय है, निरञ्जन है, परमशान्त है; आदि तथा अन्तसे रहित है, क्रियाओंसे रहित है, तथा निरन्तर आनन्द रसस्वरूप है ॥ २३७ ॥

निरस्तमायाकृतसर्वभेदं नित्यं सुखं निष्कलमप्रमेयम् । अरूपमव्यक्तमनाख्यमव्ययं ज्योतिः स्वयं किञ्चिदिदं चकास्ति ॥ २३८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(निरस्तमायाकृतभेदसर्वम्) मायाके कियेहुए सकल भेदोंसे रहित (नित्यम्) नित्य (सुखम्) सुखरूप (निष्कलम्) निरवयव (अप्रमेयम्) प्रमाणसे जाननेमें न आनेवाला (अरूपम्) रूपरहित (अव्यक्तम्) अव्यक्त (अनाख्यम्) नामरहित (अव्ययम्) नाशरहित (इदम्) यह (किञ्चित्) कुछ (स्वयम्-ज्योतिः) स्वयं प्रकाशरूपसे (चकास्ति) दीखरहा है ॥

भावार्थ-मायाके कियेहुए सकल भेदोंसे रहित, नित्य, सुखरूप, निरवयव, प्रमाणोंसे जाननेमें न आनेवाला

निराकार, मन और वाणीका अगम्य, नामरहित और अविनाशी होने पर भी यह कोई तत्त्व स्वयम्प्रकाश रूपसे दिपरहा है ॥ २३८ ॥

ज्ञातृज्ञेयज्ञानशून्यमनन्तं निर्विकल्पकम्
केवलाखण्डचिन्मात्रं परं तत्त्वं विदुर्बुधाः

अन्वय और पदार्थ-(बुधाः) ज्ञानी पुरुष (ज्ञातृज्ञेयज्ञानशून्यम्) ज्ञाता ज्ञेय और ज्ञानभावसे रहित (अनन्तम्) अनन्त (निर्विकल्पम्) निर्विकल्प (केवलाखण्डचिन्मात्रम्) केवल अखण्ड चैतन्यरूप (परम्-तत्त्वम्) परमतत्त्वको (विदुः) जानते हैं ॥ २३६ ॥

भावार्थ-ज्ञाता, ज्ञान तथा ज्ञेयभावसे रहित अनन्त निर्विकल्प और केवल अखंड चैतन्यरूप इस परम तत्त्व को ज्ञानी पुरुष जानते हैं ॥ २३६ ॥

अहेयमनुपादेयं मनोवाचामगोचरम् ।
अप्रमेयमनाद्यन्तं ब्रह्म पूर्णमहं महः २४०

अन्वय और पदार्थ-(अहेयम्) न छोड़ने योग्य (अनुपादयेम्) न ग्रहण करने योग्य (मनोवाचाम्) मन और वाणियोंका (अगोचरम्) अगोचर (अप्रमेयम्) प्रमाणोंसे अप्राप्य (अनाद्यन्तम्) आदि अन्त-रहित (पूर्णम्) पूर्ण (ब्रह्म) ब्रह्मरूप (महः) ज्योति (अहम्) मैं हूँ ॥ २४० ॥

भावार्थ-छोड़ा नजासके और ग्रहण न किया जासके ऐसा मन और इन्द्रियोंका अगम्य तथा प्रमाण भी जिस

के पास न पहुँचे ऐसा जो पूर्ण ब्रह्मरूप ज्योति है वह मैं ही हूँ ॥ २४० ॥

तत्त्वं पदाभ्यामभिधीयमानयोर्ब्रह्मा-त्मनोः शोधितयोर्यदीत्थम् । श्रुत्या तयोस्तत्त्वमसीति सम्यगेकत्वमेव प्रति-पाद्यते मुहुः ॥ २४१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्त्वमसि-इति) तत्त्वमसि इस (श्रुत्या) श्रुति करके (तत्त्वंपदाभ्याम्) तत् और त्वं पद करके (अभिधीयमानयोः) कहे जातेहुए (यदीत्थम् शोधितयोः) शङ्का समाधानके द्वारा शोधन किये हुए (ब्रह्मात्मनोः) ईश्वर और जीवका (एकत्वम्) एकत्व (एव) ही (मुहुः) वारम्बार (सम्यक्) भले प्रकार (प्रतिपाद्यते) प्रतिपादन किया जाता है ॥२४१॥

भावार्थ-'तत्त्वमसि' यह श्रुति अपने तत् और त्वम् इन पदोंसे कहे जाने वाले और यदि इत्थम् आदिके द्वारा शोधन किये हुए ईश्वर और जीवकी एकताका वारम्बार भलेप्रकार वर्णन करती है ॥ २४१ ॥

ऐक्यं तयोर्लक्षितयोर्न वाच्ययोर्नि-गद्यन्तेऽन्योन्यविरुद्धधर्मिणोः । खद्योत-भान्वोरिव राजभृत्ययोः कूपाम्बुराश्योः परमाणुमेर्वोः ॥ २४२ ॥



अन्वय और पदार्थ-(खद्योतभान्वोः) पटवीजने और सूर्यकी (राजभृत्ययोः) राजा और सेवककी (कूपाम्बुराश्योः) कूप और समुद्रकी (परमाणुमेर्वोः इव) परमाणु और सुमेरुकी समान (अन्योन्यविरुद्ध-धर्मिणोः) परस्पर विरुद्ध धर्मवाले (तयोः) उन दोनों का (लक्षितयोः) लक्ष्यरूप होने पर (ऐक्यम्) एकत्व (निगद्यते) कहा जाता है (वाच्ययोः) वाच्यरूप होने पर (न) नहीं ॥ २४२ ॥

भावार्थ-ईश्वर और जीवकी लक्ष्यरूपसे एकता है परन्तु वाच्यरूपसे एकता नहीं है, क्योंकि-वाच्यरूपमें तो सूर्य और पतङ्गेकी समान, राजा और उसके सेवकों की समान, समुद्र और कूपकी समान एवं मेरु और परमाणुकी समान इनके औपाधिक धर्म परस्पर विरुद्ध हैं

तयोर्विरोधोऽयमुपाधिकल्पितो न वास्तवः कश्चिदुपाधिरेषः । ईशस्य मायामहदादिकारणं जीवस्य कार्यं शृणु पञ्चकोशम् ॥ २४३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अयम्) यह (तयोः) उनका (विरोधः) विरोध (उपाधिकल्पितः) उपाधिका कल्पना किया हुआ है (एषः) यह (उपाधिः) उपाधि (कश्चित्) कोई (वास्तवः) वास्तविक (न) नहीं है (महदादि-कारणम्) महत्तत्त्व आदिकी कारणरूप (माया) माया


(ईशस्य) ईश्वरका (कार्यम्) कार्यरूप (पञ्चकोशम्) पञ्चकोशको (जीवस्य) जीवका (शृणु) सुन ॥२४३॥

भावार्थ-उनका यह विरोध उपाधिका कल्पना किया हुआ है, कुछ वास्तविक नहीं है, महत्तत्त्व आदिकी कारणरूप माया ईश्वरकी उपाधि है और मायाका कार्य रूप पञ्चकोश जीवकी उपाधि है ॥ २४३ ॥

एतावुपाधी परजीवयोस्तयोः सम्यङ्-निरासे न परो न जीवः। राज्यं नरेन्द्रस्य भटस्य खेटकस्तयोरपोहे न भटो न राजा

अन्वय और पदार्थ-(एतौ) यह (परजीवयो):ईश्वर और जीवकी (उपाधी) उपाधि हैं (तयोः) तिन उपाधियोंका (सम्यक्) भले प्रकार (निरासे) त्याग होने पर (परः) ईश्वर (न) नहीं है (जीवः) जीव (न) नहीं है (नरेन्द्रस्य) भूपतिका (राज्यम्) राज्य है (भटस्य) योधाका (खेटकः) शस्त्र है (तयोः) तिन राज्य और शस्त्रके (अपोहे) दूर होने पर (भटः)योधा (न) नहीं है (राजा) राजा (न) नहीं है ॥ २४४ ॥

भावार्थ-यह जो ईश्वर और जीवकी उपाधि हैं, इन का भलीप्रकार त्याग करदेने पर न ईश्वर रहता है न जीव रहता है, जैसे राज्यरूप उपाधिसे एक मनुष्य राजा कहाता है, दूसरा तलवार आदि उपाधिसे उसका सिपाही कहलाता है, परन्तु इन दोनों उपाधियोंके दूर होजाने पर न राजा रहता है न सिपाही रहता है ॥ २४५ ॥

अथात आदेश इति श्रुतिः स्वयं निषेधति ब्रह्मणि कल्पितं द्वयम्। श्रुति-प्रमाणानुगृहीतबोधात्तयोर्निरासः करणीय एवम् ॥ २४५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अथात आदेश इति) 'अथात आदेशः' यह (श्रुतिः) श्रुति (स्वयम्) आप (ब्रह्मणि) ब्रह्मके विषैं (कल्पितम्) कल्पना कियेहुए (द्वयम्) द्वैत-भावको (निषेधति) निषेध करती है (श्रुतिप्रमाणानु-गृहीतबोधयोः) श्रुतिरूप प्रमाणके अनुग्रह करके प्राप्त हुए बोधसे (एवम्) इस प्रकार (तयोः) तिन उपा-धियोंका (निरासः) त्याग (करणीयः) करना चाहिये ॥

भावार्थ-'अथात आदेशः' यह श्रुति, ब्रह्ममें कल्पना किये हुए द्वैतका साक्षात् निषेध करती है, सो इस श्रुतिरूप प्रमाणसे पूर्ण अवलम्ब पाये हुए ज्ञानके प्रभाव से ऊपर कहे अनुसार दोनों उपाधियोंका त्याग करना चाहिये ॥ २४५ ॥

नेदं नेदं कल्पितत्वान्न सत्यं रज्जु-दृष्टव्यालवत् स्वप्नवच्च। इत्थं दृश्यं साधुयुक्त्या व्यपोह्य ज्ञेयः पश्चादेकभाव-स्तयोर्यः ॥ २४६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(कल्पितत्वात्) कल्पित होनेसे (इदम्) यह [ब्रह्म] ब्रह्म (न) नहीं है (इदम्) यह

[ब्रह्म] ब्रह्म (न) नहीं है (रज्जुदृष्टव्यालवत्) रज्जु में दीखे हुए सर्पकी समान (च) और (स्वप्नवत्) स्वप्नकी समान (सत्यम्) सत्य (न) नहीं है (इत्थम्) इसप्रकार (साधुयुक्त्या) सुन्दर युक्ति करके (दृश्यम्) दृश्यको (व्यपोह्य) हठाकर (पश्चात्) पीछे (तयोः) उन दोनोंका (यः) जो (एकभावः) एक भाव है (ज्ञेयः) जानना चाहिये ॥ २४६ ॥

भावार्थ-यह वस्तु ब्रह्म नहीं है, यह वस्तु ब्रह्म नहीं है, क्योंकि-ब्रह्ममें कल्पित है और कल्पित होनेके कारण रज्जुमें भासे हुए सर्पकी समान तथा स्वप्नकी समान सत्य नहीं है, इसप्रकार श्रेष्ठ युक्तिसे दृश्य पदार्थोंका अपवाद करके पीछे ईश्वर और जीवका जो एकभाव है उसको जानना चाहिये ॥ २४६ ॥

ततस्तु तौ लक्षणया सुलक्ष्यौ तयो-रखण्डैकरसत्वसिद्धये । नालं जहत्या न तथाऽजहत्या किंतूभयार्थात्मिकयैव भाव्यम् ॥ २४७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ततः-तु) तदनन्तर तो (तयोः) तिन दोनोंकी (अखण्डैकरसत्वसिद्धये) अखण्ड एक-रसत्वकी सिद्धिके निमित्त (तौ) वह दोनों (लक्षणया) लक्षणासे (सुलक्ष्यौ) सम्यक् समझने चाहियें (जहत्या) जहत्स्वार्थलक्षणा करके (अलम्) पर्याप्त (न) नहीं है (तथा) तिसी प्रकार (अजहत्या) अजहत्स्वार्थलक्षणा

करके (न) नहीं है (किन्तु) परन्तु (उभयार्थात्मिकया एव) जहदजहत्स्वार्थलक्षणा करके ही (भाव्यम्) भावना करनी चाहिये ॥ २४७ ॥

भावार्थ—दोनोंकी अखण्ड एकरससिद्धिके लिये लक्षणासे दोनोंका (ईश्वर तथा जीवका) लक्ष्य अर्थ समझना चाहिये,इसको समझनेमें जहत्स्वार्थलक्षणाका या अजहत्स्वार्थलक्षणाका आश्रय न करके जहदजहत्स्वार्थलक्षणाका अथवा भागत्यागलक्षणाका आश्रय करना चाहिये [इन लक्षणाओंके उदाहरण इसप्रकार समझने चाहियें कि–'गङ्गामें ग्राम है' इस वाक्यमें गंगापदका प्रवाहरूप शक्य अर्थ सब त्यागकर तटका ग्रहण किया जाता है इसकारण इसमें जहत्स्वार्थलक्षणा है। 'श्वेत दौडता है' इस वाक्यमें दौड़नेरूप क्रियामें लक्षणासे अश्वका अन्वय लेकर श्वेतका भी अन्वय लियाजाता है इसकारण यहाँ अजहत्स्वार्थलक्षणा है। 'वह ही यह देवदत्त है' इस वाक्यमें वह और यह इन दोनों परस्पर विरुद्ध अंशोंको त्याग कर देवदत्तरूप अविरुद्ध अंशों का ग्रहण कियाजाता है इसकारण यह जहजहदत्स्वार्थलक्षणा वा भागत्यागलक्षणा हुई] ॥ २४७ ॥

स देवदत्तोऽयमितीह चैकता विरुद्धधर्मांशमपास्य कथ्यते । यथा तथा तत्त्वमसीति वाक्ये विरुद्धधर्मानुभयत्र हित्वा ॥ २४८ ॥ संलक्ष्य चिन्मात्रतया

सदात्मनोरखण्डभावः परिचीयते बुधैः।
एवं महावाक्यशतेन कथ्यते ब्रह्मात्मनो-
रैक्यमखण्डभावः ॥ २४६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (सः, अयम्, देवदत्तः) वह यह देवदत्त है (इति) ऐसे (इह) इस वाक्यमें (विरुद्धधर्मांशम्) विरुद्ध धर्मवाले अंशको (अपास्य) त्यागकर (एकता) एकता (कथ्यते) कही जाती है (तथा च) तैसे ही (तत्, त्वं, असि, इति, वाक्ये) तत्त्वमसि इस वाक्यमें (उभयत्र) दोनोंमेंके (विरुद्धधर्मान्) विरुद्ध धर्मोंको (हित्वा) त्याग कर (चिन्मात्रतया) चैतन्यरूप करके (संलक्ष्य) सम्यक् प्रकारसे लक्षणा करके (सदात्मनोः) सत्स्वरूप दोनों का (अखण्डभावः) अखण्डपना (बुधैः) विचारवानों करके (परिचीयते) अनुभवमें लाया जाता है (एवम्) इस प्रकार (महावाक्यशतेन) सैंकड़ों महावाक्यों करके (ब्रह्मात्मनोः) ईश्वर और जीवका (अखण्डभावः) अखण्डपनारूप (ऐक्यम्) एकत्व (कथ्यते) कहा जाता है

भावार्थ-जैसे 'वही यह देवदत्त है' इस वाक्यमें 'वह' और 'यह' इन दो विरुद्ध भागोंका त्यागनारूप भाग-त्याग लक्षणा करके देवदत्त पिण्डकी एकता माननेमें आती है, तैसे ही 'तत्त्वमसि' इस वाक्यमें ईश्वर और जीवके विरुद्ध अंशोंको त्यागकर चैतन्यरूप दोनोंका अखंडपना विचारवानोंके अनुभवमें आता है इसप्रकार

सैंकड़ों महावाक्य भागत्यागलक्षणासे ईश्वर तथा जीव के अखण्ड एकपनेको कहते हैं ॥ २४८ ॥ २४९ ॥

अस्थूलमित्येतदसन्निरस्य सिद्धं स्वतो व्योमवदप्रतर्क्यम्। अतो मृषामात्रमिदं प्रतीतं जहीहि यत्स्वात्मतया गृहीतम्। ब्रह्माहमित्येव विशुद्धबुद्ध्या विद्धि स्वमात्मानमखण्डबोधम् ॥ २५० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अस्थूलम्, इत्येतत्) अस्थूलम् इत्यादि श्रुति (असत्) मिथ्या पदार्थको (निरस्य) निषेध करके (स्वतः) स्वयं (सिद्धम्) सिद्ध (व्योमवत्) आकाशकी समान (अप्रतर्क्यम्) तर्कमें न आनेवालेको [बोधयति] बोधन करती है (अतः) इस कारण (मृषामात्रम्) मिथ्यारूप (प्रतीतम्) प्रतीत होते हुए (इदम्) इसको (यत्) जो (स्वात्मतया) आत्मस्वरूप करके (गृहीतम्) ग्रहण किया है (जहीहि) त्याग (विशुद्धबुद्ध्या) परमशुद्ध बुद्धि करके (अहम् एव) मैं ही (ब्रह्म) ब्रह्म हूँ (इति) इस प्रकार(स्वम्) अपने (आत्मानम्) आत्माको (अखण्डबोधम्) अखंड ज्ञानस्वरूप (विद्धि) जान ॥ २५० ॥

भावार्थ-'अस्थूलम्' इत्यादि श्रुति मिथ्या पदार्थोंका निषेध करके स्वतःसिद्ध, आकाशकी व्यापक और तर्कनामें न आनेवाले परब्रह्मका बोध कराती है, इस कारण हे शिष्य ! इन भासनेवाले मिथ्या पदार्थोंको

कि-जिनको तू अपना आत्मा मानरहा है तिनको छोड़ दे और शुद्धबुद्धिसे 'मैं ब्रह्म हूँ' इसप्रकार अपने आत्मा को अखण्डज्ञानस्वरूप जान ॥ २५० ॥

मृत्कार्यं सकलं घटादि सततं मृन्मात्रमेवाहितं तद्वत्सज्जनितं सदात्मकमिदं सन्मात्रमेवाखिलम्। यस्मान्नास्ति सतः परं किमपि तत्सत्यं स आत्मा स्वयं तस्मात्तत्त्वमसि प्रशान्तममलं ब्रह्माद्वयं यत्परम् ॥ २५१ ॥

अन्वय और पदार्थ-[यद्वत्] जैसे (मृत्कार्यम्) मट्टी का कार्यरूप (घटादि) घडा आदि (सकलम्) सब (सततम्) सर्वकालमें (मृन्मात्रम् एव) मट्टी मात्र ही (आहितम्) स्थापित है (तद्वत्) तिसी प्रकार (सज्जनितम्) सत्‌रूप ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ (इदम्) यह (अखिलम्) सब (सदात्मकम्) सत् है उपादान जिस का ऐसा (सन्मात्रम्-एव) सत्‌रूप ही है (यस्मात्) (जिस कारण (सतः) सत्‌से (परम) पृथक् (किमपि) कुछ भी (न) नहीं (अस्ति) है (तत्) वह (सत्यम्) सत्य (स्वयम्) साक्षात् (सः) वह (आत्मा) आत्मा है (तस्मात्) तिससे (यत्) जो (प्रशान्तम्) परमशांत (अमलम्) निर्मल (अद्वयम्) अद्वितीय (परम्) पर (ब्रह्म) ब्रह्म है (तत्) वह (त्वम्) तू (असि) है॥

भावार्थ-जैसे मट्टीके कार्यरूप घट आदि पदार्थ मट्टी-रूप ही हैं, तैसे ही सत् ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ यह सब जगत् सत्‌रूप ही है, क्योंकि-सत्‌से जुदा दूसरा कुछ भी नहीं है, वह साक्षात् सत् आत्मा ही है, इसकारण परमशान्त निर्मल अद्वितीय जो परब्रह्म है सो तू ही है

निद्राकल्पितदेशकालविषयज्ञात्रादि-
सर्वं यथा मिथ्या तद्वदिहापि जाग्रति
जगत्स्वाज्ञानकार्यत्वतः । यस्मादेवमिदं
शरीरकरणप्राणाहमाद्यप्यसत्तस्मात्तत्त्व-
मसि प्रशान्तममलं ब्रह्माद्वयं यत्परम् ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (निद्राकल्पित-देशकालविषयज्ञात्रादिसर्वम्) स्वप्नमें कल्पना कियाहुआ देश काल विषय ज्ञाता आदि सब (मिथ्या) मिथ्या है (तद्वत्) तैसे ही (इह) इस (जाग्रति अपि) जाग्रत् अवस्थामें भी (स्वज्ञानकार्यत्वतः) अपने अज्ञानका कार्यरूप होनेसे (जगत्) संसार [मिथ्या] मिथ्या है (यस्मात्) जिससे (एवम्) इसप्रकार (इदम्) यह (शरीरकरणप्राणाहमादि अपि) शरीर इन्द्रियें प्राण अहंकार आदि भी (असत्) मिथ्या है (तस्मात्) तिससे (यत्) जो (प्रशान्तम्) परमशान्त (अमलम्) निर्मल (अद्वयम्) अद्वितीय (परम्) पर (ब्रह्म) ब्रह्म है (तत्) वह (त्वम्) तू (असि है ॥ २५२ ॥

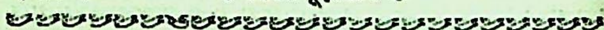

भावार्थ—जैसे स्वप्नमें अज्ञानसे कल्पना किया हुआ देश समय अनेकों पदार्थ और उनको जानने वाला आदि सब मिथ्या होते हैं, तैसे ही जाग्रत् अवस्थामें भी अज्ञानसे कल्पना किया हुआ यह सब जगत् मिथ्या है इसप्रकार शरीर, इन्द्रियें, प्राण और अहंकार आदि सब मिथ्या है, इसकारण परमशान्त निर्मल और अद्वितीय जो परब्रह्म है सो तू ही है ॥ २५२ ॥

जातिनीतिकुलगोत्रदूरगं नामरूप-
गुणदोषवर्जितम् । देशकालविषयाति-
वर्त्ति यद् ब्रह्मतत्त्वमसि भावयात्मनि २५३

अन्वय और पदार्थ-(जातिनीतिकुलगोत्रदूरगम्) जाति नीति, कुल और गोत्रसे दूर रहने वाला (नाम-रूपगुणदोषवर्जितम्) नाम, रूप, गुण और दोषसे रहित (देशकालविषयातिवर्त्ति) देश, काल और विषयोंसे पर (यत्) जो (ब्रह्म) ब्रह्म है (तत्) वह (त्वम्) तू (असि) है [इति] ऐसा (आत्मनि) मनमें(भावय) विचार

भावार्थ-जाति, नीति कुल और गोत्रसे दूर रहने वाला, तथा नाम, रूप, गुण और दोष से रहित एवं देश काल और विषयोंके पार रहने वाला जो ब्रह्म है सो तू ही है, ऐसी मनमें भावना कर ॥ २५३ ॥

यत्परं सकलवागगोचरं गोचरं विमल-
बोधचक्षुषः । शुद्धचिद्घनमनादि वस्तु
यद् ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि ॥२५४॥



अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (परम्) परब्रह्म (सकलरागगोचरम्) सबके प्रेमका विषय (विमलबोध-चक्षुषः) निर्मल ज्ञानरूप दृष्टिवालेके (गोचरम्) जानने में आनेवाला है (यत्) जो (ब्रह्म) ब्रह्म (शुद्धचिद्घनम्) शुद्ध चैतन्यघन (अनादि वस्तु) अनादि पदार्थ है (तत्) सो (त्वम्) तू (असि) है [इति] ऐसा (आत्मनि) मन में (भावय) विचार ॥ २५४ ॥

भावार्थ-जो परब्रह्म सबके प्रेमका विषय है और निर्मल ज्ञानदृष्टिसे जाना जाता है, जो शुद्ध चैतन्यघन अनादि पदार्थ है, वह तू ही है, ऐसा मनमें विचार ॥

षड्भिरूर्मिभिरयोगि योगिहृद्भावितं न करणैर्विभावितम्। बुद्धयवेद्यमनवद्यमस्ति यद् ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि॥२५५॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (ब्रह्म) ब्रह्म (षड्भिः) छः (ऊर्मिभिः) ऊर्मियों करकै (अयोगि) रहित है (योगिहृद्भावितम्) योगियों करकै हृदयमें धारण किया गया है (करणैः) इन्द्रियों करकै (न) नहीं (विभावितम्) जाना गया है (बुद्धयवेद्यम्) बुद्धि करकै जाननेमें नहीं आता है (अनवद्यम्) दोषरहित (अस्ति) है (तत्) वह (त्वम्) तू (असि) है [इति] ऐसा (आत्मनि) मनमें (भावय) विचार ॥ २५५ ॥

भावार्थ-जो परब्रह्म भूँख प्यास आदि छः ऊर्मियोंसे रहित है, जिसका योगी अपने हृदयमें विचार करते हैं

जिसको इन्द्रियें नहीं जानसकतीं, जो बुद्धिसे नहीं जाना जाता और दोषरहित है वह तू ही है, ऐसा अपने मनमें विचार ॥ २५५ ॥

भ्रान्तिकल्पितजगत्कलाश्रयं स्वाश्रयं च सदसद्विलक्षणम्। निष्कलं निरुपमानवद्धि यद् ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (ब्रह्म) ब्रह्म (भ्रांतिकल्पितजगत्कलाश्रयम्) भ्रान्तिसे कल्पित जगत्कला का अधिष्ठान रूप है (स्वाश्रयम्) अपने ही आश्रय वाला है (सदसद्विलक्षणम्) कारण व कार्यसे विलक्षण है (निष्कलम्) निरवयव है (च) और (हि) निश्चय (निरुपमानवत्) विना उपमाका है (तत्) सो (त्वम्) तू (असि) है [इति] ऐसा (आत्मनि) मनमें (भावय) विचार ॥ २५६ ॥

भावार्थ-जो ब्रह्म भ्रान्तिसे कल्पना किये हुए जगत् रूप अंशका आश्रय है, उसका आश्रय कोई नहीं है, जो न कारण है न कार्य है, जो निरवयव है और जिस को किसीकी उपमा नहीं दीजासकती वह ब्रह्म तू ही है ऐसी मनमें भावना कर ॥ २५६ ॥

जन्मवृद्धिपरिणत्यपक्षयव्याधिनाशनविहीनमव्ययम्। विश्वसृष्ट्यवविघातकारणं ब्रह्म तत्वमसि भावयात्मनि २५७



अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (ब्रह्म) ब्रह्म (जन्मवृद्धिपरिणत्यपक्षयव्याधिनाशनविहीनम्) जन्म, वृद्धि, परिणाम, अपक्षय, व्याधि और नाशसे रहित (अव्ययम्) अविनाशी (विश्वसृष्ट्यवविघातकारणम्) विश्व की सृष्टि और विनाशका कारण है (तत्) सो (त्वम्) तू (असि) है [इति] ऐसा (आत्मनि) मनमें (भावय) विचार ॥ २५७ ॥

भावार्थ-जो परब्रह्म जन्मना, बढ़ना, बदलना, क्षीण होना, रोगी होना और नष्ट होना, इन छः भाव विकारोंसे शून्य है अतएव अविनाशी है और जो इस विश्व को रचकर फिर प्रलय करदेता है, वह परब्रह्म तू ही है ऐसी मनमें भावना कर ॥ २५७ ॥

**अस्तभेदमनपास्तलक्षणं निस्तरङ्ग-
जलराशिनिश्चलम् । नित्यमुक्तमविभक्त-
मूर्त्ति यद् ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि २५८**

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (ब्रह्म) ब्रह्म (अस्तभेदम्) भेदरहित (अनपास्तलक्षणम्) अविचल लक्षणों वाला (निस्तरङ्गजलराशिनिश्चलम्) विना तरङ्गके समुद्र की समान निश्चल (नित्यमुक्तम्) नित्यमुक्त (अविभक्तमूर्त्ति) विभाग रहित मूर्त्तिवाला है (तत्) वह (त्वम्) तू (असि) है [इति] ऐसा (आत्मनि) मनमें (भावय) विचार ॥ २५८ ॥

भावार्थ-जो परब्रह्म भेदरहित है, अविचल लक्षण वाला है, विना तरङ्गोंके समुद्रकी समान निश्चल है

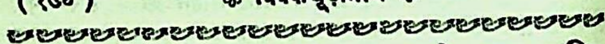
नित्यमुक्त है और जिसका विभाग नहीं होसकता, वह परब्रह्म तू ही है, इस विषयकी मनमें भावना कर २५८

एकमेव सदनेककारणं कारणान्तर-
निरास्यकारणम् । कार्यकारणविलक्षणं
स्वयं ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि २५६

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (ब्रह्म) ब्रह्म (एकम्, सत्, एव) एक होता हुआ ही (अनेककारणम्)अनेकों का कारण है (कारणान्तरनिरास्यकारणम्) और कारणों को दूर करनेका कारणरूप है (कार्यकारणविलक्षणम्) कार्य और कारणसे विलक्षण (तत्) वह (त्वम्) तू (असि) है [इति] ऐसा (आत्मनि) मनमें (भावय) विचार ॥ २५६ ॥

निर्विकल्पकमनल्पमक्षरं यत्क्षराक्षर-
विलक्षणं परम् । नित्यमव्ययसुखं निर-
ञ्जनं ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि२६०

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (ब्रह्म) ब्रह्म (निर्विकल्पम्) विकल्परहित (अनल्पम्) सबसे बड़ा (अक्षरम्) अविनाशी (क्षराक्षरविलक्षणम्) जीव तथा ईश्वर से विलक्षण (परम्) पर (नित्यम्) नित्य (अव्ययसुखम्) अविचल सुखरूप (निरञ्जन) निरञ्जन है (तत्) वह (त्वम्) तू (असि) है [इति] ऐसा (आत्मनि) मनमें (भावय) विचार ॥ २६० ॥



भावार्थ–जो परब्रह्म निर्विकल्प, सबसे बड़ा, अविनाशी जीव तथा ईश्वरसे विलक्षण, पर नित्य अविचल सुखरूप और निरञ्जन है, वह परब्रह्म तू ही है, इस विषयकी मनमें भावना कर ॥ २६० ॥

यद्विभाति सदनेकधा भ्रमान्नामरूप-गुणविक्रियात्मना । हेमवत्स्वयमविक्रियं सदा ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि २६१

अन्वय और पदार्थ–(यत्) जो (ब्रह्म) ब्रह्म (हेमवत्) सुवर्णकी समान [एकम्] एक (सत्) होता हुआ (भ्रमात्) भ्रमसे (नामरूपगुणविक्रियात्मना) नाम रूप गुण तथा नामके विकाररूपसे (अनेकधा) अनेक प्रकारका (भासने) भासता है (सदा) सदा (स्वयम्) आप (अविक्रियम्) अविकारी है (तत्) वह (त्वम्) तू (असि) है [इति] ऐसा (आत्मनि) मनमें (भावय) भावना कर ॥ २६१ ॥

भावार्थ-जो परब्रह्म एक होकर भी सुवर्णकी समान भ्रमके कारण नाम रूप और गुण नामके विकाररूपसे अनेकों प्रकारका भासता है और स्वयं सदा निर्विकार है, वह परब्रह्म तू ही है, ऐसी भावना मनमें कर २६१

यच्च कास्त्यनपरं परात्परं प्रत्यगेकर-समात्मलक्षणम् । सत्यचित्सुखमनन्त-मव्ययं ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि २६२

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (ब्रह्म) ब्रह्म (अनपरम्) अद्वितीय (परात्) परसे (परम्) पर (प्रत्यक्) व्यापक (एकरसम्) एकरस (आत्मलक्षणम्) स्वतन्त्रस्वरूप (सत्यचित्सुखम्) सत्, चित्, सुखरूप (अनन्तम्) अनन्त (अव्ययम्) अविनाशी (चकास्ति) भासता है (तत्) सो (त्वम्) तू (असि) है [इति] ऐसा (आत्मनि) मनमें (भावय) भावना कर २६२

भावार्थ-जो परब्रह्म अद्वितीय, परसे पर, व्यापक एकरस स्वतन्त्रस्वरूप, सच्चिदानन्दरूप, अनन्त और अविनाशीरूप भासता है, वह तू ही है, ऐसी मनमें भावना कर ॥ २६२ ॥

उक्तमर्थमिममात्मनि स्वयं भावयेत् प्रथितयुक्तिभिर्धिया । संशयादिरहितं कराम्बुवत्तेन तत्त्वनिगमो भविष्यति २६३

अन्वय और पदार्थ-(इमम्) इस (उक्तम्) कहेहुए (अर्थम्) अर्थको (धिया) बुद्धि करके (प्रथितयुक्तिभिः) प्रसिद्ध युक्तियों करके (स्वयम्) आप (आत्मनि)मनमें (भावयेत्) विचारे (तेन) तिस करके (संशयादिरहितम्) निःसन्देहरूपसे (तत्त्वनिगमः) तत्त्वज्ञान (कराम्बुवत्) हाथमें स्थित जलकी समान (भविष्यति) होगा ॥ २६३ ॥

भावार्थ-ऊपर कहे हुए विषयका बुद्धिसे और प्रौढ़ युक्तियोंसे अपने आप ही मनमें विचार करै, कि जिससे

निःसन्देहरूपसे तत्त्वज्ञान हाथमें स्थित जलकी समान सुलभ होजायगा ॥ २६३ ॥

संबोधमात्रं परिशुद्धतत्त्वं विज्ञाय संघे नृपवच्च सैन्ये । तदाश्रयः स्वात्मनि सर्वदा स्थितो विलापय ब्रह्मणि विश्वजातम् ॥ २६४ ॥

अन्वय और पदार्थ (सैन्ये) सेना में (नृपवत्) राजा की समान (संघे) देहादि के समूहमें (संबोधमात्रम्) ज्ञानस्वरूप (परिशुद्धतत्त्वम्) परम शुद्ध आत्मा है [इति] ऐसा (विज्ञाय) जानकर (तदाश्रयः) उसके ही आश्रित हुआ (सर्वदा) सदा (स्वात्मनि) निज स्वरूप में (स्थितः) स्थित हुआ (विश्वजातम्) सकल विश्वको (ब्रह्मणि) ब्रह्ममें (विलापय) विलीन कर।

भावार्थ–जैसे सेनामें राजा होता है, तैसे ही देहादि के समूह में ज्ञानस्वरूप शुद्ध आत्मा है, ऐसा जानकर तू उसका ही आश्रय कर और सर्वदा निज स्वरूपमें ही रहकर सकल जगत् को उसमें ही लीन करदे २६४

बुद्धौ गुहायां सदसद्विलक्षणं ब्रह्मास्ति सत्यं परमद्वितीयम् । तदात्मना योऽत्र वसेद्गुहायां पुनर्न तस्याङ्गगुहाप्रवेशः ॥

अन्वय और पदार्थ–(अङ्ग) हे प्रिय (बुद्धौ) बुद्धिरूप (गुहायाम्) गुफा में (सदसद्विलक्षणम्) कारण

और कार्यसे विलक्षण (सत्यम्) सत्य (परम्) पर (अद्वितीयम्) अद्वितीय (ब्रह्म) ब्रह्म (अस्ति) है (यः) जो (तदात्मना) ब्रह्मरूप करके (अत्र) इस (गुहायाम्) गुफा में (वसेत्) वसे (तस्य) उसका (पुनः) फिर (गुहाप्रवेशः) गुफामें प्रवेश (न) नहीं।

भावार्थ-हे शिष्य! बुद्धिरूप गुफामें कार्य कारण से विलक्षण, सत्य पर और अद्वितीय ब्रह्म है, इसकारण जो पुरुष उस ब्रह्मस्वरूप करके इस गुफा में रहता है उसको फिर माता के गर्भरूपी गुफामें प्रवेश नहीं करना पड़ता है ॥ २६५ ॥

ज्ञाते वस्तुन्यपि बलवती वासनानादिरेषा कर्त्ता भोक्ताप्यहमिति दृढा यास्य संसारहेतुः। प्रत्यग्दृष्ट्यात्मनि निवसता सापनेया प्रयत्नान्मुक्तिं प्राहुस्तदिह मुनयो वासनातानवं यत् ॥ २६६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वस्तुनि) ब्रह्मतत्त्व के (ज्ञाते-अपि) जान लेनेपर भी (अहम्) मैं (कर्त्ता) करने वाला हूँ (भोक्ता अपि) भोगने वाला भी हूँ (इति) इसप्रकार (या) जो (दृढा) दृढ़ (बलवती) बलवाली (अनादिः) अनादि (वासना) वासना [अस्ति] है (एषा) यह (अस्य) इसके (संसारहेतुः) जन्म मरण का कारण है (प्रत्यग्दृष्ट्या) व्यापकदृष्टि करके (आत्मनि)

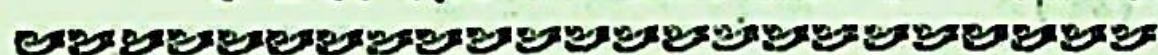
आत्मा में (निवसता) निवास करने वाले करके (सा) वह (प्रयत्नात्) प्रयत्न से (अपनया) दूर करने योग्य है (यत्) जो (वासनातानवम्) वासनाका दुर्बल होना है (तत्) उसको (इह) इस लोकमें (मुनयः) मुनि (मुक्तिम्) मुक्ति (प्राहुः) कहते हैं ॥ २६६ ॥

भावार्थ-ब्रह्म तत्त्वको जान लेने पर भी मैं कर्त्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ, इस प्रकारकी जो दृढ़ बलवान् अनादि-वासना है, यह ही पुरुष के जन्म मरणरूप संसारकी कारण है, इसकारण आत्माको सर्वव्यापक जानकर स्वरूपमें स्थित रहतेहुए उद्योग करके वासना दूर करनी चाहिये, क्योंकि-वासनाकी कमी होना ही मुक्ति है ऐसा मुनि कहते हैं ॥ २६६ ॥

अहंममेति यो भावो देहाद्यादावनात्मनि । अध्यासोऽयं निरस्तव्यो विदुषा स्वात्मनिष्ठया ॥ २६७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(देहाद्यादौ) देह इन्द्रियादि (अनात्मनि) जड़में (अहम्, मम, इति) मैं हूँ, मेरा है, इस प्रकार (यः) जो (भावः) भाव है (अयम्) यह (अध्यासः) अध्यास (विदुषा) विद्वान् करके (स्वात्मनिष्ठया) स्वरूपनिष्ठाके द्वारा (निरस्तव्यः) दूर करना चाहिये ॥ २६७ ॥

भावार्थ-देह और इन्द्रियें आदि जो आत्मा नहीं हैं तिन जड़ पदार्थोंमें मैं हूँ, मेरे हैं इस प्रकार जो अध्यास है वह विद्वान् पुरुषको स्वरूपनिष्ठासे दूर करना चाहिये



ज्ञात्वा स्वं प्रत्यगात्मानं बुद्धितद्वृत्ति-साक्षिणम्। सोऽहमित्येव सद्वृत्यानात्मन्यात्ममतिं जहि ॥ २६८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(बुद्धितद्वृत्तिसाक्षिणम्) बुद्धि और उसकी वृत्तियोंके साक्षी (स्वम्) अपने (प्रत्यगात्मनम्) व्यापक आत्माको (ज्ञात्वा) जानकर (सः) वह (अहम्) मैं हूँ [इति एव] इस प्रकार ही (सद्वृत्या) श्रेष्ठ वृत्तिके द्वारा (अनात्मनि) अनात्म पदार्थों में (आत्ममतिम्) आत्मबुद्धिको (जहि) त्याग २६८

भावार्थ—बुद्धि और बुद्धिकी वृत्तियोंके साक्षी अपने प्रत्यगात्माको जानकर वह ही मैं हूँ, ऐसी वृत्ति रखता हुआ तू जड़पदार्थोंमें की आत्मबुद्धि को त्याग दे २६८

लोकानुवर्तनं त्यक्त्वा त्यक्त्वा देहानुवर्तनम्। शास्त्रानुवर्तनं त्यक्त्वा स्वाध्यासापनयं कुरु ॥ २६९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(लोकानुवर्त्तनम्) लोकोंके अनुसरण को (त्यक्त्वा) त्यागकर (देहानुवर्त्तनम्) देहके अनुसरणको (त्यक्त्वा) त्याग कर (शास्त्रानुवर्त्तनम्) शास्त्रके अनुसरणको (त्यक्त्वा) त्यागकर (स्वाध्यासापनयम्) अपने अध्यासका अपनयन (कुरु) कर ॥

भावार्थ-लोकोंके अनुसार वर्त्ताव छोड़कर शरीरके अनुकूल वर्त्ताव करना छोड़कर और शास्त्रके अनुसरणको भी छोड़कर तू अपने अध्यास को दूर कर ॥

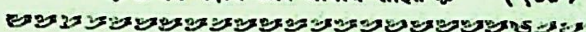
लोकवासनया जन्तोः शास्त्रवासन-
यापि च । देहवासनया ज्ञानं यथावन्नैव
जायते ॥ ७२० ॥

अन्वय और पदार्थ-(जन्तोः) प्राणीको (लोकवासनया) लोकवासना करके (अपि) और (शास्त्रवासनया) शास्त्रकी वासना करके (देहवासनया, च) देहकी वासना करके भी (यथावत्) ठीक २१ (ज्ञानम्) ज्ञान (न एव) नहीं ही (जायते) होता है ॥ २७० ॥

भावार्थ-प्राणीको लोककी वासनासे शास्त्रकी वासनासे और देहकी वासनासे भी यथार्थज्ञान होता ही नहीं ॥

संसारकारागृहमोक्षमिच्छोरयोमयं
पादनिबन्धशृंखलम् । वदन्ति तज्ज्ञाः
पटुवासनात्रयं योऽस्माद्विमुक्तः समु-
पैति मुक्तिम् ॥ २७१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(संसारकारागृहमोक्षम्) संसार रूपी बन्दीखानेमेंसे छूटनेको (इच्छोः) इच्छा करने वालेकी (पटुवासनात्रयम्) जड़ी हुई तीनों वासनाओं को (तज्ज्ञाः) तत्त्वज्ञानी (अयोमयम्) लोहेकी (पादनिबन्धशृंखलम्) पैरोंमें बाँधनेकी बेड़ी (वदन्ति) कहते हैं (यः) जो (अस्मात्) इससे (विमुक्तः) सर्वथा छूट गया [सः] वह (मुक्तिम्) मुक्तिको (समुपैति) प्राप्त होता है ॥ २७१ ॥



भावार्थ-संसाररूपी बन्दीगृहमेंसे छूटनेकी इच्छा करनेवाले पुरुषकी ऊपर कहीहुई तीन प्रकारकी जागती हुई वासनाको तत्त्वज्ञानी पुरुष पैरोंमें बाँधनेकी लोहेकी बेड़ी कहते हैं। इसकारण जो इन तीन वासनाओंसे मुक्त होता है वह ही मुक्ति पाता है ॥ २७१ ॥

जलादिसंपर्कवशात्प्रभूतदुर्गन्धधूता-
गुरुदिव्यवासना । संघर्षणेनैव विभाति
सम्यग्विधूयमाने सति वाह्यगन्धे २७२

अन्वय और पदार्थ-(जलादिसंसर्गवशात्) जल आदिके संबन्धके कारण (प्रभूतदुर्गन्धधूता) अत्यन्त दुर्गन्धसे दबाई हुई (अगुरुदिव्यवासना) अगर आदि की दिव्य सुगन्धि (संघर्षणेन) घिसनेके द्वारा (वाह्य-गन्धे) वाहरी गन्धके (सम्यक्) भली प्रकार (विधूय-माने-सति) दूर होजाने पर (एव) ही (विभाति) विशेषरूपसे प्रतीत होती है ॥ २७२ ॥

भावार्थ-जल आदिके संसर्गसे उत्पन्न हुई अत्यन्त दुर्गन्धिके द्वारा दबाई हुई अगर चन्दन आदिकी दिव्य सुगन्धि, जब उस अगर चन्दन आदिको घिसा जाय और बाहरकी दुर्गन्ध भले प्रकार दूर होजाय तब ही यथार्थरूपसे प्रतीत होती है ॥ २७२ ॥

अन्तःश्रितानन्तदुरन्तवासनाधूलीवि-
लिप्ता परमात्मवासना । प्रज्ञातिसंघर्ष-

णतो विशुद्धा प्रतीयते चन्दनगन्धवत् स्फुटम् ॥ २७३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अन्तःश्रितानन्तदुरन्तवासनाधूलीविलिप्ता) भीतर रहनेवाली अनन्त दुष्टवासनाओंरूपी धूलीसे बहुत ही अटीहुई (परमात्मवासना) परमात्माकी वासना (प्रज्ञातिसंघर्षणतः) विचारके अत्यन्त संघर्षणसे (विशुद्धा) विशेष शुद्ध हुई (चंदनगन्धवत्) चन्दनकी गन्धकी समान (स्फुटम्) स्पष्ट (प्रतीयते) प्रतीत होती है ॥ २७३ ॥

भावार्थ-अन्तःकरणमेंकी अनन्तों दुर्वासनाओंरूपी धूलीसे अत्यन्त ही अटीहुई परमात्माकी वासना, विचार की रगड़से परमशुद्ध होकर ऊपर कहीहुई चंदनकी गंध की समान स्पष्ट प्रतीत होने लगती है ॥ २७३ ॥

अनात्मवासनाजालैस्तिरोभूतात्मवासना । नित्यात्मनिष्ठया तेषां नाशो भाति स्वयं स्फुटम् ॥ २७४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अनात्मवासनाजालैः) अनात्मपदार्थोंकी वासनारूप जालों करके (तिरोभूता) ढकी हुई (आत्मवासना) आत्माकी वासना (नित्यात्मनिष्ठया) नित्य आत्माकी निष्ठा करके (तेषाम्) उन जालोंका (नाशे) नाश होने पर (स्वयम्) आप (स्फुटम्) स्पष्ट (भाति) प्रतीत होती है ॥ २७४ ॥

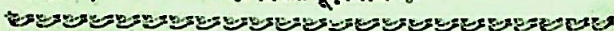
भावार्थ-जो पदार्थ आत्मा नहीं हैं उनको आत्मा माननारूप वासनाओंके जालों करके छुपीहुई आत्माकी वासना, निरन्तर आत्मविचारसे उन जालोंके कट जाने पर अपने आप स्पष्ट प्रतीत होने लगती है ॥ २७४ ॥

यथा यथा प्रत्यगवस्थितं मनस्तथा तथा मुञ्चति बाह्यवासनाम् । निःशेषमोक्षे सति वासनानामात्मानुभूतिः प्रतिबन्धशून्या ॥ २७५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(मनः) मन (यथा, यथा) जैसे जैसे (प्रत्यगवस्थितम्) व्यापक आत्मामें ठहरा हुआ [भवति] होता है (तथा तथा) तैसे तैसे (बाह्य-वासनाम्) बाहरी वासनाको (मुञ्चति) त्यागता है (वासनानाम्) वासनाओंकी (निःशेषमोक्षे सति) सर्वथा छूट जाने पर (प्रतिबन्धशून्या) प्रतिबन्धसे रहित (आत्मानुभूतिः) आत्माका अनुभव [भवति] होता है

भावार्थ-मन जैसे २ प्रत्यगात्मामें ठहरने लगता है, तैसे २ बाहरकी वासनाओंको छोड जाता है और इस प्रकार सकल वासनाओंके छूट जाने पर प्रतिबन्ध-रहित स्वरूपका अनुभव होता है ॥ २७५ ॥

स्वात्मन्येव सदा स्थित्वा मनो नश्यति योगिनः । वासनानां क्षयश्चातः स्वाध्यासापनयं कुरु ॥ २७६ ॥



अन्वय और पदार्थ-(सदा) सर्वदा (स्वात्मनि-एव) अपने आत्मामें ही (स्थित्वा) स्थित होकर (योगिनः) योगीका (मनः) मन (नश्यति) नष्ट होता है (वासनानाम्) वासनाओंका (क्षयः च) नाश भी [भवति] होता है (अतः) इसकारण (स्वाध्यासापनयम्) अपने अध्यासको दूर (कुरु) कर ॥ २७६ ॥

भावार्थ-सदा अपने स्वरूपमें ही रहनेसे योगीके मनका नाश होता है और वासनाओंका क्षय भी होता है इसकारण तू अपने अध्यासको दूर कर ॥ २७६ ॥

तमो द्वाभ्यां रजः सत्त्वात्सत्त्वं शुद्धेन नश्यति। तस्मात्सत्त्वमवष्टभ्य स्वाध्यासापनयं कुरु ॥ २७७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(द्वाभ्याम्) दो करके (तमः) तमोगुण (सत्त्वेन) सत्त्वगुण करके (रजः) रजोगुण (शुद्धेन) शुद्ध करके (सत्त्वम्) सत्त्वगुण (नश्यति) नष्ट होता है (तस्मात्) तिससे (सत्त्वम्) सत्त्वगुणको (अवष्टभ्य) थाम कर (स्वाध्यासापनयम्) अपने अध्यासको दूर (कुरु) कर ॥ २७७ ॥

भावार्थ-रजोगुण तथा सत्त्वगुणसे तमोगुणका नाश होता है और सत्त्वगुणसे रजोगुण नष्ट होता है, और शुद्ध सत्त्वगुणसे सत्त्वगुण नष्ट होता है इसकारण सत्त्वगुणका आश्रय लेकर अपने अध्यासको दूर कर ॥ २७७ ॥

प्रारब्धं पुष्यति वपुरिति निश्चित्य निश्चलः
धैर्यमालम्ब्य यत्नेन स्वाध्यासापनयं कुरु

अन्वय और पदार्थ-(प्रारब्धम्) प्रारब्ध (वपुः) शरीरको (पुष्यति) पुष्ट करता है (इति) ऐसा (निश्चित्य) निश्चय करके (निश्चलः) निश्चल हुआ (धैर्यम्) धीरजको (आश्रित्य) आश्रय करके (यत्नेन) यत्न करके (स्वाध्यासापनयम्) अपने अध्यासको दूर (कुरु)कर

भावार्थ-प्रारब्ध ही शरीरका पोषण करता है, ऐसा निश्चय करके निश्चलताके साथ धीरज रखता हुआ यत्न करके अपने अध्यासको दूर कर ॥ २७८ ॥

नाहं जीवः परं ब्रह्मेत्येतद्व्यावृत्तिपूर्वकम्
वासनावेगतः प्राप्तस्वाध्यासापनयं कुरु॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (जीवः) जीव (न) नहीं हूँ (परब्रह्म) परब्रह्म हूँ (इति) इसप्रकार (एतद्व्यावृत्तिपूर्वकम्) मिथ्या पदार्थोंका निषेध करता हुआ (वासनावेगतः) वासनाओंके वेगसे (प्राप्तम्) प्राप्त हुए (स्वाध्यासापनयम्) अपने अध्यासको दूर (कुरु)कर

भावार्थ-मैं जीव नहीं हूँ, किंतु परब्रह्म हूँ, इस प्रकार मिथ्या पदार्थोंको आत्मा माननेके स्वभावको त्याग कर वासनाओंके वेगसे प्राप्तहुए अपने अध्यासको दूर कर ॥

श्रुत्या युक्त्या स्वानुभूत्या ज्ञात्वा-
सार्वात्म्यमात्मनः । क्वचिदाभासतः प्राप्त
स्वाध्यासापनयं कुरु ॥ २८० ॥

अन्वय और पदार्थ-(श्रुत्या) श्रुति करके (युक्त्या) युक्ति करके (स्वानुभूत्या) अपने अनुभव करके (आत्मनः) अपने (सार्वात्म्यम्) सर्वात्मकपनेको (ज्ञात्वा) जान कर (क्वचित्) कभी (आभासतः) आभाससे (प्राप्तम्) प्राप्त हुए (स्वाध्यासापनयम्) अपने अध्यासको दूर (कुरु) कर ॥ २८० ॥

भावार्थ-श्रुतिप्रमाणसे, युक्तियोंसे और अपने अनुभवसे अपने सर्वात्मकपनेको जानकर जो कि-कभी आभाससे प्राप्त होजाता है उस अपने अध्यासको दूरकर

अनादानविसर्गाभ्यामीषन्नास्ति क्रिया मुनेः । तदेकनिष्ठया नित्यं स्वाध्यासापनयं कुरु ॥ २८१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अनादानविसर्गाभ्याम्) न लेता है न देता है इसकारण (मुनेः) आत्मज्ञानीकी (ईषत्) जरा भी (क्रिया) क्रिया (न) नहीं (अस्ति) है (नित्यम्) नित्य (तदेकनिष्ठया) एक आत्मामें ही निष्ठा करके (स्वाध्यासापनयम्) अपने अध्यासको दूर (कुरु) कर ॥ २८१ ॥

भावार्थ-आत्मा न कुछ ग्रहण करता है न छोड़ता है इसकारण आत्मामें क्रिया नहीं है, ऐसे आत्मामें नित्य निष्ठा रखकर अध्यासको दूर कर ॥ २८१ ॥

तत्त्वमस्यादिवाक्योत्थब्रह्मात्मैकत्व-

बोधतः। ब्रह्मण्यात्मत्वदार्ढ्याय स्वाध्या-
सापनयं कुरु ॥ २८२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तत्त्वमस्यादिवाक्योत्थब्रह्मात्मैकत्वबोधतः) तत्त्वमसि आदि वाक्योंसे उत्पन्न हुए ब्रह्म और जीवकी एकताके ज्ञानसे (ब्रह्मणि) ब्रह्ममें (आत्मत्वदार्ढ्याय) आत्मभावकी दृढताके निमित्त (स्वाध्यासापनयम्) अपने अध्यासको दूर (कुरु) कर ॥२८२॥

भावार्थ-तत्त्वमसि आदि महावाक्योंसे उत्पन्न हुए ब्रह्म और जीवकी एकताके ज्ञानसे ब्रह्ममें अपने आत्मभावकी दृढताके निमित्त अपने अध्यासको दूर कर२८२

अहंभावस्य देहेऽस्मिन्निःशेषविल-
यावधि। सावधानेन युक्तात्मा स्वाध्या-
सापनयं कुरु ॥ २८३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अस्मिन्) इस (देहे) शरीरमें (अहम्भावस्य) अहम्भावके (निःशेषविलयावधि) निःशेषभावसे विलीन होने पर्यन्त (सावधानेन) सावधानतापूर्वक (युक्तात्मा) तत्पर हुआ (स्वाध्यासापनयम्) आत्मामें अनात्म पदार्थोंके अध्यास को दूर (कुरु) कर ॥ २८३ ॥

भावार्थ-इस शरीरमें अहंभावके विलीन होने पर्यंत सावधानता रखकर तत्पर हुआ अपने अध्यासको दूरकर

प्रतीतिर्जीवजगतोः स्वप्नवद्भाति यावता। तावन्निरन्तरं विद्वन्स्वाध्यासापनयं कुरु

अन्वय और पदार्थ-(विद्वन्) हे विद्वन् (यावता) जब तक (जीवजगतोः) जीव और जगत्की (स्वप्नवत्) स्वप्नकी समान (प्रतीतिः) प्रतीति (भाति) भासती है (तावत्) तबतक (निरन्तरम्) निरन्तर (स्वाध्यासापनयम्) अपने अध्यासको दूर (कुरु) कर ॥२८४॥

भावार्थ-हे विद्वन् ! जब तक जीव और जगत्की स्वप्नकी समान प्रतीति हो तब तक निरन्तर अपने अध्यासको दूर कर ॥ २८४ ॥

निद्राया लोकवार्तायाः शब्दादेरपि विस्मृतेः। क्वचिन्नावसरं दत्त्वा चिन्तयात्मानमात्मनि ॥ २८५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(निद्रायाः) निद्राको (लोकवार्त्तायाः) लौकिक बातचीतको (शब्दादेः) शब्दादि को (विस्मृतेः) विस्मरणको (क्वचित्, अपि) किसी समय भी (अवसरम्) अवसर (न) नहीं (दत्त्वा) देकर (आत्मनि) मनमें (आत्मानम्) अपनेको(चिंतय) चिन्तवन कर ॥ २५६ ॥

भावार्थ-निद्रा, लौकिक बातचीत, शब्द आदि और विसमरणको किसी समय भी अवसर न देकर मनमें आत्मस्वरूपका चिन्तवन कर ॥ २८५ ॥

मातापित्रोर्मलोद्भूतं मलमांसमयं वपुः ।
त्यक्त्वा चांडालवद् दूरं ब्रह्मीभूय कृती भव

अन्वय और पदार्थ–(मातापित्रोः) माता पिताके (मलोद्भूतम्) मलसे उत्पन्न हुए (मलमांसमयम्) मलमांसरूप (वपुः) शरीरको (चाण्डालवत्) चांडाल की समान (दूरम्) दूर (त्यक्त्वा) त्याग कर (ब्रह्मीभूय) ब्रह्मस्वरूप होकर (कृती) कृतार्थ (भव) हो ॥

(भावार्थ)–जो शरीर माता पिताके मलसे उत्पन्नहुआ है और मल मांसका ही पुतला है उसको चाण्डालकी समान स्पर्शके अयोग्य मान दूर छोड़कर ब्रह्मरूप होता हुआ कृतार्थ हो जा ॥ २८६ ॥

घटाकाशं महाकाश इवात्मानं परात्मनि । विलाप्याखण्डभावेन तूष्णीं भव सदा मुने ॥ २८७ ॥

अन्वय और पदार्थ – (मुने) हे मुने (महाकाशे) महाकाशमें (घटाकाशम् इव) घटाकाशकी समान (परात्मनि) परमात्मामें (आत्मानम्) आत्माको (विलाप्य) पूर्णतया लीन करके (अखण्डभावेन) परिपूर्णभावके द्वारा (सदा) सर्वदा (तूष्णीम्) मौन (भव) हो ॥ २८७ ॥

भावार्थ–हे आत्मविचार करने वाले साधक ! जैसे महाकाशमें घटाकाशका लय किया जाता है तैसे ही

परमात्मामें जीवात्माका लय करके अखण्ड भावको प्राप्त होता हुआ सदा मौन रह ॥ २८७ ॥

स्वप्रकाशमधिष्ठानं स्वयंभूय सदात्मना । ब्रह्माण्डमपि पिंडांडं त्यज्यतां मलभांडवत् ॥ २८८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सदात्मना) सत्स्वरूपके द्वारा (स्वप्रकाशम्) निजप्रकाशरूप (अधिष्ठानम्) अधिष्ठान (स्वयंभूय) स्वयं होकर (पिण्डाण्डम् मांसपिंडका अण्डाकार शरीर (ब्रह्माण्डम् अपि) ब्रह्माण्डभी (मलभाण्डवत्) विष्टाके पात्रकी समान (त्यज्यताम्)त्यागाजाय२८८

भावार्थ-सत्रूपसे आप स्वयम्प्रकाश अधिष्ठानरूप होकर मांसपिण्डरूप स्थूलशरीर और ब्रह्माण्डको विष्ठा के पात्रकी समान त्यागदो ॥ २८८ ॥

चिदात्मनि सदानन्दे देहारूढामहंधियम् निवेश्य लिङ्गमुत्सृज्य केवलो भव सर्वदा

अन्वय और पदार्थ-(देहारूढाम्) देहमें जमी हुई (अहन्धियम्) अहम्बुद्धिको (सदानन्दे) सत् आनन्द (चिदात्मनि) चेतनरूप आत्मामें (निवेश्य) स्थापित करके (लिङ्गम्) लिंग शरीरको (उत्सृज्य) त्यागकर (सर्वदा) सदा (केवलः) केवल (भव) हो ॥ २८९ ॥

भावार्थ-शरीर पर जमीहुई मैं शरीर हूँ ऐसी बुद्धिको सत्चित् आनन्दस्वरूप आत्मामें लगाकर अर्थात् मैं

सच्चिदानन्द परमात्मस्वरूप हूँ ऐसी भावना करके तद-नन्तर लिंगशरीरको त्यागकर सदा अद्वितीय आत्मस्वरूपसे स्थित रहो ॥ २८९ ॥

यत्रैष जगदाभासो दर्पणान्तः पुरं यथा। तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा कृतकृत्यो भविष्यसि

अन्वय और पदार्थ-(दर्पणान्तः) दर्पणके भीतर (पुरं यथा) नगरकी समान (यत्र) जिसमें (एषः) यह (जगदाभासः) जगत् भासता है (तत्) वह (ब्रह्म) ब्रह्म (अहम्) मैं हूँ (इति) ऐसा (ज्ञात्वा) जानकर (कृतकृत्यः) कृतार्थ (भविष्यसि) होगा ॥ २९० ॥

भावार्थ--जैसे दर्पणके भीतर नगर दीखता है तैसे जिसमें यह सकल जगत् भासता है, वह ब्रह्म मैं ही हूँ ऐसा जानकर तू कृतार्थ हो ॥ २९० ॥

यत्सत्यभूतं निजरूपमाद्यं चिदद्वयानन्दमरूपमक्रियम्। तदेत्य मिथ्यावपुरुत्सृजेत शैलूषवद्वेषमुपात्तमात्मनः ॥२९१॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्) जो (निजरूपं) अपना रूप (सत्यभूतम्) सत्यस्वरूप (आद्यम्) सबसे पहिला (चिदद्वयानन्दम्) चेतन अद्वितीय आनन्दरूप (अरूपम्) प्राकृतिकरूप रहित (अक्रियम्) क्रियारहित है (तत्) उसको (एत्य) पाकर (शैलूषवत्) नटकी समान (उपात्तम्) स्वीकार कियेहुए (आत्मनः) अपने (मि'

थ्यावपुः) मिथ्याशरीररूप (वेषम्) वेषको (उत्सृजेत्) त्याग दे ॥ २६१ ॥

भावार्थ-जो अपना सत्य, सनातन, चेतन, अद्वितीय, आनन्दमय, प्राकृतिक आकार और सक्षम क्रियासे रहित ब्रह्मरूप है उसको पाकर, इस मिथ्या शरीरको, जो कि-नटके वेषकी समान कुछ कालको धारण किया गया है, त्यागदेय ॥ २६१ ॥

सर्वात्मना दृश्यमिदं मृषैव नैवाहमर्थः क्षणिकत्वदर्शनात् । जानाम्यहं सर्वमिति प्रतीतिः कुतोऽहमादेः क्षणिकस्य सिद्ध्येत् ॥ २६२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इदम्) यह (दृश्यम्) दीखने वाला पदार्थसमूह (क्षणिकत्वदर्शनात्) क्षणिकपना दीखनेके कारण (सर्वात्मना) सब प्रकारसे (मृषा-एव) मिथ्या ही है (अहमर्थः) अहम्का अर्थ (न एव) नहीं है (क्षणिकस्य) क्षणिक (अहमादेः) अहं आदिको (अहम्) मैं (सर्वम्) सबको (जानामि) जानता हूँ (इति) ऐसी (प्रतीतिः) प्रतीति (कथम्) कैसे (सिद्ध्येत्) सिद्ध होसकती है ॥ २६२ ॥

भावार्थ-यह सब दीखनेवाले पदार्थ आत्मा नहीं हैं, किन्तु सब प्रकारसे मिथ्या ही हैं, क्योंकि-सबमें क्षणिकपना देखनेमें आता है, अहंकार आदि पदार्थ कि-जो

क्षणिक हैं, उनकी 'मैं सबको जानता हूँ' ऐसी प्रतीति होना कैसे सम्भव होसकती है ? ॥ २९२ ॥

अहंपदार्थस्त्वहमादिसाक्षी नित्यं सुषुप्तावपि भावदर्शनात्। ब्रूते ह्यजो नित्य इति श्रुति स्वयं तत्प्रत्यगात्मा सदसद्विलक्षणः ॥ २९३ ॥ विकारिणां सर्वविकारवेत्ता नित्याविकारो भवितुं समर्हति मनोरथस्वप्नसुषुप्तिषु स्फुटं पुनः पुनर्दृष्टमसत्त्वमेतयोः ॥ २९४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(नित्यम्) नित्य (सुषुप्तौ) सुषुप्तिमें (अपि) भी (भावदर्शनात्) अस्तित्त्वके दीखने से (अहंपदार्थः) मैं, इस पदका अर्थ आत्मा (तु) तो (अहमादिसाक्षी) अहंकार आदिका साक्षी है (हि) क्योंकि (अजः) अजन्मा है (नित्यः) नित्य है (इति) ऐसा (स्वयम्) साक्षात् (श्रुतिः) वेद (ब्रूते) कहता है (तत्) तिससे (प्रत्यगात्मा) व्यापक आत्मा (सदसद्विलक्षणः) कार्य कारणसे विलक्षण (विकारिणाम्) विकार वालोंके (सर्वविकारवेत्ता) सकल विकारोंका जाननेवाला (नित्याविकारः) नित्य और विकाररहित (भवितुम्) होनेको (समर्हति) योग्य है (एतयोः) कार्य और कारणोंका (असत्त्वम्) मिथ्यापना (मनो-

रथस्वप्नसुषुप्तिषु) मनोरथ स्वप्न और सुषुप्तिमें (पुनः पुनः) वार २ (स्फुटम्) स्पष्ट (दृष्टम्) देखा है ।२६४।

भावार्थ–'मैं' इस पदका वास्तविक अर्थरूप आत्मा तो अहंकार आदिका साक्षी है, क्योंकि-वह आत्मा सुषुप्तिके समय भी अनुभवमें आता है 'आत्मा अजन्मा है और नित्य है' ऐसा श्रुति स्वयं कहती है, इसकारण व्यापक आत्मा कारणोंसे तथा कार्योंसे विलक्षण, विकारी पदार्थोंके सकल विकारोंको जानने वाला और स्वयं सदा निर्विकार है, मनोरथ स्वप्न और सुषुप्तिके समय कार्य तथा कारणोंका मिथ्यापना तो वार २ स्पष्ट देखनेमें आया ही है ॥ २६३-२६४ ॥

अतोऽभिमानं त्यज मांसपिण्डे पिण्डाभिमानिन्यपि बुद्धिकल्पिते । कालत्रयाबाध्यमखण्डबोधं ज्ञात्वा स्वमात्मानमुपैहि शान्तिम् ॥ २६५ ॥

अन्वय और पदार्थ–(अतः) इसकारण (कालत्रयाबाध्यम्) तीनों कालमें अबाधित (अखण्डबोधम्) पूर्ण ज्ञानरूप (स्वम्) अपनेको (आत्मानम्) आत्मस्वरूप (ज्ञात्वा) जानकर (मांसपिण्डे) मांसके पिण्डरूप देहमें (बुद्धिकल्पिते) बुद्धिसे कल्पनासे कियेहुए (पिण्डाभिमानिनि—अपि) देहके अभिमानीमें भी (अभिमानम्) अभिमानको (त्यज) छोड़ (शान्तिम्) शान्तिको (उपैहि) प्राप्त हो ॥ २६५ ॥

भावार्थ-इसकारण अपने आत्माको तीनों कालमें बोध प्राप्त न हो ऐसा और पूर्ण ज्ञानस्वरूप जानकर मांसके पिण्डस्वरूप शरीरमें तथा बुद्धिसे कल्पना किये हुए शरीरके अभिमानीमें भी अहम्बुद्धिको त्यागदे और उससे परमशान्तिको पा ॥ २६५ ॥

त्यजाभिमानं कुलगोत्रनामरूपाश्रमे-ष्वार्द्रशवाश्रितेषु । लिङ्गस्य धर्मानपि कर्तृतादींस्त्यक्त्वा भवाखण्डसुखस्वरूपः

अन्वय और पदार्थ-(आर्द्रशवाश्रितेषु) गीले शवके आश्रित (कुलगोत्रनामरूपाश्रमेषु) कुल, गोत्र, नाम, रूप और आश्रमोंमें (अभिमानम्) अभिमानको (त्यज) त्याग (लिङ्गस्य) लिङ्गशरीरके (कर्तृतादीन्) कर्त्तापन आदि (धर्मान्-अपि) धर्मोंको भी (त्यक्त्वा) त्याग कर (अखण्डसुखस्वरूपः) पूर्णसुखरूप (भव) हो २६६

भावार्थ-कुल, गोत्र, नाम, रूप और आश्रम कि-जो गीले शवरूप इस शरीरके आश्रित हैं उनमें अभिमान को त्याग तथा कर्त्तापन आदि लिङ्ग शरीरके धर्मोंको भी त्याग कर अखण्ड सुखस्वरूप होजा ॥ २६६ ॥

सन्त्यन्ये प्रतिबन्धाः पुंसः संसार-हेतवो दृष्टाः । तेषामेवं मूलं प्रथमविकारो भवत्यहंकारः ॥ २६७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(पुंसः) पुरुषके (संसारहेतवः) संसारके कारण (दृष्टाः) देखे हुए (अन्ये) दूसरे (प्रतिबन्धाः) प्रतिबन्ध (सन्ति) हैं (तेषाम्) उनका (एवम्) इस प्रकारका (मूलम्) मूल (प्रथमविकारः) पहिला विकार (अहङ्कारः) अहङ्कार (भवति) होता है

भावार्थ-पुरुषके जन्ममरणरूप संसारके कारणरूप देखनेमें आते हुए दूसरे प्रतिबन्ध भले ही रहें परन्तु सबका मूलकारण पहिला विकार अहंकार है ॥ २९७ ॥

यावत्स्यात्स्वस्य सम्बन्धोऽहंकारेण दुरात्मना । तावन्न लेशमात्रापि मुक्ति-वार्ता विलक्षणा ॥ २९८ ॥

अन्वय और पदार्थ (यावत्) जब तक (दुरात्मना) दुष्ट (अहंकारेण) अहंकारके साथ (स्वस्य) अपना (सम्बन्धः) सम्बन्ध (स्यात्) होगा (तावत्) तब तक (विलक्षणा) विलक्षण (मुक्तिवार्ता) मुक्तिकी बात (लेशमात्रा अपि) लेशमात्र भी (न) नहीं है।

भावार्थ-जब तक दुष्ट अहंकारके साथ अपना संबन्ध रहेगा, तब तक मुक्तिकी बात लेशमात्र भी नहीं है, क्योंकि-यह बात जुदे ही प्रकारकी है ॥ २९८ ॥

अहंकारग्रहान्मुक्तः स्वरूपमुपपद्यते ।
चन्द्रवद्विमलः पूर्णः सदानन्दः स्वयंप्रभः॥

अन्वय और पदार्थ (अहंकारग्रहात्) अहंकाररूप-ग्रहबाधासे (मुक्तः) छूटा हुआ (स्वरूपम्) स्वरूपको (उपपद्यते) प्राप्त होता है (चन्द्रवत्) चन्द्रमाकी समान (विमलः) निर्मल (पूर्णः) पूर्ण (सदानन्दः) सत् और आनन्दरूप (स्वयंप्रभः) तथा स्वयं प्रकाश [भवति] होता है ॥ २९९ ॥

भावार्थ–यह मनुष्य जब अहंकाररूपी ग्रहबाधासे छूटजाता है तब अपने स्वरूपको प्राप्त होता है कि-जिससे राहुग्रहसे छूटेहुए चन्द्रमाको समान निर्मल,पूर्ण सदानन्द और स्वयंप्रकाश होजाता है ॥ २९९ ॥

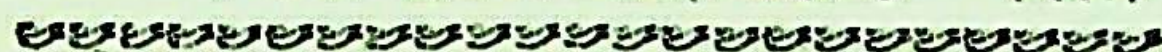
यो वा पुरे सोऽहमिति प्रतीतो बुद्ध्या प्रक्लृप्तस्तमसातिमूढया । तस्यैव निःशेषतया विनाशे ब्रह्मात्मभावः प्रतिबन्धशून्यः ॥ ३०० ॥

अन्वय और पदार्थ-(पुरे) शरीरमें (तमसा) तमोगुण करके (अतिमूढया) अत्यन्त मूढ हुई (बुद्ध्या) बुद्धि करके (प्रक्लृप्तः) कल्पना किया हुआ (यः) जो अहंकार है (सः) वह (अहं-वा) मैं ही हूँ (इति) इसप्रकार (प्रतीतः) प्रतीत [भवति] होता है (तस्य एव) उसका ही (निःशेषतया) निशेषभावसे (विनाशे) विनाश होने पर (प्रतिबन्धशून्यः) प्रतिबन्धरहित (ब्रह्मात्मभावः) ब्रह्मात्मभाव [भवति] होता है ॥

भावार्थ—तमोगुणसे अत्यन्त मूढ हुई बुद्धि करके कल्पना किया हुआ जो अहंकार 'यह मैं ही हूँ' इसप्रकार प्रतीत होता है इस अहंकारका सर्वथा विनाश होने पर प्रतिबन्धरहित ब्रह्मरूपता होजाती है ॥ ३०० ॥

ब्रह्मानन्दनिधिर्महाबलवताहंकारघोराहिना संवेष्ट्यात्मनि रक्ष्यते गुणमयैश्चण्डैस्त्रिभिर्मस्तकैः । विज्ञानाख्यमहासिना श्रुतिमता विच्छिद्य शीर्षत्रयं निर्मूल्याहिमिमं निधिं सुखकरं धीरोऽनुभोक्तुं क्षमः ॥ ३०१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(महाबलवता) परमबली(अहंकारघोराहिना) अहंकाररूपी घोर सर्प करके (ब्रह्मानन्दनिधिः) ब्रह्मानन्दरूपी खजाना (गुणमयैः) तमोगुणादिरूप (त्रिभिः) तीन (प्रचण्डैः) भयानक (मस्तकैः) मस्तकों करके (आत्मनि) अपने शरीरमें (सम्वेष्ट्य) घेरकर (रक्ष्यते) रक्षा किया जाता है (श्रुतिमता) वेदयुक्त (विज्ञानाख्यमहासिना) विज्ञानरूप बड़ी भारी तलवार करके (शीर्षत्रयम्) तीनों मस्तकोंको (विच्छिद्य) काट (अहिम्)सर्पको (निर्मूल्य) निर्मूल करके (धीरः) धीर पुरुष (इमम्) इस (सुखकरम्) सुखदायक (निधिम्) खजानेको (अनुभोक्तुम्) भोगनेको (क्षमः) समर्थ होता है ॥ ३०१ ॥


भावार्थ-सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणरूप तीन भयानक फणोंवाला महाबली और घोर अहंकाररूपी सर्प ब्रह्मानन्दके खजानेको अपने शरीरसे घेरकर बैठ गया है, अतः श्रुतिकी सहायता वाले विज्ञानरूप विशाल खड्गसे तीनों फणोंको काट उस सर्पको निर्मूल करके धीर पुरुष इस सुखागार भंडारको पासकता है॥

यावद्वा यत्किंचिद्विषदोषस्फूर्त्तिरस्ति चेद्देहे। कथमारोग्याय भवेत्तद्वदहंतापि योगिनो मुक्त्यै॥ ३०२॥

अन्वय और पदार्थ-(वा) या (यावत्) जब तक (देहे) शरीरमें (चेत्) जो (यत्किञ्चित्) थोड़ा सा भी (विषदोषस्फूर्तिः) विषके दोषका वेग (अस्ति) है [तावत्] तबतक (आरोग्याय) आरोग्यके निमित्त (कथं) कैसे (भवेत्) हो (तद्वत्) तैसे ही (योगिनः) योगीकी (अहन्ता अपि) अहंकार भी (मुक्त्यै) मुक्ति के अर्थ [कथं, भवेत्] कैसे हो॥ ३०२॥

भावार्थ-जबतक शरीरमें थोड़ा सा भी विषके दोष का प्रभाव हो तबतक उसको आरोग्यकी प्राप्ति कैसे हो सकती है अर्थात् कदापि नहीं होसकती तैसे ही जबतक योगीको थोड़ासा भी अहंकार रहै तबतक उसकी मुक्ति कैसे होसकती है? अर्थात् कभी नहीं होसकती ३०२

अहमोऽत्यन्तनिवृत्त्या तत्कृतनाना-

विकल्पसंहृत्या । प्रत्यक्तत्त्वविवेकादि-
दमहमस्मीति विन्दते तत्त्वम् ॥३०३॥

अन्वय और पदार्थ-(अहमः) अहंकारकी (अत्यन्त-निवृत्त्या) अत्यन्त निवृत्ति करके (तत्कृतनानाविकल्प-संहृत्या) उसके किये हुए अनेकों प्रकारके भेदभावके संहार करके (प्रत्यक्तत्त्वविवेकात्) व्यापक एक आत्मा के ज्ञानसे (इदम्) यह (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ (इति) ऐसे (तत्त्वम्) तत्त्वको (विन्दते एव) पाजाता है ही

भावार्थ-अहंकारके अत्यन्त दूर होजानेसे अहंकारके कियेहुए अनेकों प्रकारके भेदभावका संहार करनेसे और आत्मतत्त्वके विवेकसे मैं ब्रह्म हूँ ऐसा तत्त्व मिलताहै

अहङ्कारकर्तर्यहमिति मतिं मुञ्च
सहसा, विकारात्मन्यात्मप्रतिफलजुषि
स्वस्थितिमुषि । यदध्यासात्प्राप्ता जनि-
मृतिजरादुःखबहुला प्रतीचश्चिन्मूर्त्तेस्तव
सुखतनोः संसृतिरियम् ॥ ३०४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(कर्त्तरि) कर्तृरूप (विकारा-त्मनि) विकारस्वरूप (आत्मप्रतिफलजुषि) आत्मप्रति-बिम्बको स्वीकार करनेवाले (स्वस्थितिमुषि) निज-स्वरूपको चुरानेवाले (अहंकारे) अहंकारमें (अहम्) मैं (इति) ऐसी (मतिम्) बुद्धिको (सहसा) एक साथ (मुञ्च) छोड़दे (यदध्यासात्) जिसके अध्याससे



(प्रतीचः) सर्वव्यापी (चिन्मूर्त्तेः) चेतनमूर्त्ति (सुखतनोः) सुखरूप (तव) तेरा (जनिमृतिजरादुःखचकुला) जन्म मरण और दुःखोंसे भरा (अयम्) यह (संसृतिः) संसार (प्राप्तः) प्राप्त हुआ है ॥ ४ ॥

भावार्थ-अहंकार कि-जो कर्त्ता है, विकाररूप है, आत्माके प्रतिबिंबवाला है-अपने स्वरूपको चुरानेवाला अर्थात् आत्मस्वरूपको भुला देनेवाला है, उसमें 'मैं हूँ' ऐसी बुद्धिको तू तुरन्त ही छोडदे,तू कि-जो सर्वव्यापक चेतन और सुखरूप है ऐसे तुझको तिस अहंकारके अध्याससे ही यह जन्म, मरण, बुढापा तथा अनेकों दुःखोंसे घिरा हुआ संसार प्राप्त हुआ है ॥ ३०४ ॥

सदैकरूपस्य चिदात्मनो विभोरानन्दमूर्तेरनवद्यकीर्तेः । नैवान्यथा क्वाप्यविकारिणस्ते विनाहमध्यासममुष्य संसृतिः ॥ ३०५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सदा) सर्वदा (एकरूपस्य) एकरूप (चिदात्मनः) चेतनस्वरूप (विभोः) व्यापक (आनन्दमूर्त्तेः) आनन्दमूर्त्ति (अनवद्यकीर्त्तेः) निर्दोष कीर्त्तिवाले (अविकारिणः) विकाररहित (ते) तुझको (अहमध्यासं, विना) अहंकारके अध्यासके विना (अन्यथा,क्व, अपि) और किसी प्रकारसे भी (अमुष्य) इसका (संसृतिः) संसार (न एव) नहीं है ॥३०५॥

भावार्थ-तू कि-जो सदा एकरूपक चेतन व्याप आनन्दरूप निर्दोष कीर्त्तिवाला और निर्विकार है ऐसे तुझको अहंकारके अध्यासके विना दूसरे किसी प्रकार से भी संसार नहीं है ॥ ३०५ ॥

तस्मादहंकारमिमं स्वशत्रुं भोक्तुर्गले कंटकवत्प्रतीतम् । विच्छिद्य विज्ञान-महासिना स्फुटं भुंदवात्मसाम्राज्यसुखं यथेष्टम् ॥ ३०६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (भोक्तुः) भोजन करनेवालेके (गले) गलेमें (कण्टकवत्) काँटे की समान (प्रतीतम्) प्रतीत होतेहुए (इमम्) इस (स्वशत्रुम्) अपने शत्रुरूप (अहंकारम्) अहंकारको (विज्ञानमहासिना) विज्ञानरूप विशाल खड्गसे (विच्छिद्य) काटकर (स्फुटम्) स्पष्ट (आत्मसाम्राज्य-सुखम्) आत्मज्ञानरूप चक्रवर्तीपनेके सुखको (यथेष्टम्) इच्छानुकूल (भुङ्क्ष्व) भोग ॥ ३०६ ॥

भावार्थ-इसकारण जैसे भोजन करनेवालेके गलेमें काँटा होय तो उसको महादुःखदायी होता है तैसे ही तुझको अत्यन्त दुःख देनेवाले इस अहंकाररूपी शत्रुको विज्ञानरूप महाखड्गसे काटकर तू आत्मज्ञानरूपी चक्र-वर्तीपनेके स्पष्ट सुखको इच्छानुकूल भोग ॥ ३०६ ॥



ततोऽहमादेर्विनिवर्त्य वृत्तिं संत्यक्तरागः परमार्थलाभात्। तूष्णीं समास्स्वात्मसुखानुभूत्या पूर्णात्मना ब्रह्मणि निर्विकल्पः ॥ ३०७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ततः) तिस (परमार्थलाभात्) परमार्थको पानेसे (संत्यक्तरागः) विषयासक्तिको त्यागता हुआ (अहमादेः) अहंकार आदिकी (वृत्तिम्) वृत्तिको (विनिवर्त्य) हटाकर (आत्मसुखानुभूत्या) आत्मसुखके अनुभव करके (निर्विकल्पः) निर्विकल्प (तूष्णीम्) मौन हुआ (ब्रह्मणि) ब्रह्ममें (पूर्णात्मना) पूर्णरूप करके (समास्स्व) स्थित हो ॥ ३०७ ॥

भावार्थ-तिस परमार्थके प्राप्त होनेसे विषयमात्रमें रागको छोडकर और अहंकार आदिकी वृत्तियोंको बंद करके आत्मसुखके अनुभवसे निर्विकल्प तथा मौन रहता हुआ तू ब्रह्ममें ही पूर्णरूपसे स्थित हो ॥ ३०७ ॥

समूलकृत्तोऽपि महानहं पुनर्व्युल्लेखितः स्याद्यदि चेतसा क्षणम्। सञ्जीव्य विक्षेपशतं करोति नभस्वता प्रावृषि वारिदो यथा ॥ ३०८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(समूलकृत्तः अपि) जडसे काटा हुआ भी (महान्) विशाल (अहम्) अहंकार

(यदि) जो (पुनः) फिर (क्षणम्) क्षणमात्र (चेतसा) चित्त करके (व्युल्लेखितः) उल्लिखित (स्यात्) हो [तर्हि] तब (प्रावृषि) वर्षामें (नभस्वता) पवन करके (वारिदः, यथा) मेघ जैसे (सञ्जीव्य) जीवित होकर (विक्षेपशतम्) सैंकडों विक्षेपोंको (करोति) करता है

भावार्थ–यह बली अहंकार निर्मूल करके काट दिया जाय तो भी यदि चित्त क्षणमात्रको भी फिर उसके पीछे लगगया कि–जीवित होकर वर्षा ऋतुमें जैसे वायु सैंकडों घटाओंको लेआता है, तैसे ही सैंकडों विक्षेपोंको उत्पन्न करदेता है ॥ ३०८ ॥

निगृह्य शत्रोरहमवकाशःक्वचिन्न देयो विषयानुचिन्तया। स एव संजीवन-हेतुरस्य प्रक्षीणजम्बीरतरोरिवाम्बु ३०९

अन्वय और पदार्थ–(निगृह्य) निग्रह करके (विषयानुचिन्तया) विषयके चिन्तवनके द्वारा (अहमः) अहंकार नामके (शत्रोः) शत्रुको (क्वचित्) कहीं (अवकाशः) अवसर (न) नहीं (देयः) देना चाहिये (प्रक्षीणजम्बीरतरोः) सूखे हुए जम्बीरीके वृक्षको (अम्बु, इव) जलकी समान (सः, एव) वह विषय-चिन्तवन ही (अस्य) इसके (सञ्जीवनहेतुः) पुनः जीवित होनेका कारण है ॥ ३०९ ॥

भावार्थ–अहंकार नामक शत्रुको वशमें कर लेनेके अनन्तर फिर विषयोंके चिन्तवनका उसको अवसर नहीं

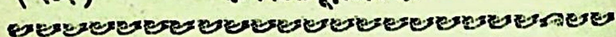
देना चाहिये, क्योंकि-जैसे सूखे हुये जँबीरी नीबूके वृक्ष को जल देना फिर जीवित करनेका हेतु है, तैसे ही विषयोंका चिन्तवन करना, दबेहुए अहंकारको फिर जगा देनेका कारण है ॥ ३०९ ॥

देहात्मना संस्थित एव कामी विलक्षणः कामयिता-कथं स्यात्। अतोऽर्थसंधानपरत्वमेव भेदप्रसक्त्या भवबन्धहेतुः

अन्वय और पदार्थ-(कामी) विषयोंकी इच्छावाला पुरुष (देहात्मना) देहरूप करके (एव) ही (संस्थितः) स्थित होता है (विलक्षणः) मैं देह आदि नहीं हूँ ऐसे ज्ञान वाला (कामयिता) विषयाभिलाषी (कथम्) कैसे (स्यात्) हो (अतः) इसकारण (भेदप्रसक्त्या) भेदभाव करके (अर्थसन्धानपरत्वम्-एव) विषयोंके अनुसन्धानमें तत्पर होना ही (भवबन्धहेतुः) संसार-बन्धनका कारण है ॥ ३१० ॥

भावार्थ—विषयोंकी इच्छा वाला पुरुष देहरूप ही रहता है, क्योंकि-यदि उसको 'मैं देहसे जुदा हूँ' ऐसा भान होजाय तो विषयोंकी इच्छा हो ही नहीं सकती, इसप्रकार देहरूप होकर आत्मासे भिन्नता होनेके कारण विषयोंके अनुसन्धानमें तत्परपना ही संसारबन्धनका कारण है ॥ ३१० ॥

कार्यप्रवर्धनाद्बीजप्रवृद्धिः परिदृश्यते ।



कार्यनाशाद्बीजनाशस्तस्मात्कार्यं निरोधयेत् ॥ ३११ ॥

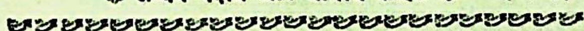
अन्वय और पदार्थ-(कार्यप्रवर्धनात्) बीजके कार्यों के बढ़नेसे (बीजप्रवृद्धिः) बीजकी अधिक वृद्धि (कार्यनाशात्) कार्यके नाशसे (बीजनाशः) बीजका नाश (परिदृश्यते) देखनेमें आता है (तस्मात्) तिससे (कार्यम्) कार्यको (निरोधयेत्) रोके ॥ ३११ ॥

भावार्थ-बीजके कार्योंके (वृक्षादि के) बढ़नेसे बीज की भी अधिक वृद्धि होती हुई देखनेमें आती है और यदि कार्यका नाश होजाय तो बीजका भी नाश होजाता है ऐसा देखनेमें आता है इसकारण वासनाके कार्यरूप विषयोंको रोकना चाहिये ॥ ३११ ॥

वासनावृद्धितः कार्यं कार्यवृद्ध्या च वासना । वर्धते सर्वथा पुंसः संसारो न निवर्तते ॥ ३१२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वासनावृद्धितः) वासनाकी वृद्धिसे (कार्यम्) विषयरूप कार्य (च) और (कार्यवृद्ध्या) कार्यकी वृद्धिसे (वासना) वासना (वर्द्धते) बढ़ती है (सर्वथा) सब प्रकार (पुंसः) पुरुषका (संसारः) संसार (नः) नहीं (निवर्तते) दूर होता है ॥ ३१२ ॥

भावार्थ-वासनाके बढ़नेसे विषय बढ़ते हैं और विषयों के बढ़नेसे वासना बढ़ती है तथा ऐसा होनेसे पुरुषका संसाररोग किसी समय भी दूर नहीं होता है ॥३१२॥



संसारबन्धविच्छित्त्यै तद् द्वयं प्रदहे-द्यतिः । वासनावृद्धिरेताभ्यां चिन्तया क्रियया बहिः ॥ ३१३ ॥ ताभ्यां प्रवर्धमाना सा सूते संसृतिमात्मनः । त्रयाणां च क्षयोपायः सर्वावस्थासु सर्वदा ३१४

अन्वय और पदार्थ-(संसारबन्धविच्छित्त्यै) संसाररूपी बन्धनको तोड़नेके निमित्त (यतिः) जितेन्द्रिय (तद्द्वयम्) तिन दोनोंको (प्रदहेत्) भस्म करै (चिन्तया) चिन्ता करके (बहिः) बाहर (क्रियया) क्रिया करके (एताभ्याम्) इन दोनों करके (वासनावृद्धिः) वासनाकी वृद्धि [भवति] होती है (ताभ्याम्) तिनसे (वर्धमाना) बढ़ती हुई (सा) वह (आत्मनः) आत्माके (संसृतिम्) संसारको (सूते) उत्पन्न करती है (सर्वावस्थासु) सब अवस्थाओंमें (सर्वदा) सब कालमें (त्रयाणाम्, च) तीनोंका ही (क्षयोपायः) क्षयका उपाय [कर्त्तव्यः] करना चाहिये ॥ ३१३ ॥ ३१४ ॥

भावार्थ-संसाररूप बन्धनको तोड़नेके लिये जितेन्द्रिय पुरुष वासना और विषय इन दोनोंको भस्म कर डाले मनमें चिन्तवन करनेसे बाहर क्रिया करनेसे और वासना बढ़ती है और बढ़ती हुई वासना संसारको उत्पन्न करती है, इसकारण सब कालमें और सब अवस्थाओंमें चिन्तन, क्रिया तथा वासना इन तीनोंके क्षय का उपाय करना चाहिये ॥ ३१३ ॥ ३१४ ॥

सर्वत्र सर्वतः सर्वं ब्रह्ममात्रावलोकनैः ।
सद्भाववासनादार्ढ्यं तत्त्रयं लयमश्नुते ॥

अन्वय और पदार्थ-(सर्वत्र) सब स्थलमें (सर्वतः) सब कालमें (सर्वम्) सबको (ब्रह्ममात्रावलोकनैः) ब्रह्ममात्र देखनेसे (सद्भाववासनादार्ढ्यात्) ब्रह्मभावकी वासना दृढ़ होनेके कारण (त्रयम्) तीनों (लयम्) लय को (अश्नुते) प्राप्त होते हैं ॥ ३१५ ॥

भावार्थ-सब स्थलमें और सब कालमें सबको केवल ब्रह्मरूप ही देखनेसे ब्रह्मभावकी वासना दृढ़ करली जाय तो ऊपर कहेहुए तीनोंका लय होजाता है ॥ ३१५ ॥

क्रियानाशे भवेच्चिन्तानाशोऽस्माद्वासनाक्षयः । वासनाप्रक्षयो मोक्षः सा जीवन्मुक्तिरिष्यते ॥ ३१६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(क्रियानाशे) क्रियाका नाश होनेपर (चिंतानाशः) चिन्तवनका नाश(अस्मात्)इससे (वासनाक्षयः) वासनाका नाश (भवेत्) हो (वासनाप्रक्षयः) वासनाका सर्वथा नाश (मोक्षः) मोक्ष है (सा) वह (जीवन्मुक्तिः) जीवन्मुक्ति (इष्यते) इच्छा की जाती है ॥

भावार्थ-क्रियाका नाश होनेसे चिन्ताका नाश होता है और चिन्तनका नाश होनेसे वासनाका नाश होता है वासनाका नाश ही मोक्ष कहाता है और इसको ही जीवन्मुक्ति कहते हैं ॥ ३१६ ॥

सद्वासनास्फूर्त्तिविजृम्भणे सत्यसौ विलीनाप्यहमादिवासना । अतिप्रकृष्टाप्यरुणप्रभायां विलीयते साधु यथा तमिस्रा ॥ ३१७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (अरुणप्रभायाम्) अरुणका प्रकाश होने पर (प्रकृष्टा, अपि) अत्यन्त भी (तमिस्रा) अन्धेरी रात (साधु) पूर्णतया (विलीयते) विलीन होजाती है [तथा] तैसे ही (सद्वासनास्फूर्त्ति-विजृम्भणे सति) ब्रह्मवासनाके स्फुरणका प्रकाश होनेपर (असौ) यह (अहमादिवासना,अपि) अहंकार आदि वासना भी (विलीना) विलीन [भवति] होती है ॥

भावार्थ-जैसे रात्रि अत्यन्त अन्धेरी हो तब भी अरुणकी प्रभाका उदय होने पर अत्यन्त लीन होजाती है तैसे ही इस अहंकार आदिकी वासना प्रबल होने पर भी ब्रह्मभावकी वासनाका पूर्णतया उदय होने पर विलीन होजाती है ॥ ३१७ ॥

तमस्तमः कार्यमनर्थजालं न दृश्यते सत्युदिते दिनेशे । तथाऽद्वयानन्दरसानुभूतौ नैवास्ति बन्धो न च दुःखगन्धः॥

अन्वय और पदार्थ-(दिनेशे) सूर्यके (उदिते सति) उदयको प्राप्त होने पर (तमः) अन्धकार (तमःकार्यम्) अन्धकारका कार्य (अनर्थजालम्) अनर्थसमूह (न)

नहीं (दृश्यते) दीखता है (तथा) तैसे ही (अद्वयानन्दरसानुभूतौ) अद्वैतानन्दके रसका अनुभव होने पर (बन्धः) बन्धन (न) नहीं (च) और (दुःखगन्धः) दुःखका गन्ध (न) नहीं (अस्ति) है ॥ ३१८ ॥

भावार्थ-सूर्यका उदय होने पर अन्धेरा और अन्धेरेमें होनेवाले अनर्थ देखनेमें नहीं आते, ऐसे ही अद्वैतानन्दके रसका अनुभव होने पर बन्धन और बन्धनसे होनेवाले दुःख लेशमात्र भी देखनेमें नहीं आते ॥३१८॥

दृश्यं प्रतीतं प्रविलापयन्सन्सन्मात्रमानन्दघनं विभावयन् । समाहितः सन्बहिरन्तरं वा कालं नयेथाः सति कर्मबन्धे ॥ ३१९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(कर्मबन्धे, सति) कर्मबन्धनके होने पर (प्रतीतम्) प्रतीत होते हुए (दृश्यम्) दृश्यको (प्रविलापयन्) विलीन करता हुआ (आनन्दघनम्) आनन्दघन (सन्मात्रम्) ब्रह्ममात्रको (विभावयन्) भावना करता हुआ (बहिः) बाहर (वा) और (अन्तरम्) भीतर (समाहितः सन्) सावधान रहता हुआ (कालम्) समयको (नयेथाः) व्यतीत कर ॥ ३१९ ॥

भावार्थ -यदि तुझको कर्मबन्धन हो तो प्रतीत होते हुए दृश्य पदार्थोंका लय करता, आनन्दघन सत्स्वरूप ब्रह्मकी भावना करता और बाहर तथा भीतरके विषयोंसे सावधानी रखता हुआ समय बिता ॥ ३१९ ॥

प्रमादो ब्रह्मनिष्ठायां न कर्तव्यः कदाचन।
प्रमादो मृत्युरित्याह भगवान्ब्रह्मणः सुतः।

अन्वय और पदार्थ-(ब्रह्मनिष्ठायाम्) ब्रह्मनिष्ठामें (प्रमादः) असावधानी (कदाचन) कभी (न) नहीं (कर्त्तव्यः) करना चाहिये (प्रमादः) असावधानी (मृत्युः) मृत्यु है (इति) इसप्रकार (भगवान्) महात्मा (ब्रह्मणः) ब्रह्माका (सुतः) पुत्र (आह) कहता हुआ

भावार्थ-ब्रह्मनिष्ठामें कभी भी असावधानी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि-असावधानता ही मृत्यु है ऐसा महात्मा ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारजीने कहा है ॥ ३२० ॥

न प्रमादादनर्थोऽन्यो ज्ञानिनः स्व-स्वरूपतः। ततो मोहस्ततोऽहन्धीस्ततो बन्धस्ततो व्यथा ॥ ३२१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ज्ञानिनः) ज्ञानीको (स्वस्वरूपतः) अपने स्वरूपसे (प्रमादतः) प्रमादकी अपेक्षा (अन्यः) दूसरा (अनर्थः) अनर्थ (न) नहीं है (ततः) तिससे (मोहः) मोह (ततः) तिससे (अहन्धीः) अहम्बुद्धि (ततः) तिससे (बन्धः) बन्धन (ततः) तिससे (व्यथा) कष्ट [भवति] होता है ॥ ३२१ ॥

भावार्थ-ज्ञानीको अपने स्वरूपसे असावधान होनेकी अपेक्षा बड़ा अनर्थ दूसरा कोई नहीं है क्योंकि-तिस प्रमादसे मोह, मोहसे अन्धकार, अहंकारसे बन्धन और बन्धनसे दुःखभोग होता है ॥ ३२१ ॥

विषयाभिमुखं दृष्ट्वा विद्वांसमपि विस्मृतिः
विक्षेपयति धीदोषैर्योषा जारमिव प्रियम्

अन्वय और पदार्थ-(विस्मृतिः) विस्मरण (विद्वांसम् अपि) विद्वान्को भी (विषयाभिमुखम्) विषयोंकी ओर को झुकाहुआ (दृष्ट्वा) देखकर (योषा) स्त्री (धीदोषैः) बुद्धिके दोषोंके द्वारा (प्रियम्) प्यारे (जारम्—इव) जारको जैसे (विक्षेपयति) विक्षेपयुक्त करती है ३२२

भावार्थ-विस्मरण, विद्वान्को भी विषयोंमें आसक्त हुआ देखकर, जैसे व्यभिचारिणी स्त्री जार पुरुषको बुद्धिके दोषोंसे विक्षेपयुक्त करती है तैसे ही उसकी विस्मृति विक्षेपोंसे व्याकुल करती है ॥ ३२२ ॥

यथापकृष्टं शैवालं क्षणमात्रं न तिष्ठति।
आवृणोति तथा माया प्राज्ञं वापि परांमुखम् ॥ ३२३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (अपकृष्टम्) खेंचा हुआ (शैवालम्) सिवार (क्षणमात्रम्) क्षण भर (न) नहीं (तिष्ठति) स्थित होता है (तथा) तैसे (माया) माया (पराङ्मुखम्) परांमुख हुए (प्राज्ञम्, वापि) विद्वान्को भी (आवृणोति) ढक देती है ३२३

भावार्थ-जैसे जलके ऊपरसे खेंचा हुआ सिवार क्षणमात्र भी उस दशामें न रहकर फिर जलको ढक लेता है तैसे ही, माया मिथ्या जानी हुई होने पर भी स्वरूपसे डिगेहुए विद्वान् पुरुषको भी क्षणभरमें छालेती है ३२३

लक्ष्यच्युतं चेद्यदि चित्तमीषद्बहिर्मुखं सन्निपतेत्ततस्ततः।प्रमादतः प्रच्युतकेलि-कन्दुकः सोपानपंक्तौ पतितो यथा तथा॥

अन्वय और पदार्थ-(यदि) जो (चित्तम्) चित्त (ईषत्) जरा (लक्ष्यच्युतम्) लक्ष्यसे खसका हुआ (बहिर्मुखम्) बहिर्मुख (चेत्) होजाय (ततः) तब (यथा) जैसे (प्रमादतः) प्रमादसे (प्रच्युतकेलिकन्दुकः) छटका हुआ क्रीड़ाका कन्दुक (सोपानपंक्तौ) पॅडियोंमें (पतितः) पड़ा हुआ [भवति] होता है (तथा) तैसे (ततः) तिससे (निपतेत्) छितराजायगा ॥ ३२४ ॥

भावार्थ-यदि चित्त लक्ष्यमेंसे जरासा भी खसककर बहिर्मुख होजाय तो फिर असावधानीसे छिटकी हुई खेलनेकी गेंद जैसे पॅड़ियोंमें टक्करें खाती चली जाती है तैसे ही चारों ओर टक्करें खाने लगता है ॥ ३२४ ॥

विषयेष्वाविशच्चेतः संकल्पयति तद्गुणान् । सम्यक्सङ्कल्पनात्कामः कामात्पुंसः प्रवर्तनम् ॥ ३२५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विषयेषु) विषयोंमें (आविशत्) प्रवेश करता हुआ (चेतः) चित्त (तद्गुणान्) तिन विषयोंके गुणोंको (संकल्पयति) कल्पना करता है (सम्यक्) पूर्णतया (संकल्पनात्) कल्पना करनेसे (कामः) इच्छा होती है (कामात्) कामनासे (पुंसः) पुरुषकी (प्रवर्तनम्) प्रवृत्ति होती है ॥ ३२५ ॥

भावार्थ–विषयोंमें प्रवेश करता हुआ चित्त, विषयों के गुणोंकी कल्पना करता है, अधिक कल्पना होनेसे इच्छा उत्पन्न होती है और इच्छा होनेसे पुरुषकी तिन विषयोंमें प्रवृत्ति होती है ॥ ३२५ ॥

अतः प्रमादान्न परोऽस्ति मृत्यु-र्विवेकिनो ब्रह्मविदः समाधौ । समाहितः सिद्धिमुपैति सम्यक्समाहितात्मा भव सावधानः ॥ ३२६ ॥

अन्वय और पदार्थ–(अतः) इसकारण (समाधौ) समाधिमें (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी (विवेकिनः) विवेकी की (प्रमादात्) प्रमादसे (परः) और (मृत्युः) मृत्यु (न) नहीं (अस्ति) है (समाहितः) तत्त्वमें चित्तकी एकाग्रता रखनेवाला (सम्यक्) भले प्रकार (सिद्धिम्) सिद्धिको (उपैति) प्राप्त होता है (समाहितः) तत्त्वमें चित्तकी एकाग्रतावाला (सावधानः) सावधान (भव) हो

भावार्थ–इसकारण समाधिमें तत्त्वको जानने वाले विवेकीका, प्रमादसे बढकर दूसरा कोई भी शत्रु नहीं है, तत्त्वमें चित्तकी एकाग्रता रखनेवालेको भले प्रकार सिद्धि प्राप्त होती है, इसकारण तू तत्त्वमें चित्तकी एकाग्रताको रख और विषयोंसे सचेत रह ॥ ३२६ ॥

ततः स्वरूपविभ्रंशो विभ्रष्टस्तु पतत्यधः। पतितस्य विना नाशं पुनर्नारोह ईक्ष्यते॥

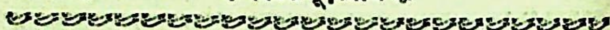


अन्वय और पदार्थ-(ततः) तिससे (स्वरूपविभ्रंशः) स्वरूपसे विलगाव होता है (विभ्रष्टः, तु) स्वरूपसे विलग हुआ तो (अधः) नीचे (पतति) गिरता है (पतितस्य) गिरेहुएका (नाशम्-विना) नाशके विना (पुनः) फिर (आरोहः) चढना (न) नहीं (ईक्ष्यते) देखा जाता है ॥ ३२७ ॥

भावार्थ-प्रमाद करनेसे पुरुष, स्वरूपसे अलग होजाता है और स्वरूपसे जुदा हुआ कि-नीचे गिर पड़ता है, इसप्रकार जो नीचे गिरता है वह अवश्य ही दुःखित होता है और शीघ्र ही ऊपरको चढ नहीं सकता ३२७

संकल्पं वर्जयेत्तस्मात्सर्वानर्थस्य कारणम् । जीवतो यस्य कैवल्यं विदेहे च स केवलः । यत्किञ्चित्पश्यतो भेदं भयं ब्रूते यजुःश्रुतिः ॥ ३२८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तस्मात्) तिससे (सर्वानर्थस्य) सकल अनर्थोंके (कारणम्) कारणभूत (संकल्पम्) संकल्पको (वर्जयेत्) त्यागे (यस्य) जिसका (जीवतः) जीते हुए (कैवल्यम्) मोक्ष होता है (सः) वह (विदेहे, च) देहपात होने पर भी (केवलः) मुक्त होता है (यत्किंचित्) जरा भी (भेदम्) भेदको (पश्यतः) देखनेवालोंको (यजुः श्रुतिः) यजुर्वेदकी श्रुति (भयम्) भय (ब्रूते) कहती है ॥ ३२८ ॥



भावार्थ-इसकारण सकल अनर्थोंके हेतु संकल्पका त्याग करना चाहिये, जिसको जीवन्मुक्ति प्राप्त होती है उसको विदेहमुक्ति भी प्राप्त होती है, यदि पुरुष जरा भी भेददृष्टि रखता है तो उसको भय प्राप्त होता है, ऐसा यजुर्वेदकी श्रुति कहती है ॥ ३२८ ॥

यदा कदा वापि विपश्चिदेष ब्रह्मण्य-
नन्तेऽप्यणुमात्रभेदम् । पश्यत्यथा-
मुष्य भयं तदैव यद्वीक्षितं भिन्नतया
प्रमादात् ॥ ३२९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एषः) यह (विपश्चित्) विद्वान् (यदा, कदा, वापि) जिस किसी समय भी (अनन्ते) अनंत (ब्रह्मणि) ब्रह्ममें (अणुमात्रभेदम्, अपि) अणुमात्र भेदको भी (पश्यति) देखता है (अथ) अनन्तर (अमुष्य) इसको (तदा, एव) उसी समय (भयम्) भय [भवति] होता है (यत्) क्योंकि (प्रमादात्) प्रमादवश (भिन्नतया) भेदभाव करके (वीक्षितम्) देखा है ॥ ३२९ ॥

भावार्थ-जो विद्वान् किसी समय भी ब्रह्ममें अणुमात्र भी भेदको देखता है तो उसको उसी समय भय प्राप्त होता है, क्योंकि-उसने प्रमादवश भेदभावसे देखा है ॥ ३२९ ॥

श्रुतिस्मृतिन्यायशतैर्निषिद्धे दृश्येऽत्र
यः स्वात्ममतिं करोति । उपैति दुःखो-

परि दुःखजातं निषिद्धकर्ता स मलिम्लुचो यथा ॥ ३३० ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (श्रुतिस्मृतिन्यायशतैः) सैंकड़ों श्रुति स्मृति और न्यायोंके द्वारा(निषिद्धे) निषेध किये हुए (अत्र) इस (दृश्ये) दृश्यपदार्थराशि में (स्वात्ममतिम्) अहम्बुद्धिको (करोति) करता है (सः) वह (निषिद्धकर्त्ता) निषिद्ध कार्यका करनेवाला (मलिम्लुचः-यथा) मलिनपुरुष जैसे (दुःखोपरि) दुःख के ऊपर (दुःखजातम्) दुःखके समूहको (उपैति) प्राप्त होता है ॥ ३३० ॥

भावार्थ-सैंकड़ों श्रुति स्मृति और युक्तियोंके निषेध करने पर भी जो पुरुष दृश्य पदार्थोंमें अहंबुद्धि करता है उस पुरुष पर शास्त्रविरुद्ध खोटे कर्म करनेवाले मलिनात्मा मनुष्यकी समान दुःखोंके समूह आकर पड़ते हैं ॥

सत्याभिसन्धानरतो विमुक्तो महत्त्वमात्मीयमुपैति नित्यम्। मिथ्याभिसंधानरतस्तु नश्येद् दृष्टं तदेतद्यदचौरचौरयोः

अन्वय और पदार्थ-(सत्याभिसन्धानरतः) सत्य की अभिलाषामें तत्पर हुआ (नित्यम्) सदा (विमुक्तः) मुक्त रहकर (आत्मीयम्) अपने (महत्त्वम्) महत्त्व को (उपैति) पाता है (मिथ्याभिसन्धानरतः-तु) मिथ्यापदार्थोंकी अभिलाषामें तत्पर हुआ पुरुष तो (नश्येत्) नष्ट होजायगा (यत्) क्योंकि (तत्-एतत्)

सो यह (अचौरचौरयोः) साहू और चोरमें (दृष्टम्) देखा है ॥ ३३१ ॥

भावार्थ–जैसे साहूकार सचाईसे प्रेम करनेके कारण सदा छूटा रहकर बड़प्पन पाता है और चोर खोटी बात से प्रेम करनेके कारण नष्ट होजाता है, तैसे ही विवेकी पुरुष सत्य ब्रह्मवस्तुका अभिलाषी होनेके कारण मुक्त रहकर अपने अविचल गौरवको पाता है और मूढ पुरुष देह आदि मिथ्या पदार्थोंमें आसक्त रह कर संसारमें दुःख ही दुःख सहता है ॥ ३३१ ॥

यतिरसदनुसन्धिं बन्धहेतुं विहाय
स्वयमहमस्मीत्यात्मदृष्ट्यैव तिष्ठेत् ।
सुखयति ननु निष्ठा ब्रह्मणि स्वानुभूत्या
हरति परमविद्याकार्यदुःखं प्रतीतम् ॥

अन्वय और पदार्थ–(यतिः) संयमी (बन्धहेतुम्) बन्धके हेतु (असदनुसन्धिम्) मिथ्यापदार्थोंके अनुसंधान को (विहाय) त्यागकर (अयम्) यह (अहं, मैं (स्वयम्) आप करके ही (तिष्ठेत्) स्थित होय (ननु) निश्चय (ब्रह्मणि)ब्रह्ममें(अस्मि) हूँ(इति) ऐसे (आत्म–दृष्ट्या एव) आत्मदृष्टि (निष्ठा) श्रद्धा (स्वानुभूत्या) निजस्वरूपके अनुभव करके (सुखयति) सुख देती है (प्रतीतम्) प्रतीत होनेवाले (परम्) बड़े भारी (अविद्याकार्यदुःखम्) अविद्याके कार्यरूप दुःखको (हरति) दूर करती है ॥

भावार्थ–मुमुक्षु पुरुषको चाहिये कि–जो बन्धनका कारण है ऐसे मिथ्यापदार्थरूप देहादिमें आसक्तिको

त्याग देय और मैं ब्रह्म हूँ ऐसी आत्मदृष्टि करता रहै, ब्रह्मनिष्ठा स्वरूपके अनुभवसे सुख देती है और प्रतीत होनेवाले अविद्याके कार्यरूप दुःखको हरती है ॥३३२॥

बाह्यानुसन्धिः परिवर्धयेन्फलं दुर्वासनामेव ततस्ततोऽधिकाम् । ज्ञात्वा विवेकैः परिहृत्य बाह्यं स्वात्मानुसन्धिं विदधीत नित्यम् ॥ ३३३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(बाह्यानुसन्धिः) बाहरके पदार्थों का अनुसन्धान (ततः, ततः) तिस तिससे (अधिकाम्) अधिक (दुर्वासनाम्-एव) दुर्वासनारूप ही (फलम्) फलको (परिवर्धयेत्) बढावेगी [अतः] इस कारण (विवेकैः) विचारों द्वारा (ज्ञात्वा) जान कर (बाह्यम्) बाहरी वस्तुको (परिहृत्य) त्याग कर (नित्यम्) सदा (स्वात्मानुसन्धिम्) अपने स्वरूपके अनुसन्धानको (विदधीत) करे ॥ ३३३ ॥

भावार्थ-विषयादि बाहरी पदार्थोंमें गुथे रहना एकसे एक अधिक दुष्टवासनारूप फलको ही बढाता है इस कारण विवेकसे समझकर बाहरी पदार्थोंका त्याग करके नित्यस्वरूपका ही अनुसन्धान करना चाहिये ॥

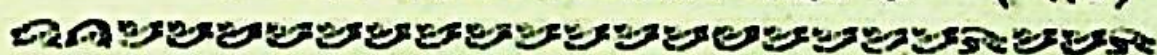
बाह्ये निरुद्धे मनसः प्रसन्नता मनःप्रसादे परमात्मदर्शनम् । तस्मिन्सुदृष्टे भवबन्धनाशो बहिर्निरोधः पदवी विमुक्तेः

अन्वय और पदार्थ–(बाह्ये) बाहरी दृश्यके (निरुद्धे) रुकने पर (मनसः) मनकी (प्रसन्नता) प्रसन्नता होती है (मनःप्रसादे) मनकी प्रसन्नता होने पर (परमात्म-दर्शनम्) परमात्माका दर्शन होता है (तस्मिन्) तिसके (सुदृष्टे) भलीप्रकार ज्ञात होने पर (भवबन्धनाशः) संसारबन्धनका नाश होता है (बहिर्निरोधः) बाहरी पदार्थोंका निरोध (विमुक्तेः) मुक्तिका (पदवी) मार्ग है

भावार्थ–बाहरी पदार्थोंके अनुसन्धानको रोकनेसे मन स्वच्छ होता है, मनके स्वच्छ होनेसे परमात्माका दर्शन होता है और परमात्मज्ञान होनेसे संसाररूप बन्धनका नाश होता है इसकारण बाहरका निरोध ही मुक्तिका मार्ग है ॥ ३३४ ॥

कः पण्डितः सन्सदसद्विवेकी श्रुति-प्रमाणः परमार्थदर्शी । जानन्हि कुर्या-दसतोऽवलम्बं स्वपातहेतोः शिशुवन्-मुमुक्षुः ॥ ३३५ ॥

अन्वय और पदार्थ (कः) कौन (पण्डितः) बुद्धि-मान् (सदसद्विवेकी) सत् असत्को जाननेवाला (श्रुति-प्रमाणः) वेदको प्रमाण माननेवाला (परमार्थदर्शी) परमार्थको देखनेवाला (मुमुक्षुः) मुमुक्षु पुरुष (जानन् सन्) जानता हुआ (शिशुवत्) बालककी समान (हि) निश्चय (स्वपातहेतो) अपनी अधोगतिके कारणरूप (असतः) असत्के (अवलम्बनम्) अवलम्बनको (कुर्यात्) करेगा ॥ ३३५ ॥



भावार्थ-कौन मुमुक्षुपुरुष स्वयं समझदार सत् असत् के विवेकवाला वेदको प्रमाण माननेवाला और परमार्थको जाननेवाला होकर भी बालककी समान अपनी अधोगतिके कारण मिथ्या पदार्थोंका अवलम्बन करेगा ३३५

देहादिसंसक्तिमतो न मुक्तिर्मुक्तस्य देहाद्यभिमत्यभावः । सुप्तस्य नो जागरणं न जाग्रतः स्वप्नस्तयोर्भिन्नगुणाश्रयत्वात् ॥ ३३६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सुप्तस्य) सोएहुएका (जागरणं) जागना (नो) नहीं (जाग्रतः) जागते हुएका (स्वप्नः) सोना (न) नहीं (तयोः) तिनका (भिन्नगुणाश्रयत्वात्) भिन्न गुणोंका आश्रय होनेसे [एवम्] ऐसे ही (देहादिसंसक्तिमतः) देहादिमें आसक्तिवाले की (मुक्तिः) मुक्ति (न) नहीं (मुक्तस्य) मुक्तका (देहाद्यभिमत्यभावः) देहादिमें अभिमानका अभाव होता है ॥ ३३६ ॥

भावार्थ-जैसे सोते हुएको जाग्रत् अवस्था नहीं होती और जागतेहुएको स्वप्नावस्था नहीं होती, क्योंकि उन दोनोंके आश्रयरूप गुण परस्पर भिन्न होते हैं, इसी प्रकार देहादिमें आसक्तिवालेकी मुक्ति नहीं होती और मुक्तहुएको देहादिका अभिमान नहीं होता ॥ ३३६ ॥

अन्तर्बहिः स्वं स्थिरजङ्गमेषु ज्ञात्वा-

त्मनाधारतया विलोक्य । त्यक्ताखिलोपाधिरखण्डरूपः पूर्णात्मना यः स्थित एष मुक्तः ॥ ३३७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (स्थिरजंगमेषु) स्थावरजंगमपदार्थोंमें (अन्तर्बहिः) भीतर वाहर (स्वम्) अपनेको (ज्ञात्वा) जानकर (आत्मना) अपने करके (आधारतया) आधारस्वरूपसे (विलोक्य) देखकर (त्यक्ताखिलोपाधिः) त्याग दी हैं सकल उपाधियें जिसने ऐसा (अखण्डरूपः) अखण्डरूप (पूर्णात्मना) पूर्णस्वरूप करके (स्थितः) स्थित है (एषः) यह ((मुक्तः) मुक्त है ॥ ३३७ ॥

भावार्थ-आधारपनेके द्वारा स्थावरजंगमोंमें भीतर बाहर जो अपना ही व्यापकपना देखकर सकल उपाधियोंको छोड़ताहुआ अखण्ड पूर्णरूपसे रहता है उसको ही मुक्त समझना चाहिये ॥ ३३७ ॥

सर्वात्मना बन्धविमुक्तिहेतुः सर्वात्मभावान्न परोऽस्ति कश्चित् । दृश्याग्रहे सत्युपपद्यतेऽसौ सर्वात्मभावोऽस्य सदात्मनिष्ठया ॥ ३३८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सर्वात्मना) सबप्रकारसे (बन्धविमुक्तिहेतुः) बन्धनोंमेंसे छूटनेका हेतु (सर्वात्मभावात्) सर्वात्मकपनेमें (परः) दूसरा (कश्चित्) कोई (न)

नहीं (अस्ति) है (दृश्याग्रहे) दृश्यके ग्रहण न होनेपर (सदात्मनिष्ठया) सत् स्वरूप आत्मामें निष्ठाके द्वारा (अस्य) इसका (असौ) यह (सर्वात्मभावः) सर्वात्मकपना (उपपद्यते) सिद्ध होता है ॥ ३३८ ॥

भावार्थ-सबप्रकार बन्धनोंमेंसे छूटनेका उपाय सर्वात्मकपनेके सिवाय दूसरा कोई नहीं है और सर्वात्मकपना, दृश्योंका ग्रहण छूटकर अपने स्वरूपमें निष्ठा होने से प्राप्त होता है ॥ ३३८ ॥

दृश्यस्याग्रहणं कथं नु घटते देहात्मना तिष्ठतो बाह्यार्थानुभवप्रसक्तमनसस्तत्तत्क्रियां कुर्वतः । संन्यस्ताखिलधर्मकर्मविषयैर्नित्यात्मनिष्ठापरैस्तत्त्वज्ञैः करणीयमात्मनि सदानन्देच्छुभिर्यत्नतः ॥

अन्वय और पदार्थ--(देहात्मना) देहरूप करकै(तिष्ठतः) स्थितका (बाह्यार्थानुभवप्रसक्तमनसः) बाहरी पदार्थों के अनुभवमें मनको लगानेवाले (तत्तत्क्रियाम्) तिस २ क्रियाको (कुर्वतः) करनेवालेका (दृश्यस्य) दृश्यका (अग्रहणम्) ग्रहण न करना (कथम् नु) कैसे (घटते) बनसकता है (सदा) सदा (आनन्देच्छुभिः) आनन्द की इच्छा करनेवाले (तत्त्वज्ञैः) तत्त्वज्ञ (यत्नतः) यत्नसे (संन्यस्ताखिलधर्मकर्मविषयैः) त्यागे हैं सकल धर्म कर्म और विषय जिन्होंने ऐसे (नित्यात्मनिष्ठापरैः) सदा

आत्मनिष्ठामें तत्परोंकरकै (आत्मनि) आत्मामें [अग्रहणम्] अग्रहण (करणीयम्) करना चाहिये ॥३३९॥

भावार्थ-जबतक देहरूपसे रहता है मन बाहरके पदार्थोंके अनुभवमें लगाहुआ है और स्वयं अनेकों क्रियाओंको कररहा है तबतक दृश्य पदार्थोंका ग्रहण कैसे छूटसकता है ? कदापि नहीं छूटसकता। इसकारण सदा आनन्दकी इच्छा करनेवाले तत्त्वज्ञानियोंको यत्नपूर्वक सकल,धर्म कर्म और विषयोंको त्यागकर नित्य आत्मानिष्ठा रखतेहुए तिन दृश्यपदार्थोंका ग्रहण न होने पावै, ऐसा करना चाहिये॥ ३३९ ॥

सर्वात्मसिद्धये भिक्षोः कृतश्रवणकर्मणः। समाधिं विदधात्येषा शान्तो दान्त इति श्रुतिः ॥ ३४० ॥

अन्वय और पदार्थ-(शान्तो दान्त इति) शान्तो दान्त इत्यादि (एषा) यह (श्रुतिः) श्रुति (कृतश्रवणकर्मणः) किया है श्रवणका कार्य जिसने ऐसे (भिक्षोः) संन्यासी के (सर्वात्मसिद्धये) सर्वात्मभावकी सिद्धिके अर्थ (समाधिम्) समाधिको (विदधाति) विधान करती है॥३४०॥

भावार्थ-जिसने वेदान्तका श्रवण किया है इस संन्यासीके सर्वात्मभावकी सिद्धिके लिये 'शान्तो दान्तः' इत्यादि श्रुति समाधिकरनेकी आज्ञा देती है ॥ ३४० ॥

आरूढशक्तेरहमो विनाशः कर्तुं न शक्यः सहसापि पण्डितैः । ये निर्वि-

कल्पाख्यसमाधिनिश्चलास्तानन्तरानन्तभवा हि वासनाः ॥ ३५१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ये) जो (निर्विकल्पाख्यसमाधिनिश्चलाः) निर्विकल्पा नामक समाधिमें निश्चलहुए हैं (तान् अन्तरा) उनको छोड़कर (पण्डितैः अपि) पण्डितों करकै भी (आरूढशक्तेः) जमी है शक्ति जिसकी ऐसे (अहमः) अहंकारका (विनाशः) विनाश (सहसा) एकायकी (कर्तुम्) करनेको (शक्यः) शक्य (न) नहीं है (हि) क्योंकि (वासनाः) वासनाएं (अनन्तभवाः) अनन्तजन्मोंमें उत्पन्नहुई हैं ॥ ३५१ ॥

भावार्थ-जो निर्विकल्प समाधिमें निश्चल होगये हैं उनको छोड़कर दूसरे पण्डितोंसे भी अनादिकालसे जमे हुए अहङ्कारका सहसा नाश नहीं होसकता क्योंकि वासनाएं अनेकों जन्मोंकी लगीहुई हैं ॥ ३५१ ॥

अहंबुद्ध्यैव मोहिन्या योजयित्वावृतेर्बलात् । विक्षेपशक्तिः पुरुषं विक्षेपयति तद्गुणैः ॥ ३५२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विक्षेपशक्तिः) विक्षेपशक्ति(आवृतेः) आवरणके (बलात्) बलसे (मोहिन्या) मोहित करने वाली (अहम्बुद्ध्या, एव) ।अहम्बुद्धिके साथ ही (योजयित्वा) मिलाकर (तद्गुणैः) उसके गुणोंके द्वारा (पुरुषम्) पुरुषको (विक्षेपयति) विक्षेपमें डालती है।३५२।

भावार्थ-आवरणके बलसे मोहित करनेवाली अहं-

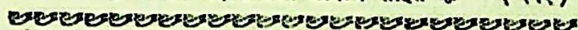
बुद्धिके साथ मिलाकर विक्षेपशक्ति उसके गुणोंसे पुरुष को विक्षेपमें डालती है ॥ ३४१ ॥

विक्षेपशक्तिविजयो विषमो विधातुं निःशेषमावरणशक्तिनिवृत्त्यभावे । दृग्-दृश्ययोः स्फुटपयोजलवद्विभागे नश्येत्त-दावरणमात्मनि च स्वभावात् ॥३४३॥

अन्वय और पदार्थ–(निःशेषम्) सर्वथा (आवरण-शक्तिनिवृत्त्यभावे) आवरणशक्तिका अभावहुए विना (विक्षेपशक्तिविजयः) विक्षेपशक्तिका विजय (विधा-तुम्) करनेको (विषमः) कठिन है (स्फुटपयोजलवत्) स्पष्ट दूध और जलकी समान (दृग्दृश्ययोः) द्रष्टा और द्रष्टाका (अभावे) अभाव होने पर (आत्मनि) आत्मा में (तदावरणम् च) उसका आवरण भी (स्वभावात्) स्वभावसे (नश्येत्) नष्ट होजायगा ॥ ३४३ ॥

भावार्थ–जब तक आवरणशक्ति सर्वथा दूर नहीं होती तबतक विक्षेपशक्तिको जीतना बड़ा कठिन है जब दूध और जलके अलग २ होनेकी समान द्रष्टा और दृश्य का स्पष्ट विभाग होजाता है तब आत्मामें आवरण भी आपसे आप ही नष्ट होजाता है ॥ ३४३ ॥

निःसंशयेन भवति प्रतिबन्धशून्यो विक्षेपणं न हि तदा यदि चेन्मृषार्थे । सम्यग्विवेकः स्फुटबोधजन्यो विभज्य

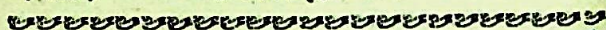


दृग्दृश्यपदार्थतत्त्वम् । छिनत्ति माया-कृतमोहबन्धं यस्माद् विमुक्तस्य पुनर्न संसृतिः ॥ ३४४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यदि) जो (मृषार्थे) मिथ्या-पदार्थमें (विक्षेपणम्) विक्षेप (नहि) नहीं (चेत्) हो (तदा) तो (निःसंशयेन) निःसन्देह (प्रतिबन्धशून्यः) प्रतिबन्धरहित होता है (स्फुटबोधजन्यः) स्फुटज्ञानसे उत्पन्न हुआ (सम्यग्विवेकः) सम्यक् ज्ञान (दृग्दृश्य-पदार्थतत्त्वम्) द्रष्टा और दृश्य पदार्थोंके तत्त्वको (विभज्य) विभाग करके (मायाकृतमोहबन्धम्) मायाके करे हुए मोहके बन्धनको (छिनत्ति) काटदेता है (यस्मात्) जिससे (विमुक्तस्य) विमुक्तको (पुनः) फिर (संसृतिः) संसार (न) नहीं होता है ॥ ३४४ ॥

भावार्थ-यदि मिथ्यापदार्थोंके विषैंका विक्षेप न होय तो निःसन्देह प्रतिबन्धरहित ज्ञान होता है, तिस स्पष्ट बोधसे हुआ उत्तम विवेक द्रष्टा और दृश्य पदार्थों का विभाग करके मायाके करेहुए मोहरूपी बन्धनको काट डालता है, कि-जिसके कट जानेसे मुक्त पुरुषको फिर संसार नहीं होता है ॥ ३४४ ॥

परावरैकत्वविवेकवन्हिर्दहत्यविद्याग-हनं ह्यशेषम् । किं स्यात्पुनः संसरणस्य वीजमद्वैतभावं समुपेयुषोऽस्य ॥



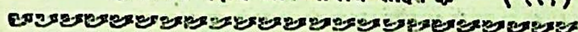
अन्वय और पदार्थ-(परावरैकत्वविवेकवन्हिः) जीव और ब्रह्मके एकत्वका ज्ञानरूप अग्नि (अशेषम्) सम्पूर्ण (अविद्यागहनम्) अविद्यारूपी घनको (हि) निश्चय (दहति) भस्म कर देती है (अद्वैतभावम्) अद्वैतपने को (समुपेयुषः) प्राप्त होनेवाले (अस्य) इसके (संसरणस्य) संसारको प्राप्त होनेका (बीजम्) बीज (पुनः) फिर (किम्) क्या (स्यात्) हो ॥ ३४५ ॥

भावार्थ-जीव और ब्रह्मके एकत्वको जाननारूप अग्नि, अविद्यारूपी सकल वनको भस्म कर डालती है, इसप्रकार अद्वैतभावको प्राप्त हुए पुरुषको फिर संसार प्राप्त होनेका दूसरा बीज ही क्या रहता है ? कुछ नहीं रहता ॥ ३४५ ॥

आवरणस्य निवृत्तिर्भवात् च सम्यक्-पदार्थदर्शनतः । मिथ्याज्ञानविनाशस्त-द्विक्षेपजनितदुःखनिवृत्तिः ३४६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सम्यक्पदार्थदर्शनतः) भले प्रकार पदार्थज्ञान होनेसे (आवरणस्य) आवरणकी (निवृत्तिः) निवृत्ति (मिथ्याज्ञानविनाशः) मिथ्याज्ञानका नाश (तद्विक्षेपजनितदुःखनिवृत्तिः) और उस विक्षेपसे उत्पन्न हुए दुःखोंकी निवृत्ति (भवति) होती है

भावार्थ-यथार्थ रीतिसे पदार्थका ज्ञान होने पर आवरणकी निवृत्ति, मिथ्याज्ञानका नाश और विक्षेपके कारण होनेवाले दुःखोंकी निवृत्ति होती है ॥ ३४७ ॥



एतत्त्रितयं दृष्टं सम्यग्रज्जुस्वरूप-विज्ञानात्। तस्माद्वस्तु सतत्त्वं ज्ञातव्यं बन्धमुक्तये विदुषा ॥ ३४७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सम्यक्) भलेप्रकार (रज्जुरूप-विज्ञानात्) रज्जुके स्वरूपका ज्ञान होनेसे (एतत्) यह (त्रितयम्) तीन फल (दृष्टम्) देखे हैं (तस्मात्) तिस-कारण (विदुषा) विद्वान् करके (बन्धमुक्तये) बन्धनकी मुक्तिके अर्थ (वस्तुतत्त्वम्) वस्तुका तत्त्व (ज्ञातव्यम्) जानना चाहिये ॥ ३४७ ॥

भावार्थ-लोकमें भी ठीक २ रज्जुके स्वरूपका ज्ञान होजानेसे आवरणकी निवृत्ति, सर्परूप मिथ्याज्ञानका नाश और सर्प समझनेसे हुए दुःखोंकी निवृत्ति देखनेमें आती है, इसकारण बन्धनसे छूटनेके निमित्त विद्वान् को वस्तुका ठीक २ तत्त्व जानना चाहिये ॥ ३४७ ॥

अयोऽग्नियोगादिव सत्समन्वयान्-मात्रादिरूपेण विजृम्भते धीः। तत्कार्य-मेतद् द्वितयं यतो मृषा दृष्टं भ्रमस्वप्न-मनोरथेषु ॥ ३४८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अग्नियोगात्) अग्निके संयोगसे (अयः यथा) लोहा जैसे (सत्समन्वयात्) सत्के योग से (धीः) बुद्धि (मात्रादिरूपेण) मात्राआदि रूपसे (विजृम्भते) प्रतीत होती है (तत्कार्यम्) उसका कार्य

२९

(एतत्) यह (द्वितयम्) द्वैत (मृषा) मिथ्या है (यतः) क्योंकि (भ्रमस्वप्नमनोरथेषु) भ्रम, स्वप्न और मनोरथोंमें (दृष्टम्) देखा है ॥

भावार्थ-जैसे अग्निके साथसे लोहा दाहकरूपमें प्रतीत होता है, तैसे ही सत्का साथ होनेके कारण बुद्धि प्रमाता आदि रूपवाली प्रतीत होती है, द्वैत बुद्धिका कार्य है इसकारण मिथ्या है द्वैतका मिथ्यापना भ्रान्ति स्वप्न और मनोरथोंके समय स्पष्ट देखनेमें आता है ॥ ३४८ ॥

ततो विकाराः प्रकृतेरहंमुखा देहावसाना विषयाश्च सर्वे । क्षणेऽन्यथा भावितया ह्यमीषामसत्त्वमात्मा तु कदापि नान्यथा ॥ ३४६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ततः) तिसके अनन्तर (अहंमुखाः) अहंकार आदि (देहावसानाः) देहपर्यन्त (प्रकृतेः) प्रकृतिके (विकाराः) विकार (विषयाः च) विषय भी (सर्वे) सब (क्षणे) क्षणमें (अन्यथाभावितया) अन्यथारूपता होनेके (अमीषाम्) इनका (हि) निश्चय (असत्त्वम्) मिथ्यापना है (आत्मा तु) आत्मा तो (कदापि) कभी भी (अन्यथा) बदलनेवाला (न) नहीं होता है ॥ ३४६ ॥

भावार्थ-इसप्रकार अहंकारसे देहपर्यंत प्रकृतिके विकार और विषय सब क्षण २ में दूसरे प्रकारके होजानेके कारण मिथ्या हैं और आत्मा तो कभी भी नहीं बदलता इसकारण सत्य है ॥ ३४६ ॥

नित्याद्वयाखण्डचिदेकरूपो बुद्ध्यादि-साक्षी सदसद्विलक्षणः । अहंपदप्रत्यय-लक्षितार्थः प्रत्यक्सदानन्दघनः परात्मा

अन्वय और पदार्थ-(अहंपदप्रत्ययलक्षितार्थः) अहम्पद की प्रतीतिसे लक्षित होनेवाला है अर्थ जिसका ऐसा (परात्मा) परमात्मा (नित्याद्वयाखण्डचिदेकरूपः) नित्य, अद्वैत, अखण्ड चेतन, एकरूप (बुद्ध्यादिसाक्षी) बुद्धि आदिका साक्षी (सदसद्विलक्षणः) कार्य और कारणसे विलक्षण (प्रत्यक्सदानन्दघनः) व्यापक और सदा आनन्दघन है । ॥ ३५० ॥

भावार्थ-जो 'मैं' इस पदकी प्रतीतिसे जानाजाय ऐसा पदार्थ परमात्मा नित्य है, अद्वितीय है, अखण्ड है, चेतन है, एक है, बुद्धि आदिका साक्षी है, कार्योंसे तथा कारणों से विलक्षण है, सर्वव्यापक है और सदा आनन्दघन है

इत्थं विपश्चित्सदसद्विभज्य निश्चित्य तत्त्वं निजबोधदृष्ट्या । ज्ञात्वा स्वमात्मानमखण्डबोधं तेभ्यो विमुक्तः स्वयमेव शाम्यति ॥ ३५१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इत्थम्) इस प्रकार (विपश्चित्) विद्वान् (सदसत्) सत् और असत्को (विभज्य) विभक्त करके (निजबोधदृष्ट्या) अपनी ज्ञानदृष्टि करके (तत्त्वम्) तत्त्वको (निश्चित्य) निश्चय करके (स्वम्) अपने

(आत्मानम्) आत्माको (अखण्डबोधम्) अखण्डज्ञानरूप (ज्ञात्वा) जानकर (तेभ्यः) तिन मिथ्या पदार्थोंसे (विमुक्तः) छूटाहुआ (स्वयम्,एव) अपने आपही(शाम्यति) शान्त होजाता है ॥ ३५१ ॥

भावार्थ–इस प्रकार विद्वान् सत् और असत् पदार्थों का विभाग करके, अपनी ज्ञानदृष्टिसे तत्त्वका निश्चय करके और अपने आत्माको पूर्ण ज्ञानस्वरूप जानकर मिथ्यापदार्थोंसे छूटताहुआ आप ही शान्त होजाता है

अज्ञानहृदयग्रन्थेर्निःशेषविलयस्तदा ।
समाधिनाविकल्पेन यदाद्वैतात्मदर्शनम्

अन्वय और पदार्थ–(यदा) जब (अविकल्पसमाधिना) निर्विकल्प समाधिसे (अद्वैतात्मदर्शन) अद्वैत आत्माका दर्शन होता है (तदा) तब (अज्ञानहृदयग्रन्थेः) हृदयकी अज्ञानरूप गाँठका (निःशेषविलयः) सर्वथा लय होजाता है ॥ ३५२ ॥

भावार्थ–जब निर्विकल्प समाधिसे अद्वैत आत्मा का दर्शन होजाता है तब हृदयकी अज्ञानरूप गाँठ सर्वथा नष्ट होजाती है ॥ ३५२ ॥

त्वमहमिदमितीयं कल्पना बुद्धिदो-
षात्प्रभवति परमात्मन्यद्वये निर्विशेषे ।
प्रविलसति समाधावस्य सर्वो विकल्पो
विलयनमुपगच्छेद्वस्तुतत्त्वावधृत्या ३५३



अन्वय और पदार्थ-(अद्वये) अद्वितीय (निर्विशेषे) एक रस (परमात्मनि) परमात्मामें (बुद्धिदोषात्) बुद्धि के दोषसे (त्वमहमिदमिति) तू, मैं, यह, इसप्रकार (इयम्) यह (कल्पना) कल्पना (प्रभवति) होती है (समाधौ) समाधिके (प्रविलसति) सिद्ध होनेपर (वस्तु-तत्त्वावधृत्या) वस्तुके तत्त्वका निश्चय होने करके (अस्य) इसका (सर्वः) सब (विकल्पः) विकल्प (विलयनम्) विलीनभावको (उपगच्छेत्) प्राप्त होगा ॥३५३॥

भावार्थ-परमात्मा कि-जो अद्वितीय निर्विशेष है उसमें बुद्धिके दोषके कारण 'तू, मैं' यह ऐसी कल्पना उत्पन्न होती है, और जब समाधि होजाती है तब वस्तु का यथार्थ तत्त्व समझमें आजानेसे सब विकल्प लीन हो जाते हैं ॥ ३५३ ॥

शान्तो दान्तः परमुपरतः क्षान्ति-युक्तः समाधिं,कुर्वन्नित्यं कलयति यतिः स्वस्य सर्वात्मभावम् । तेनाविद्यातिमिर-जनितान्साधु दग्ध्वा विकल्पान्, ब्रह्मा-कृत्या निवसति सुखं निष्क्रियो निर्वि-कल्पः ॥ ३५४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(शान्तः) शान्तिवाला (दान्तः) जितेन्द्रिय (परम्) अत्यन्त (उपरतः)उपरामको प्राप्तहुआ (क्षान्तियुक्तः) क्षमासे युक्त (नित्यम्) नित्य (समाधिम्)

समाधिको (कुर्वन्) करताहुआ (यतिः) संन्यासी (स्वस्य) पने (सर्वात्मभावम्) सर्वात्मकपनेको (कलयति) अनुभव करता है (तेन) तिसके द्वारा (अविद्यातिमिरजनितान्) अविद्यारूपी अन्धकारसे उत्पन्न हुए (विकल्पान्) विकल्पोंको (सम्यक) भले प्रकार (दग्ध्वा) भस्म करके (निष्क्रियः) क्रियारहित (निर्विकल्पः) विकल्परहित (ब्रह्माकृत्या) ब्रह्माकार करके (सुखम्) सुखपूर्वक (निवसति) वसता है ॥ ३५४ ॥

भावार्थ—शान्त, जितेन्द्रिय, परम उपरामको प्राप्त हुआ, क्षमावाला और नित्य समाधि करता हुआ संन्यासी अपने सर्वव्यापकपनेका यथार्थ अनुभव करता है, इस अनुभवके होने पर अविद्यारूपी अन्धकारसे उत्पन्न हुए विकल्पोंको सर्वथा भस्म करडालता है और क्रिया तथा विकल्पसे रहित होकर ब्रह्माकार बनकर परमसुखपाताहै

समाहिता ये प्रविलाप्य बाह्यं श्रोत्रादिचेतः स्वमहं चिदात्मनि । त एव मुक्ता भवपाशबन्धैर्नान्ये तु पारोक्ष्यकथाभिधायिनः ॥ ३५५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ये) जो (स्वम्) अपने (बाह्यम्) दृश्य (श्रोत्रादि) श्रोत्र आदिको (चेतः) चित्तको (अहम्) अहंकारको (चिदात्मनि) चेतनात्मामें(प्रविलाप्य)विलीन करके (समाहिताः) स्वरूपका अनुभव करनेवाले होते हैं (ते, एव) वे ही (भवपाशबन्धैः) संसारफाँसके

बन्धनोंसे (मुक्ताः) मुक्त होते हैं (पारोक्ष्यकथाभिधायिनः) परोक्ष कथा कहनेवाले (अन्ये तु) दूसरे तो (न) नहीं ॥ ३५५ ॥

भावार्थ-अपने श्रोत्र आदि इन्द्रियें चित्त और अहंकार कि-जो दृश्य पदार्थ हैं उनको चिदात्मामें विलीन करके जो स्वरूपका अपरोक्ष अनुभव करते हैं उनको ही मुक्त हुए समझना चाहिये, परोक्ष बातें मात्र करने वाले औरोंको मुक्त नहीं समझना चाहिये ॥३५५॥

उपाधिभेदात्स्वयमेव भिद्यते चोपाध्यपोहे स्वयमेव केवलः । तस्मादुपाधेर्विलयाय विद्वान् वसेत्सदाकल्पसमाधिनिष्ठया ॥ ३५६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(उपाधिभेदात्) उपाधियोंके भेदसे (स्वयमेव) आप ही (भिद्यते) भिन्न होता है (च) और (उपाध्यपोहे) उपाधियोंके दूर होने पर (स्वयम्) आप (केवलः एव) केवल ही रहता है (तस्मात्) तिससे (विद्वान्) विवेकी (उपाधेः) उपाधिके (विलयाय) विलीन होनेके लिये (सदा) सर्वदा (अकल्पसमाधिनिष्ठया) निर्विकल्प समाधिमें निष्ठाके द्वारा (वसेत्) रहे ॥ ३५६ ॥

भावार्थ-उपाधियोंके भेदके कारण स्वयं ही भिन्न २ रूपका प्रतीत होता है और उपाधियोंके दूर होजाने पर स्वयं अकेला ही रहजाता है, इसकारण विद्वान्को उपा-

धियोंका लय होनेके निमित्त सदा निर्विकल्प समाधिमें निष्ठा रखना चाहिये ॥ ३५६ ॥

सति सक्तो नरो याति सद्भावं ह्येकनिष्ठया । कीटको भ्रमरं ध्यायन्भ्रमरत्वाय कल्पते ॥ ३५७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(हि) निश्चय (एकनिष्ठया) एकनिष्ठा करके (सति) ब्रह्ममें (सक्तः) लगा हुआ (नरः) मनुष्य (सद्भावम्) ब्रह्मभावको (याति) प्राप्त होता है (कीटकः) कीड़ा (भ्रमरम्) भौंरेको (ध्यायन्) ध्यान करता हुआ (भ्रमरत्वाय) भ्रमरपनेको (कल्पते) प्राप्त होता है ॥ ३५७ ॥

भावार्थ-जैसे भ्रमरका ध्यान करता हुआ कीड़ा भ्रमरपनेको प्राप्त होजाता है, तैसे ही एकनिष्ठासे ब्रह्म का चिन्तवन करनेमें लगा हुआ पुरुष ब्रह्मपनेको प्राप्त होजाता है ॥ ३५७ ॥

क्रियान्तरासक्तिमपास्य कीटको ध्यायन्नलित्वं ह्यलिभावमृच्छति । तथैव योगी परमात्मतत्त्वं ध्यात्वा समायाति तदेकनिष्ठया ॥ ३५८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(कीटकः) कीड़ा (क्रियान्तरासक्तिम्) अन्य क्रियामें आसक्तिको (अपास्य) त्याग कर (अलित्वम्) भ्रमरपनेको (ध्यायन्) ध्यान करता

हुआ (हि) निश्चय (अलिभावम्) भौंरेपनेको (ऋच्छति) प्राप्त होता है (तथा-एव) तैसे ही (योगी) योगी (तदेकनिष्ठया) तिसमें एक निष्ठाके द्वारा (ध्यात्वा) ध्यान करके (परमात्मतत्त्वम्) परमात्मपने को (समायाति) प्राप्त होता है ॥ ३५८ ॥

भावार्थ-दूसरी क्रियाओंमें आसक्ति न रखकर जैसे भ्रमरीका ध्यान करताहुआ कीड़ा भ्रमरीपनेको प्राप्त होता है तैसेही एकनिष्ठासे परमात्मतत्त्वका ध्यान करनेवाला योगी परमात्मपनेको प्राप्त होजाता है ॥ ३५८ ॥

अतीव सूक्ष्मं परमात्मतत्त्वं न स्थूल-दृष्ट्या प्रतिपत्तुमर्हति । समाधिनात्यन्त-सुसूक्ष्मवृत्त्या ज्ञातव्यमार्यैरतिशुद्धबु-द्धिभिः ॥ ३५९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अतीवसूक्ष्मम्) अत्यन्तसूक्ष्म (परमात्मतत्त्वम्) परमात्मतत्त्व (स्थूलदृष्ट्या) स्थूल-दृष्टि करके (प्रतिपत्तुम्) ज्ञात होनेको (न) नहीं (अर्हति) योग्य होता है (अतिशुद्धबुद्धिभिः) अत्यन्त शुद्ध बुद्धि वाले (आर्यैः) सज्जनों करके (अत्यन्तसुसूक्ष्मवृत्त्या) अत्यन्त परमसूक्ष्मवृत्तिवाली (समाधिना) समाधि करके (ज्ञातव्यम्) जानने योग्य है ॥ ३५९ ॥

भावार्थ-परमात्माका तत्त्व अत्यन्त-सूक्ष्म होनेके कारण स्थूलदृष्टिसे नहीं जानाजासकता, इसकारण अत्यन्त शुद्धबुद्धिवाले सज्जनोंको समाधि करके बहुत ही सूक्ष्मबुद्धिसे उसको जानना चाहिये ॥ ३५९ ॥

यथा सुवर्णं पटुपाकशोधितं त्यक्त्वा मलं स्वात्मगुणं समृच्छति। तथा मनः सत्त्वरजस्तमोमलं ध्यानेन संत्यज्य समेति तत्त्वम् ॥ ३६० ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (पटुपाकशोधितम्) भलेप्रकार गलाकर शोधाहुआ (सुवर्णम्) सोना (मलम्) मैलको (त्यक्त्वा) त्यागकर (स्वात्मगुणम्) अपने स्वाभाविक गुणको (समृच्छति) प्राप्त होता है (तथा) तैसे (मनः) मन (ध्यानेन) ध्यानके द्वारा (सत्त्वरजस्तमोमलम्) सत्त्व-रजः और तमोरूप मलको (संत्यज्य) त्याग कर (तत्त्वम्) तत्त्वको (समेति) प्राप्त है ॥ ३६० ॥

भावार्थ-जैसे भलेप्रकार गलाकर शोधाहुआ सोना मैलको छोड़ कर अपने स्वाभाविक स्वरूपसे दमकने लगता है, तैसे ही ध्यानके द्वारा शुद्ध कियाहुआ मन, सत्व रजः और तमोगुणरूप मैलको त्यागकर तत्त्वको प्राप्त होजाता है ॥ ३६० ॥

निरन्तराभ्यासवशात्तदित्थं पक्वं मनो ब्रह्मणि लीयते यदा। तदा समाधिः स विकल्पवर्जितः स्वतोऽद्वयानन्दरसानुभावकः ॥ ३६१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इत्थम्) इसप्रकार (निरन्तराभ्यासवशात्) निरन्तर अभ्यास करनेके कारण (यदा)

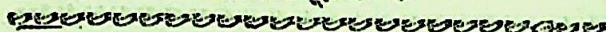
जब (मनः) मन (ब्रह्मणि) ब्रह्ममें (लीयते) लीन होता है (तदा) तब (सः) वह (स्वतः) स्वयं (अद्वयानन्दरसानुभावकः) अद्वैतानन्दके रसका अनुभव करानेवाला (विकल्पवर्जितः) विकल्पसे रहित (समाधिः) समाधि [भवति] होता है ॥ ३६१ ॥

भावार्थ—यह मन निरन्तर अभ्यास करनेसे परिपक्व होकर जब ब्रह्ममें लीन होने लगता है तब अपने आप ही अद्वैतानन्दके रसका अनुभव करानेवाली निर्विकल्प समाधि होजाती है ॥ ३६१ ॥

समाधिनानेन समस्तवासनाग्रन्थे-
र्विनाशोऽखिलकर्मनाशः । अन्तर्बहिः
सर्वत एव सर्वदा स्वरूपविस्फूर्त्तिरयत्नतः
स्यात् ॥ ३६२ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अनेन) इस (समाधिना) समाधिके द्वारा (समस्तवासनाग्रन्थेः) सकल वासनाओंकी गाँठका (विनाशः) नाश (अखिलकर्मनाशः) सकल कर्मोंका नाश (अयत्नतः) विना यत्नके (सर्वदा) सबसमय (सर्वतः-एव) सब ओरसे ही (अन्तः बहिः) भीतर बाहर (स्वरूपविस्फूर्त्तिः) स्वरूपका विशेष स्फुरण (स्यात्) होगा ॥ ३६२ ॥

भावार्थ—इस समाधिसे सकल वासनाओंकी ग्रन्थिका नाश होजाता है, सकल कर्म नष्ट होजाते हैं तथा विना ही यत्नके भीतर और बाहर सर्वत्र सब समय स्वरूपका स्फुरण होता है ॥ ३६२ ॥



श्रुतेः शतगुणं विद्यान्मननं मननादपि ।
निदिध्यासं लक्षगुणमनंतं निर्विकल्पकम् ॥

अन्वय और पदार्थ-(श्रुतेः) श्रवणसे (मननम्) मननको (शतगुणम्) सौगुण (मननात्-अपि) मनन से भी (निदिध्यासम्) निदिध्यासनको (लक्षगुणम्) लक्षगुणा (निर्विकल्पम्) निर्विकल्पको (अनन्तम्) अनन्त (विद्यात्) जाने ॥ ३६३ ॥

भावार्थ-श्रवणकी अपेक्षा मनन करनेमें सौगुणा लाभ होता है, मननकी अपेक्षा निदिध्यासनमें लाखगुणा लाभ होता है और निदिध्यासनकी अपेक्षा निर्विकल्प समाधिमें अनन्तगुणा लाभ होता है ॥ ३६३ ॥

निर्विकल्पकसमाधिना स्फुटं ब्रह्मतत्त्व-
मवगम्यते ध्रुवम् । नान्यथाचलतया
मनोगतेः प्रत्ययान्तरविमिश्रितं भवेत् ॥

अन्वय और पदार्थ-(ध्रुवम्) निःसन्देह (निर्विकल्प-समाधिना) निर्विकल्पसमाधिके द्वारा (स्फुटम्) अपरोक्ष (ब्रह्मतत्त्वम्) ब्रह्मतत्त्व (अवगम्यते) जानाजाता है (मनोगतेः) मनकी गतिके (चलतया) चंचलहोनेके कारण (अन्यथा) और प्रकारसे (न) नहीं होता (प्रत्ययांतरविमिश्रितम्) अन्य प्रतीतिसे मिलाहुआ (भवेत्) होगा

भावार्थ-निर्विकल्प समाधिसे ही ब्रह्मतत्त्वका अपरोक्ष अनुभव होता है,मनकी गति चंचल होनेके कारण

दूसरे किसी प्रकारसे भी नहीं होता, दूसरे किसी प्रकार से किया जाय तो दृश्य पदार्थोंकी प्रतीति आकर उसमें मिलीहुई भासने लगती है ॥ ३६४ ॥

अतः समाधत्स्व यतेन्द्रियः सन्निरन्तरं शान्तमनाः प्रतीचि । विध्वंसय ध्वान्तमनाद्यविद्यया कृतं सदेकत्वविलोकनेन ॥ ३६५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अतः) इसकारण (जितेन्द्रियः) जितेन्द्रिय (शान्तमनाः सन्) शान्त मनवाला होता हुआ (निरन्तरम्) निरन्तर (प्रतीचि) ब्रह्ममें (समाधत्स्व) समाधि लगा (अनाद्यविद्यया) अनादि अविद्या करके (कृतम्) कियेहुए (ध्वान्तम्) अन्धकारको (तदेकत्वविलोकनेन) ब्रह्मकी एकताके दर्शन करके (विध्वंसय) नष्ट कर ॥ ३६५ ॥

भावार्थ-इसकारण तू जितेन्द्रिय तथा शांत मनवाला होकर निरन्तर ब्रह्ममें निर्विकल्प समाधि लगा और अनादि, अविद्याके किये हुए अन्धकारको, स्वरूपकी एकताको देखनेसे नाश कर ॥ ३६५ ॥

योगस्य प्रथमद्वारं वाङ्निरोधोपरिग्रहः। निराशा च निरीहा च नित्यमेकान्तशीलता ॥ ३६६ ॥



अन्वय और पदार्थ-(वाङ्निरोधः) वाणीका निरोध (अपरिग्रहः) परिग्रहका त्याग (निराशा) आशारहित होना (च) और (निरीहा) क्रियारहित होना (च) और (नित्यम्) सदा (एकान्तशीलता) एकान्तमें रहनेका स्वभाव (योगस्य) योगका (प्रथमद्वारम्) पहिला द्वार है ॥ ३६६ ॥

भावार्थ-थोड़ा भाषण करनेके द्वारा वाणीका निरोध, निर्वाहसे अधिक सामग्री न रखनेके द्वारा परिग्रहका त्याग, किसी वस्तुकी आशा न करना और वृथा चेष्टा न करना यह सब साधना करना योगका पहिला द्वार अर्थात् योगमें प्रवेश करनेका मार्ग है ॥ ३६६ ॥

एकान्तस्थितिरिन्द्रियोपरमणे हेतुर्दमश्चेतसः । संरोधे करणं शमेन विलयं यायादहंवासना । तेनानन्दरसानुभूतिरचला ब्राह्मी सदा योगिनस्तस्माच्चित्तनिरोध एव सततं कार्यः प्रयत्नान्मुनेः ॥

अन्वय और पदार्थ-(इन्द्रियोपरमणे) इन्द्रियोंके उपराममें (एकान्तस्थितिः) एकान्तमें स्थिति (हेतुः) हेतु है (चेतसः) चित्तके (संरोधे) सम्यक्प्रकार रोकनेमें (दमः) इन्द्रियोंका दमन (करणम्) साधन है (शमेन) चित्तके निरोधसे (अहंवासना) अहंकारकी वासना (विलयम्) नाशको (यायात्) प्राप्त हो (तेन) तिस

करके (योगिनः) योगीके (सदा) सर्वदा (ब्राह्मी) ब्रह्मविषयक (अचला) अविचल (आनन्दरसानुभूतिः) आनन्दरसका अनुभव होता है (तस्मात्) तिससे (मुनेः) मुनिको (सततम्) निरन्तर (प्रयत्नात्) उद्योगसे (चित्तनिरोधः,एव) चित्तका निरोध ही (कार्यः) करना चाहिये । ३६७ ।

भावार्थ–एकान्तमें रहनेसे इन्द्रियोंका उपराम होता है, इन्द्रियोंके उपरामसे चित्तका संरोध (शम) होता है निरोधसे अहंकारकी वासना मिटती है और वासनाके मिटनेसे योगीको सदा ब्रह्मविषयक अविचल आनन्द-रसका अनुभव होता है, इसकारण योगीको उद्योग करके चित्तका निरोध ही करना चाहिये ॥ ३६७ ॥

वाचं नियच्छात्मनि तं नियच्छ बुद्धौ धियं यच्छ च बुद्धिसाक्षिणि । तं वाचि पूर्णात्मनि निर्विकल्पे, विलाप्य शान्तिं परमां भजस्व ॥ ३६८ ॥

अन्वय और पदार्थ–(वाचम्) वाणीको (आत्मनि) मनमें (नियच्छ) स्थापन कर (तम्) उस मनको (बुद्धौ) बुद्धिमें (नियच्छ) स्थापन कर (च) और (धियम्) बुद्धिको (बुद्धिसाक्षिणि) बुद्धिके साक्षीमें (यच्छ) दे (च) और (तम्–अपि) उसको भी (निर्वि-कल्पे) निर्विकल्प (पूर्णात्मनि) पूर्ण आत्मामें (विलाप्य)

विलीन करके (परमाम्) परम (शान्तिम्) शान्तिको (भजस्व) सेवन कर ॥ ३६८ ॥

भावार्थ—वाणीको मनमें, मनको बुद्धिमें, बुद्धिको बुद्धिके साक्षीमें और उस साक्षीको निर्विकल्प पूर्णात्मामें विलीन करके परमशान्तिको प्राप्त हो ॥ ३६८ ॥

देहप्राणेन्द्रियमनोबुद्ध्यादिभिरुपाधिभिः । यैर्यैर्वृत्तेः समायोगस्तत्तद्भावोऽस्य योगिनः ॥ ३६९ ॥

अन्वय और पदार्थ—(यैः, यैः) जिन २ (देहप्राणेन्द्रियमनोबुद्ध्यादिभिः) देह, प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदि (उपाधिभिः) उपाधियोंके साथ (वृत्तेः) वृत्तिका (समायोगः) समागम होता है (अस्य) इस (योगिनः) योगीका (तत्तद्भावः) वही २ भाव होता है ॥

भावार्थ—देह, प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदि उपाधियोंमेंसे जिस २ उपाधिके साथ वृत्तिका समागम होता है वही २ उपाधिरूपपना योगीको प्राप्त होता है

तन्निवृत्त्या मुनेः सम्यक्सर्वोपरमणं सुखम् । संदृश्यते सदानन्दरसानुभवविप्लवः ॥ ३७० ॥

अन्वय और पदार्थ-(मुनेः) मुनिकी(सम्यक्) भलेप्रकार (तन्निवृत्त्या) तिन उपाधियोंकी निवृत्तिके द्वारा (सर्वोपरमम्) सबके उपरामवाला (सुखम्)सुख (सदानन्द-

रसानुभवविप्लवः) सच्चे आनन्दरसके अनुभवमें निमग्नपना (संदृश्यते) दीखता है ३७०

भावार्थ-सकल उपाधियोंके यथावत् दूर होजाने पर योगीको सबके उपरामका स्वरूपसुख प्राप्त होता है और वह योगी सच्चे आनन्दरसके अनुभवमें निमग्न रहता है

अन्तस्त्यागो बहिस्त्यागो विरक्तस्यैव युज्यते । त्यजत्यन्तर्बहिःसङ्गं विरक्तस्तु मुमुक्षया ॥ ३७१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अन्तस्त्यागः) भीतरीत्याग (बहिस्त्यागः) बाहरीत्याग (विरक्तस्य-एव) विरक्तके ही (युज्यते) युक्त होता है (विरक्तः-तु) विरक्त तो (मुमुक्षया) मुक्त होनेकी इच्छासे (अन्तर्बहिःसङ्गम्) भीतरी बाहरी संगको (त्यजति) त्यागता है ॥३७१॥

भावार्थ-जिसको वैराग्य होजाय वह ही भीतरके और बाहरके विषयोंको त्यागसकता है और यह त्याग यदि मोक्षकी इच्छा होय तब ही होसकता है ॥ ३७१ ॥

बहिस्तु विषयैः सङ्गं तथान्तरहमादिभिः । विरक्त एव शक्नोति त्यक्तुं ब्रह्मणि निष्ठितः ॥ ३७२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ब्रह्मणि) ब्रह्ममें (निष्ठितः) निष्ठावाला (विरक्तः-एव) विरक्त ही (बहिः-तु) बाहर तो (विषयैः) विषयों करके (तथा) तैसे ही

(अन्तः) भीतर (अहमादिभिः) अहङ्कार आदिके साथ (संगम्) सगंको (त्यक्तुम्) त्यागनेको (शक्नोति) समर्थ होता है ॥ ३७२ ॥

भावार्थ—ब्रह्ममें निष्ठाको प्राप्त हुआ विरक्त पुरुष ही बाहर विषयोंके और भीतर अहंकार आदिके संग को त्याग सकता है ॥ ३७२ ॥

वैराग्यबोधौ पुरुषस्य पक्षिवत्पक्षौ विजानीहि विचक्षणस्त्वम् । विमुक्तिसौधाग्रलताधिरोहणं, ताभ्यां विना नान्यतरेण सिध्यति ॥ ३७३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विचक्षण) हे विचारवान् (त्वम्) तू (वैराग्यबोधौ) वैराग्य और ज्ञानको (पक्षिवत्) पक्षीकेसे (पुरुषस्य) पुरुषके (पक्षौ) पक्ष (विजानीहि) जान (ताभ्याम् विना) उन दोनोंके बिना (अन्यतरेण) दोनोंमेंसे एकके द्वारा (विमुक्तिसौधाग्रलताधिरोहणम्) मुक्तिरूप महलके शिखरकी लता पर चढना (न) नहीं (सिध्यति) सिद्ध होता है ॥ ३७३ ॥

भावार्थ—हे विचारशील ! पुरुषके मुक्तिरूपी विशाल महलकी चोटीपर चढ़नेके निमित्त वैराग्य और ज्ञान यह दो पंख हैं ऐसा जान, जैसे दोनों पंख होने पर ही पक्षी ऊँचा जासकता है, एक पंखसे नहीं जासकता है तिसी प्रकार पुरुष, यदि वैराग्य और ज्ञान दोनों हों तो ही मुक्तिको प्राप्त होसकता है, एकसे नहीं प्राप्त होसकता।

अत्यन्तवैराग्यवतः समाधिः समाहितस्यैव दृढप्रबोधः । प्रबुद्धतत्त्वस्य हि बन्धमुक्तिर्मुक्तात्मनो नित्यसुखानुभूतिः ॥

अन्वय और पदार्थ-(अत्यन्तवैराग्यवतः) परम-वैराग्यवालेको (समाधिः) समाधि होती है (समाहितस्य-एव) समाधिवालेको ही (दृढप्रबोधः) अटल ज्ञान होता है (प्रबुद्धतत्त्वस्य-हि) दृढ ज्ञानवाले को ही (बन्धमुक्तिः) बन्धनसे मुक्ति होती है (मुक्तात्मनः) मुक्तात्माको (नित्यसुखानुभूतिः) नित्यसुखका अनुभव होता है ॥ ३७४ ॥

भावार्थ-अत्यन्त वैराग्य वालेको समाधिसिद्धि होती है, समाधि वालेको ही दृढज्ञान प्राप्त होता है, दृढ ज्ञान वालेका ही बन्धनमेंसे छुटकारा होता है और बन्धन छूटे हुएको ही नित्यसुखका अनुभव मिलता है ॥३७४॥

वैराग्यान्न परं सुखस्य जनकं पश्यामि वश्यात्मनस्तच्चेच्छुद्धतरात्मबोधसहितं स्वाराज्यसाम्राज्यधुक् । एतद्द्वारमजस्रमुक्तियुवतेर्यस्मात्त्वमस्मात्परं सर्वत्रास्पृहया सदात्मनि सदा प्रज्ञां कुरु श्रेयसे ॥

अन्वय और पदार्थ-(वश्यात्मनः) मनको वशमें रखने वालेके(वैराग्यात्)वैराग्यसे (परम) अन्य (सुखस्य) सुख

के (जनकम्) उत्पन्न करनेवालेको (न) नहीं (पश्यामि) देखता हूँ (चेत्) यदि (तत्) वह (शुद्धतरात्मबोध-सहितम्) परमशुद्ध आत्मज्ञानसहितहो (स्वाराज्यसाम्राज्यधुक्) आत्मानन्दरूप चक्रवर्त्तीपनेका सुख देनेवाला होता है (यस्मात्) जिससे (एतत्) यह (अजस्रमुक्तियुवतेः) सदामुक्तिरूप स्त्रीके मिलनेका (द्वारम्) द्वार है (अतः) इससे (त्वम्) तू (अस्मात्-परम्) अबसे आगे (श्रेयसे) कल्याणके निमित्त (सर्वत्र) सब विषयोंमें (अस्पृहया) अनिच्छाके द्वारा (सदा) सर्वदा (सदात्मनि) सद्रूप आत्मामें (प्रज्ञाम्)निष्ठाको (कुरु) कर ॥ ३७५ ॥

भावार्थ—जिसने अन्तः करणको वशमें करलिया है उसको वैराग्यसे अन्य दूसरा कोई पदार्थ परमसुख देनेवाला देखनेमें नहीं आता, परन्तु यह वैराग्य यदि अत्यन्त शुद्ध आत्माके ज्ञान सहित हो तो आत्मानन्द-रूप चक्रवर्तीपनेका सुख देता है, सर्वदा मुक्तिरूप स्त्रीके पानेका द्वार यही है, इस लिये तू अबसे आगेको परम कल्याणको पानेके लिये सकल कामनाओंको त्यागकर सदा आत्मनिष्ठामें ही रह ॥ ३७५ ॥

आशां छिन्धि विषोपमेषु विषयेष्वेषैव मृत्योः कृतिस्त्यक्त्वा जातिकुलाश्रमेष्वभिमतिं मुंचातिदूरात्क्रियाः देहादावसति त्यजात्मधिषणां प्रज्ञां कुरु स्वा-

त्मनि । त्वं द्रष्टास्यमनोऽसि निर्द्वयपरं ब्रह्मासि यद्वस्तुतः ॥ ३७६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विषोपमेषु) विषसमान (विषयेषु) विषयोंमें (आशाम्) आशाको (छिन्धि) काट (एषा-एव) यह ही (मृत्योः) मृत्युकी (कृतिः) करतूत है (जातिकुलाश्रमेषु) जाति, कुल और आश्रमोंमें (अभिमतिम्) अभिमानको (त्यक्त्वा) त्यागकर (क्रियाः) क्रियाओं को (अतिदूरात्) बहुतदूरसे (मुञ्च) छोड़ (असति) मिथ्यापदार्थ (देहादौ) देहआदिमें (आत्मधिषणाम्) आत्मबुद्धिको (त्यज) त्याग (आत्मनि) आत्मामें (प्रज्ञाम्) निष्ठाको (कुरुष्व) कर (यत्) क्योंकि(त्वम्) तू (वस्तुतः) वास्तवमें (द्रष्टा) साक्षी (असि) है (अमनः) मनरहित (असि) है (निर्द्वयम्) अद्वितीय (परम्) पर (ब्रह्म) ब्रह्म (असि) है ॥ ३७६ ॥

भावार्थ-विषसमान विषयोंकी आशाको काटडाल, क्योंकि-यह आशा ही मृत्युकी करतूत है, जाति कुल और आश्रमोंमें अभिमानको त्याग कर क्रियाओंको बहुत दूरसे छोड़ दे, देहादिमिथ्यापदार्थोंमें आत्मबुद्धि न कर और आत्मामें निष्ठा रख क्योंकि तू साक्षी है,मनरहित है,और वास्तवमें अद्वितीय परब्रह्म है ॥ ३७६ ॥

लक्ष्ये ब्रह्मणि मानसं दृढतरं संस्थाप्य बाह्येन्द्रियं, स्वस्थाने विनिवेश्य निश्चलतनुश्चोपेक्ष्य देहस्थितिम् । ब्रह्मात्मैक्य-



सुपेत्य तन्मयतया चाखण्डवृत्त्यानिशं,
ब्रह्मानन्दरसं पिबात्मनि मुदा शून्यैः
किमन्यैर्भृशम् ॥ ३७७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(मानसम्) मनको (ब्रह्मणि) ब्रह्मरूप (लक्ष्ये) लक्ष्यमें (दृढतरम्) अत्यन्त दृढ (संस्थाप्य) स्थापित करके (बाह्येन्द्रियम्) बाहरी इन्द्रियको (स्वस्थाने) अपने २ गोलकमें (विनिवेश्य) स्थापित करके (च) और (देहस्थितिम्) देहकी स्थिति को (उपेक्ष्य) उपेक्षा करके (निश्चलतनुः) निश्चल शरीर वाला होता हुआ (ब्रह्मात्मैक्यम्) ब्रह्मकी और अपनी एकताको (उपेत्य) प्राप्त होकर (च) और (तन्मयतया) तन्मयपने करके (अखण्डवृत्त्या) अखंड वृत्तिके द्वारा (मुदा) आनन्दपूर्वक (आत्मनि) चित्तमें (अनिशम्) निरन्तर (ब्रह्मानन्दरसम्) ब्रह्मानन्दके रसको (पिब) पी (भृशम्) अत्यन्त (अन्यैः) अन्य (शून्यैः) शून्यों करके (किम्) क्या है ॥ ३७७ ॥

भावार्थ-मनको ब्रह्मरूप लक्ष्यमें अत्यन्त दृढ रखकर बाहरी इन्द्रियोंको उनके अपने २ गोलकमें ही रोककर देहके निर्वाहकी कुछ अपेक्षा न करके और निश्चलपनेसे अपनी तथा ब्रह्मकी एकताको समझ कर तन्मयतापूर्वक अखण्डवृत्तिसे प्रेमके साथ चित्तमें ब्रह्मानन्दके रसका पान कर दूसरे अत्यन्त शून्य पदार्थोंसे क्या होना है ३७७

अनात्मचिन्तनं त्यक्त्वा कश्मलं

दुःखकारणम्। चिन्तयात्मानमानन्दरूपं यन्मुक्तिकारणम् ॥ ३७८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(कश्मलम्) मोहरूप (दुःखकारणम्) दुःखके हेतु (अनात्मचिन्तनम्) अनात्म पदार्थों के चिन्तवनको (त्यक्त्वा) त्यागकर (आनन्दरूपम्) आनन्दस्वरूप (आत्मानम्) आत्माको (चिन्तय) चिन्तवनकर (यत्) जो (मुक्तिकारणम्) मुक्तिका कारण है

भावार्थ-जो मोहरूप और दुःखप्राप्त होनेका कारण है उन देह इन्द्रियादि अनात्म पदार्थों की चिन्ता को छोड़दे और आनन्दरूप आत्माका चिन्तवन कर कि-जिससे मुक्ति प्राप्त होती है ॥ ३७८ ॥

एष स्वयंज्योतिरशेषसाक्षी विज्ञानकोशो विलसत्यजस्रम्। लक्ष्यं विधायैनमसद्विलक्षणमखण्डवृत्त्यात्मतयाऽनुभावय ॥ ३७९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(स्वयंज्योतिः) स्वयंप्रकाश (अशेषसाक्षी) सबका साक्षी (एषः) यह (अजस्रम्) निरन्तर (विज्ञानकोशः) विज्ञानकोशरूप (विलसति) प्रकाशित होता है (असद्विलक्षणम्) परमसत्यरूप (एनम्) इस आत्माको (लक्ष्यम्) लक्ष्य (विधाय) करके (अखण्डवृत्त्यात्मतया) अखण्डवृत्तिरूपतासे (अनुभावय) अनुभव कर॥ ३७९ ॥


भावार्थ–स्वयंप्रकाश और सबका साक्षी यह आत्मा बुद्धिमें निरन्तर प्रकाशित होता है, तिसमें परम सत्यरूप आत्मामें ध्यान जमाकर, अखण्डवृत्तिसे 'यह अपना ही स्वरूप है' ऐसी भावना कर ॥ ३७६ ॥

एतमच्छिन्नया वृत्त्या प्रत्ययान्तरशून्यया । उल्लेखयन्विजानीयात्स्वस्वरूपतया स्फुटम् ॥ ३८० ॥

अन्वय और पदार्थ–(प्रत्ययान्तरशून्यया) अन्य प्रतीतिसे शून्य (अच्छिन्नया) अविच्छिन्न (वृत्त्या) वृत्ति करके (एनम्) इसको (उल्लेखयन्) चिन्तवन करता हुआ (स्फुटम्) स्पष्ट (स्वस्वरूपतया) अपने स्वरूपपनेसे (विजानीयात्) जाने ॥ ३८० ॥

भावार्थ–अनात्मपदार्थोंकी प्रतीतिसे शून्य अविच्छिन्नवृत्तिसे चिंतवन करता हुआ पुरुष इस आत्माको स्पष्टरीतिसे अपना स्वरूपभूत जाने ॥ ३८० ॥

अत्रात्मत्वं दृढीकुर्वन्नहमादिषु संत्यजन् उदासीनतया तेषु तिष्ठेत्स्फुटघटादिवत्॥

अन्वय और पदार्थ–(अत्र) इस स्वरूपमें (आत्मत्वम्) आत्मभावको (दृढीकुर्वन्) दृढ करता हुआ (अहमादिषु) अहंकार आदिकोंमें [आत्मत्वम्] आत्मभावको (सन्त्यजन्) त्यागता हुआ (स्फुटघटादिवत्) प्रत्यक्ष दीखने वाले घट आदिकी समान (तेषु) तिनमें (उदासीनतया) उदासीन भावसे (तिष्ठेत्) स्थित होय

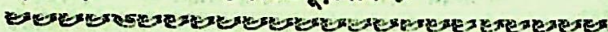
भावार्थ-स्वरूपमें आत्मापनेकी दृढ़ भावना करता हुआ और अहंकार आदिमें आत्मापनेकी भावनाको छोड़ता हुआ मुनि, स्पष्ट दीखते हुए घटपटादि पदार्थों की समान तिनमें उदासीन भावसे स्थित होय ॥३८१॥

विशुद्धमन्तःकरणं स्वरूपं निवेश्य साक्षिण्यवबोधमात्रे । शनैःशनैर्निश्चलतामुपानयन्पूर्णं स्वमेवानुविलोकयेत्ततः

अन्वय और पदार्थ-(विशुद्धम्) शुद्ध हुए (अन्तःकरणम्) अन्तःकरणको (साक्षिणि) साक्षिस्वरूप (अवबोधमात्रे) ज्ञानमात्र (स्वरूपे) स्वरूपमें (निवेश्य) स्थापित करके (शनैःशनैः) धीरे धीरे (निश्चलताम्) निश्चलपनेको (उपानयन्) प्राप्त करता हुआ (ततः) तदनन्तर (पूर्णम्) पूर्ण (स्वम्-एव) अपनेको ही (विलोकयेत्) देखे ॥ ३८२ ॥

भावार्थ-शुद्ध हुए अन्तःकरणको ज्ञान मात्र साक्षिस्वरूपमें स्थापित करके धीरे २ निश्चलतारूप समाधिको प्राप्त करता हुआ तदनन्तर पुरुष अपनेको ही पूर्ण स्वरूप देखे ॥ ३८२ ॥

देहेन्द्रियप्राणमनोऽहमादिभिः स्वाज्ञानक्लृप्तैरखिलैरुपाधिभिः । विमुक्तमात्मानमखण्डरूपं पूर्णं महाकाशमिवावलोकयेत् ॥ ३८३ ॥



अन्वय और पदार्थ–(स्वाज्ञानक्लृप्तैः) अपने अज्ञान से कल्पना किये हुए (देहेन्द्रियप्राणमनोऽहमादिभिः) देह, इन्द्रियें, प्राण, मन और अहंकार आदि (अखिलैः) सम्पूर्ण (उपाधिभिः) उपाधियों करके (मुक्तम्) छूटे हुए (आत्मानम्) अपनेको (महाकाशम्–इव) महाकाशकी समान (अखण्डरूपम्) अखण्डरूप (पूर्णम्) पूर्णस्वरूप (अवलोकयेत्) देखे ॥ ३८३ ॥

भावार्थ–अपने अज्ञानसे कल्पना कियेहुए देह इन्द्रियें प्राण, मन और अहंकार आदि सकल उपाधियोंसे छूटे हुए आत्माको महाकाशकी समान अखंड पूर्णस्वरूप देखे ॥ ३८३ ॥

घटकलशकुसूलसूचिमुख्यैर्गगनमुपाधिशतैर्विमुक्तमेकम् । भवति न विविधं तथैव शुद्धं परमहमादिविमुक्तमेकमेव ॥

अन्वय और पदार्थ-(घटकलशकुसूलसूचिमुख्यैः) घट कलश, कोठी, सुई आदि (उपाधिशतैः) सैंकड़ों उपाधियोंसे (विमुक्तम्) छूटाहुआ (गगनम्) आकाश (एकम्) एक (भवति) होता है (विविधम्) अनेक (न) नहीं (तथैव) तैसे ही (अहमादिविमुक्तम्) अहंकार आदिसे छुटा हुआ (शुद्धम्) शुद्ध आत्मा (एकम्-एव) एकही है ॥ ३८४ ॥

भावार्थ–घट, कलश, कोठी और सुई आदि सैंकड़ों उपाधियोंसे छूटा हुआ आकाश एक ही होता है अनेक

रूप नहीं होता, तैसे ही अहङ्कार आदि उपाधियोंसे छूटा हुआ परमशुद्ध स्वरूप एकही होता है अनेकरूप नहीं होता ॥ ३८४ ॥

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्ता मृषामात्रा उपाधयः । ततःपूर्णं स्वमात्मानं पश्यदेकात्मना स्थितम् ॥ ३८५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्ताः) ब्रह्मासे लेकर खम्भे तक (उपाधयः) उपाधियें (मृषामात्राः) मिथ्यामात्र हैं (ततः) तिससे (स्वम्) अपने (आत्मानम्) आत्माको (पूर्णम्) पूर्ण (एकात्मना) एकस्वरूपसे (पश्येत्) देखे ॥ ३८५ ॥

भावार्थ-ब्रह्मासे लेकर खम्भे पर्यन्त सब उपाधियें मिथ्या ही हैं, इससे आत्माको पूर्ण और एकरूपसे स्थित जानो ॥ ३८५ ॥

यत्र भ्रान्त्या कल्पितं तद्विवेके तत्तन्मात्रं नैव तस्माद्विभिन्नम् । भ्रान्तेर्नाशे भाति दृष्टाहितत्त्वं रज्जुस्तद्वद्विश्वमात्मस्वरूपम् ॥ ३८६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्र) जिसमें (भ्रान्त्या) भ्रांतिकरके (कल्पितम्) कल्पना किया हुआ है(तद्विवेके) उसका ज्ञान होनेपर (तत्) वह (तन्मात्रम्) तत्स्वरूप ही है (तस्मात्) तिससे (विभिन्नम्) पृथक् (नैव)

नहीं है (भ्रान्तेः) भ्रान्तिका (नाशे) नाश होने पर (दृष्टाहितत्त्वम्) देख लिया है सर्पका तत्त्व जिसमें ऐसी (रज्जुः)रज्जु (भाति) भासती है (तद्वत्) तैसेही [भ्रान्तेः-नाशे] भ्रान्तिका नाश होने पर (विश्वम्) विश्व (आत्म-स्वरूपम्) आत्मस्वरूप [भाति] भासता है ॥ ३८६ ॥

भावार्थ-जैसे रज्जुमें कल्पनाकी हुई सर्पकी भ्रांति मिट कर रज्जुका ज्ञान होने पर वह सर्प रज्जुरूप ही होजाता है, तिस रज्जुसे भिन्न नहीं रहता तैसे ही आत्मामें कल्पना किया हुआ, जगत् भ्रांति मिटकर आत्माका विवेक होने पर आत्मस्वरूप ही होजाता है, आत्मासे भिन्न नहीं रहता क्योंकि-जो जिसमें भ्रान्तिसे कल्पना किया हुआ होता है वह उसका ही रूप होता है

स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः स्वयमिन्द्रः स्वयं शिवः । स्वयं विश्वमिदं सर्वं स्व-स्मादन्यन्न किंचन ॥ ३८७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(स्वयम्) आप (ब्रह्मा) ब्रह्मा है (स्वयम्) आप (विष्णुः) विष्णु है (स्वयम्) आप (इन्द्रः)इन्द्र है (स्वयम्) आप (शिवः) शिव है (स्वयम्) आप (इदम् यह (सर्वम्) सब (विश्वम्) विश्व है (स्वस्मात्) अपनेसे (अन्यत्) भिन्न (किंचन) कुछ (न) नहीं है ॥ ३८७ ॥

भावार्थ-आप ही ब्रह्मा है, आप ही विष्णु है,आपही इन्द्र है,आप ही शिव है,अधिक क्या कहैं यह सब विश्व अपना ही स्वरूप है, अपनेसे भिन्न कुछ नहीं है॥३८७॥

अन्तः स्वयं चापि बहिः स्वयं च स्वयं पुरस्तात्स्वयमेव पश्चात् । स्वयं ह्यवाच्यां स्वयमप्युदीच्यां तथोपरिष्टात्स्वयमप्यधस्तात् ॥ ३८८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अन्तः-अपि) भीतर भी (स्वयम्) आप है (च) और (बहिः-अपि) बाहर भी (स्वयम्) आप है (च) और (पुरस्तात्) आगे (स्वयम्) आप है (पश्चात्) पीछे (स्वयम्-एव) आपही है (अवाच्याम्) दक्षिणमें (स्वयम्-हि) आप ही है (उदीच्याम् अपि) उत्तरमें भी (स्वयम्) आप है (तथा) तैसे ही (उपरिष्टात्) ऊपर (अधस्तात्-अपि) नीचे भी (स्वयम्) आप है ॥ ३८८ ॥

भावार्थ-भीतर भी आप ही है, बाहर भी आप ही है, आगे भी आप ही है और पीछे भी आप ही है, दक्षिणमें भी आप ही है और उत्तरमें भी आप ही है, ऊपरभी आप ही है और नीचे भी आप ही है ॥ ३८८ ॥

तरङ्गफेनभ्रमबुद्बुदादि सर्वं स्वरूपेण जलं यथा तथा । चिदेव देहाद्यहमन्तमेतत्सर्वं चिदेवैकरसं विशुद्धम् ॥ ३८९ ॥

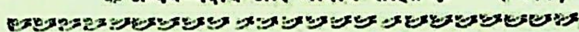
अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (तरंगफेनभ्रमबुद्बुदादि) तरंग, झाग आवर्त्त और बुलबुले आदि (सर्वम्) सब (स्वरूपेण) स्वरूपसे (जलम्) जल है (तथा)

तैसे (देहादि) देहसे लेकर (अहमन्तम्) अहङ्कार-पर्यन्त (एतत्) यह (सर्वम्) सब (चित् एव) चेतन ही है (एकरसम्) एकरस (विशुद्धम्) परमशुद्ध (चित् एव) चैतन ही है ॥ ३८९ ॥

भावार्थ—तरंग, झाग, आवर्त्त और बुदबुद आदि जैसे स्वरूपतः जल ही हैं तैसे ही देहसे लेकर अहंकार पर्यन्त यह सब एक रस और परमशुद्ध चैतन्य ही है ॥

सदेवेदं सर्वं जगदवगतं वाङ्मनसयोः सतोऽन्यन्नास्त्येव प्रकृतिपरसीम्नि स्थितवतः । पृथक् किं मृत्स्नायाः कलशघटकुम्भाद्यवगतं, वदत्येष भ्रान्तस्त्वमहमिति मायामदिरया ॥ ३९० ॥

अन्वय और पदार्थ-(वाङ्मनसयोः) वाणी और मनका (अवगतम्) जानाहुआ (इदम्) यह (सर्वम्) सब (जगत्) संसार (सत्-एव) सत् ही है (प्रकृति-सीम्नि) प्रकृतिसे पर सीमामें (स्थितवतः)स्थितिवाले (सतः) ब्रह्मसे (अन्यत्) अन्य (नैव) नहीं (अस्ति) है (अवगतम्) जानाहुआ (कलशघटकुम्भादि)कलश घट कुंभ आदि (किम्) क्या (मृत्स्नायाः) मट्टीसे (पृथक्) भिन्न है (एषः) यह पुरुष (मायामदिरया) मायारूपी मदिरा करके (भ्रान्तः) भ्रमको प्राप्त हुआ (त्वम्) तू (अहम्) मैं (इति) इस प्रकार (वदति) कहता है ॥ ३९० ॥



भावार्थ-वाणी और मनसे जाननेमें आनेवाला यह जगत् ब्रह्मरूप ही है, प्रकृतिसे पर सीमामें रहनेवाले ब्रह्मसे जुदा नहीं है, घट, कलश और कुम्भ आदि मट्टी के पदार्थ क्या मट्टीसे जुदे होते हैं? किंतु जुदे नहीं होते, जो पुरुष जगत्को ब्रह्मसे जुदा कहता हो उसको समझो कि यह 'तू, मैं' इत्यादि रूपवाली मायारूप मदिराको पीकर भ्रान्त होरहा है ॥ ३९० ॥

क्रियासमभिहारेण यत्र नान्यदिति श्रुतिः । ब्रवीति द्वैतराहित्यं मिथ्याध्यास-निवृत्तये ॥ ३९१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्र) जिस विषयमें (नान्यत्, इति, श्रुतिः) 'नान्यत्' और नहीं है यह श्रुति (क्रिया-समभिहारेण) बारम्बार (मिथ्याध्यासनिवृत्तये) मिथ्या अध्यासकी निवृत्तिके लिये (द्वैतराहित्यम्) द्वैतरहित पनेको (ब्रवीति) कहती है ॥ ३९१ ॥

भावार्थ-संसारको जो अन्यमें अन्यकी भ्रान्ति होरही है तिस मिथ्या अध्यासको दूर करनेके लिये, ब्रह्मके विषयमें वेद बारम्बार कहता है कि-'नान्यत्' और कुछ है ही नहीं, यह सब ब्रह्म ही है ब्रह्ममें द्वैतपना नहीं है॥

आकाशवन्निर्मलनिर्विकल्पनिःसी-मनिष्पन्दननिर्विकारम्। अन्तर्बहिःशून्य-मनन्यमद्वयं स्वयं परं ब्रह्म किमस्ति बोध्यम् ॥ ३९२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आकाशवत्) आकाशकी समान (निर्मलनिर्विकल्पनिःसीमनिष्पन्दननिर्विकारम्) निर्मल, विकल्परहित, सीमारहित, क्रियारहित, निर्विकार (अंतर्बहिःशून्यम्) भीतर बाहरशून्य (अनन्यम्) अन्यपदार्थ रहित (अद्वयम्) अद्वितीय (परब्रह्म) परंब्रह्म (स्वयम्) आप हैं (बोध्यम्) जानने योग्य (किम्) क्या (अस्ति) है

भावार्थ-परब्रह्म कि-जो आकाशकी समान निर्मल, विकल्परहित, असीम, निष्क्रिय, निर्विकार, भीतर बाहर अन्य पदार्थोंसे रहित और अद्वितीय है सो स्वयं मैं हूँ, फिर दूसरा समझनेको ही क्या रहगया ? ॥ ३९२ ॥

वक्तव्यं किमु विद्यतेऽत्र बहुधा ब्रह्मैव जीवः स्वयं । ब्रह्मैतज्जगदाततं नु सकलं ब्रह्माद्वितीयं श्रुतिः। ब्रह्मैवाहमिति प्रबुद्धमतयः संत्यक्तबाह्यः स्फुटं ब्रह्मीभूय वसन्ति संततचिदानन्दात्मनैतद् ध्रुवम् ॥

अन्वय और पदार्थ-(अत्र) इस विषयमें (बहुधा) अधिक(वक्तव्यम्) कहनेयोग्य (किम्) क्या (विद्यते) है (जीवः (स्वयम्) आप (ब्रह्म-एव) ब्रह्म ही है (नु) निश्चय (एतत्) यह(आततम्) विस्तारवाला (सकलम्) सब (जगत्) संसार (ब्रह्म) ब्रह्म है (श्रुतिः) वेद (ब्रह्म) ब्रह्म (अद्वितीयम्) अद्वितीय है [इति आह] ऐसा कहती है (अहम्-एव) मैं ही (ब्रह्म)

ब्रह्म हूँ (इति) इसप्रकार (प्रबुद्धमतयः) परिपक्व बुद्धि वाले (सन्त्यक्तबाह्याः) छोड़ दिये हैं बाहरी पदार्थ जिन्होंने ऐसे पुरुष (स्फुटम्) प्रकट रूपसे (ब्रह्मीभूय) ब्रह्मस्वरूप होकर (सन्ततचिदानन्दात्मना) निरन्तर चिदानन्दस्वरूप में (वसन्ति) रहते हैं (एतत्) यह (ध्रुवम्) निश्चित है ॥ ३६३ ॥

भावार्थ-इस विषयमें अधिक क्या कहें ? जीव स्वयं ब्रह्म है, यह सब फैलाव वाला जगत् भी ब्रह्म ही है, क्योंकि-ब्रह्म अद्वितीय है, ऐसा श्रुति कहती है मैं ही ब्रह्म हूँ, इस प्रकारकी परिपक्व बुद्धिवाले और बाहरी पदार्थोंको छोड़ने वाले पुरुष स्फुटरूपसे ब्रह्म होकर निःसन्देह निरन्तर चिदानन्दरूपमें रहते हैं ॥ ३६३ ॥

जहि मलमयकोशेऽहंधियोत्थापिताशां प्रसभमनिलकल्पे लिंगदेहेऽपि पश्चात्। निगमगदितकीर्तिं नित्यमानन्द मूर्तिं स्वयमति परिचीय ब्रह्मरूपेण तिष्ठ।

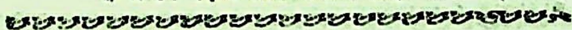
अन्वय और पदार्थ- (मलमयकोशे) मलमय स्थूल शरीरमें (अनिलकल्पे) वायुसमान (लिंगदेहे-अपि) लिंगशरीरमें भी (अहन्धियोत्थापिताशाम्) अहम् बुद्धि करके उत्पन्न कीहुई आशाको (प्रसभम्) बलात्कारसे (जहि) त्याग दे (पश्चात्) पीछे (निगमगदितकीर्तिम्) शास्त्रमें गान कीहुई कीर्तिवाले (नित्यम्) नित्य (आनन्दमूर्तिम्) आनन्दस्वरूप (स्वयम्) अपनेको (अति-

परिचीय) सम्यक् पहिचान कर (ब्रह्मरूपेण) ब्रह्मस्वरूपसे (तिष्ठ) स्थित हो ॥ ३६४ ॥

भावार्थ—इस मलमय स्थूल देहमें और वायुरूप लिंग शरीरमें भी अहंबुद्धिकी उत्पन्न कीहुई आशाको छोड़दे ऐसा करनेके पीछे, परब्रह्म कि—जिसकी कीर्त्ति वेदमें गाई गई है और जो नित्य तथा आनन्दघन है, वह मैं ही हूँ, ऐसा पक्की बुद्धिसे समझकर ब्रह्मरूपमें स्थित हो ॥

शवाकारं यावद्भजति मनुजस्तावदशुचिः। परेभ्यः स्यात्क्लेशो जननमरणव्याधिनिलयः। यदात्मानं शुद्धं कलयति शिवाकारमचलं, तदा तेभ्यो मुक्तो भवति हि तदाह श्रुतिरपि ॥ ३६५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(मनुजः) मनुष्य(यावत्)जबतक(शवाकारम्) मृतकाकार शरीरको (भजति) भजता है (तावत्) तबतक (अशुचिः) अपवित्र है (परेभ्यः) दूसरोंसे (क्लेशः) क्लेश (स्यात्) होगा (जननमरणव्याधिनिलयः) जन्म मरण और व्याधियोंका स्थानरूप है (यदा) जब (शुद्धम्) शुद्ध (अचलम्) अचल (शिवाकारम्) शिवस्वरूप (आत्मानम्) आत्माको (कलयति) समझता है (तदा) तब (हि) निश्चय (तेभ्यः) तिनसे (मुक्तः) मुक्त (भवति) होता है (श्रुतिः-अपि) श्रुति भी (तत्) वह ही (आह) कहती है ॥ ३६५ ॥

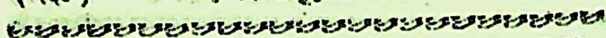

भावार्थ-जबतक मनुष्य इस शव समान शरीरको ही अपना मानता है और इसकी ही सम्हालमें लगा रहता है तबतक यह अपवित्र है, औरोंसे क्लेश पाता है तथा जन्म मरण और रोगोंका घर है परन्तु जब इस शरीरमें विद्यमान शुद्ध अविचल कल्याणस्वरूप आत्माको जान लेता है तब यह उन जन्म मरणादिके सकल दुःखोंसे छूट जाता है ऐसा ही श्रुति भी कहती है ३६५

स्वात्मन्यारोपिताशेषाभासवस्तुनिरासतः । स्वयमेव परं ब्रह्म पूर्णमद्वयमक्रियम् ॥ ३६६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(स्वात्मनि) अपने स्वरूपमें (आरोपिताशेषाभासवस्तुनिरासतः) आरोपित किये सकल आभासरूप वस्तुओंके निराससे (स्वयम् एव) आप ही (पूर्णम्) पूर्ण (अद्वयम्) अद्वितीय (अक्रियम्) निष्क्रय (परंब्रह्म) परब्रह्म है ॥ ३६६ ॥

भावार्थ—अपने स्वरूपमें आरोपण कीहुई सकल आभासरूप वस्तुओंका निराकरण करने पर स्वयं ही पूर्ण अद्वितीय, निष्क्रिय परब्रह्म है ॥ ३६६ ॥

समाहितायां सति चित्तवृत्तौ परात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पे। न दृश्यते कश्चिदयं विकल्पः प्रजल्पमात्रः परिशिष्यते ततः ॥ ३६७ ॥



अन्वय और पदार्थ-(परात्मनि) परमात्मा (निर्विकल्पे) निर्विकल्प (ब्रह्मणि) ब्रह्ममें (चित्तवृत्तौ) चित्तवृत्तिके (समाहितायां, सति) समाहित होने पर (अयम्) यह (कश्चित्) कोई (विकल्पः) विकल्प (न) नहीं (दृश्यते) दीखता है (ततः) तदनन्तर (प्रजल्पमात्रः) कथनमात्र (परिशिष्यते) शेष रहता है ॥

भावार्थ-निर्विकल्प परमात्मा परब्रह्ममें चित्तकी वृत्ति स्थिर होनेपर संसाररूप विकल्प किञ्चिन्मात्र भी नहीं दीखता है, केवल कहने मात्रको ही शेष रहजाता है।

असत्कल्पो विकल्पोऽयं विश्वमित्येकवस्तुनि । निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुतः ॥ ३९८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एकवस्तुनि) एक वस्तुमें (विश्वम् इति) विश्व यह (विकल्पः) विकल्प (असत्कल्पः) मिथ्याभूत है (निर्विकारे) निर्विकार (निराकारे) निराकार (निर्विशेष) विशेष रहितमें (भिदा) भेद (कुतः) कहाँ ॥ ३९८ ।

भावार्थ--एक परवस्तु ही सत्य है,अतः उसमें जगत्रूप यह विकल्प मिथ्या है, परवस्तु ब्रह्म, जब कि-निर्विकार निराकार और निर्विशेष है तो उसमें भेद कहाँसे आया ? ॥ ३९८ ॥

द्रष्टृदर्शनदृश्यादिभावशून्यैकवस्तुनि । निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुतः

अन्वय और पदार्थ--(निर्विकारे) विकारशून्य (निराकारे) निराकार (निर्विशेषे) निर्विशेष (द्रष्टृदर्शनदृश्यादिभावशून्यैकवस्तुनि) द्रष्टा-दर्शन-दृश्य आदिपनेसे रहित एक वस्तुमें (भिदा) भेद (कुतः) कहां ॥ ३९९ ॥

भावार्थ--विकाररहित, निराकार, निर्विशेष और जिसमें द्रष्टापना दर्शनपना वा दृश्यपना है ही नहीं ऐसे अद्वितीय पदार्थमें भेद आया ही कहाँसे ? ॥ ३९९ ॥

कल्पार्णव इवात्यन्तपरिपूर्णैकवस्तुनि । निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुतः

अन्वय और पदार्थ--(कल्पार्णवे इव) प्रलयसागर की समान (अत्यन्तपूर्णैकवस्तुनि) अत्यन्तपूर्ण एकवस्तु (निर्विकारे) निर्विकार (निराकारे) निराकार (निर्विशेषे) निर्विशेषमें (भिदा) भेद (कुतः) कहाँ ॥ ४००

भावार्थ--प्रलयकालके समुद्रकी समान अत्यन्त परिपूर्ण, निर्विकार, निराकार, निर्विशेष एकवस्तुमें भेद कहाँसे आया ? ॥४००॥

तेजसीव तमो यत्र प्रलीनं भ्रान्तिकारणम् । अद्वितीये परे तत्त्वे निर्विशेषे भिदा कुतः ॥ ४०१ ॥

अन्वय और पदार्थ--(तमः) अन्धकार (तेजसि इव) तेजमें जैसे (भ्रान्तिकारणम्) भ्रान्तिका कारण (यत्र) जिसमें (प्रलीनम्) लीन होना है (अद्वितीये)

अद्वितीय (परे तत्त्वे) परमतत्त्व (निर्विशेषे) निर्विशेष में (भिदा) भेद (कुतः) कहाँ ॥ ४०१ ॥

भावार्थ-जैसे अन्धकार तेजमें विलीन होजाता है तैसे ही भ्रान्तिका कारण जिसमें समाजाता है ऐसे निर्विशेष अद्वितीय परमतत्त्वमें भेद कहाँसे आया ?

एकात्मके परे तत्त्वे भेदवार्ता कथं वसेत् । सुषुप्तौ सुखमात्रायां भेदः केनावलोकितः ॥ ४०२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एकात्मके) एकस्वरूप (परे तत्त्वे) परमतत्त्वमें (भेदवार्ता) भेदकी बात (कथम्) कैसे (वसेत्) बसे (सुखमात्रायाम्) सुखकी मात्रारूप (सुषुप्तौ) सुषुप्तिमें (भेदः) भेद (केन) किसने (अवलोकितः) देखा है ॥ ४०२ ॥

भावार्थ-परतत्त्व कि-जो एकरूप है उसमें भेद कहने मात्रको भी कैसे रहसकता है? सुखरूप सुषुप्ति अवस्था में क्या किसीने भेद देखा है ? ॥ ४०२ ॥

न ह्यस्ति विश्वं परतत्त्वबोधात्सदात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पे कालत्रये नाप्यहिरीक्षितो गुणे नह्यम्बुबिन्दुर्मृगतृष्णिकायाम् ॥ ४०३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(परतत्त्वबोधात्) परतत्त्वके ज्ञानसे (निर्विकल्पे) निर्विकल्प (सदात्मनि) सत्स्वरूप

(ब्रह्मणि) ब्रह्ममें (विश्वम्) विश्व (नहि) नहीं (अस्ति) है (कालत्रये अपि) त्रिकालमें भी (गुणे) रज्जुमें (अहिः) सर्प (मृगतृष्णिकायाम्) मृगतृष्णामें (नद्यम्बुबिन्दुः-अपि) नदीके जलकी बूँद भी (न) नहीं (ईक्षितः) देखी है ॥ ४०३ ॥

भावार्थ—जब यथार्थ तत्त्वका ज्ञान होजाता है तब निर्विकल्प और सद्रूप परब्रह्ममें जगत् होता ही नहीं, रज्जुमें सर्प और मृगतृष्णामें नदीके जलका एक बिन्दु भी तीनों कालमें देखनेमें नहीं आता ॥ ४०३ ॥

मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः। इति ब्रूते श्रुतिः साक्षात्सुषुप्तावनुभूयते ४०४

अन्वय और पदार्थ-(इदम्) यह (द्वैतम्) द्वैत (मायामात्रम्) मायामात्र है (परमार्थतः) यथार्थरूपसे (अद्वैतम्) अद्वैत है (इति) ऐसा (श्रुतिः) श्रुति (साक्षात्) स्पष्ट (ब्रूते) कहती है (सुषुप्तौ) सुषुप्तिमें (अनुभूयते) अनुभव किया जाता है ॥ ४०४ ॥

भावार्थ—यह द्वैत मायामात्र है, अद्वैत वास्तविक है, ऐसा श्रुति स्पष्ट कहती है और इस बातका सुषुप्तिमें स्पष्ट अनुभव भी होता है ॥ ४०४ ॥

अनन्यत्वमधिष्ठानादारोप्यस्य निरीक्षितम्। पण्डितै रज्जुसर्पादौ विकल्पो भ्रान्तिजीवनः ॥ ४०५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आरोप्यस्य) आरोप करनेके पदार्थका (अधिष्ठानात्) अधिष्ठानसे (अनन्यत्वम्) अभेद (निरीक्षितम्) देखा है (पण्डितैः) पण्डितोंने (रज्जुसर्पादौ) रज्जु सर्प आदिमें (भ्रान्तिजीवनः) भ्रान्तिसे जीवित रहनेवाला (विकल्पः) विकल्प [निरीक्षितः] देखा है ॥ ४०५ ॥

भावार्थ-आरोपित पदार्थ अधिष्ठानसे भिन्न नहीं होता, ऐसा पण्डितोंने रज्जु सर्प आदि दृष्टान्तोंमें स्पष्ट देखा है, इसकारण जो भेद दीखता है उसका मूल भ्रान्ति ही है ॥ ४०५ ॥

चित्तमूलो विकल्पोऽयं चित्ताभावे न कश्चन । अतश्चित्तं समाधेहि प्रत्यग्रूपे परात्मनि ॥ ४०६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अयम्) यह (विकल्पः) विकल्प (चित्तमूलः) चित्तमूलक है (चित्ताभावे) चित्तके अभावमें (कश्चन) कोई (न) नहीं है (अतः) इस कारण (प्रत्यग्रूपे) व्यापकरूप (परात्मनि) परमात्मा में (चित्तम्) चित्तको (समाधेहि) समाहित कर ॥

भावार्थ-इस संसाररूप विकल्पका मूलकारण चित्त है, चित्त न हो तो कोई विकल्प है ही नहीं इस कारण व्यापकरूप परमात्मामें चित्तका लय कर ॥ ४०६ ॥

किमपि सततबोधं केवलानन्दरूपं, निरुपममतिवेलं नित्यमुक्तं निरीहम् ।

निरवधि गगनाभं निष्कलं निर्विकल्पं, हृदि कलयति विद्वान्ब्रह्म पूर्णं समाधौ ॥

अन्वय और पदार्थ--(विद्वान्) विवेकी (समाधौ) समाधिके समय (हृदि) हृदयमें (नित्यबोधम्) नित्य-ज्ञानरूप (केवलानन्दरूपम्) केवल आनन्दस्वरूप (अतिवेलम्) अत्यन्त (निरुपमम्) उपमारहित (नित्य-मुक्तम्) नित्यमुक्त (निरीहम्) निश्चेष्ट (निर-वधि) सीमारहित (गगनाभम्-निष्कलम्) आकाश की समान अविभक्त (निर्विकल्पम्) विकल्परहित (किमपि) अनिर्वचनीय (पूर्णम्) पूर्ण (ब्रह्म) ब्रह्मको (कलयति) अनुभव करता है ॥ ४०७ ॥

भावार्थ-विवेकी पुरुष समाधिकालमें अपने हृदयमें नित्य ज्ञानरूप, केवल आनन्दरूप, सब प्रकारसे उपमा-रहित, नित्यमुक्त, क्रियारहित, निःसीम, आकाशकी समान अंशरहित, निर्विकल्प और वचनसे न कहा जासके ऐसे पूर्ण ब्रह्मका अनुभव करता है ॥ ४०७ ॥

प्रकृतिविकृतिशून्यं भावनातीतभावं, समरसमसमानं मानसंबन्धदूरम् । निग-मवचनसिद्धं नित्यमस्मत्प्रसिद्धं हृदि कलयति विद्वान्ब्रह्म पूर्णं समाधौ ४०८

अन्वय और पदार्थ-(विद्वान्) विवेकी (समाधौ) समाधिकालमें (हृदि) हृदयके विषैं (प्रकृतिविकृति-

शून्यम्) कार्यकारणभावसे रहित (भावनातीतभावम्) विचारसे बाहर है स्वरूप जिसका ऐसे (समरसम्) अखण्डरसरूप (असमानम्) अनुपम (मानसम्बन्धदूरम्) अभिमानके सम्बन्धसे दूर (निगमवचनसिद्धम्) वेदवाक्योंसे सिद्ध (नित्यम्) नित्य (अस्मत्प्रसिद्धम्) अहम् शब्दसे प्रसिद्ध (पूर्णम्-ब्रह्म) पूर्ण ब्रह्मको (कलयति) अनुभव करता है ॥ ४०८ ॥

भावार्थ–विवेकी पुरुष समाधिकालमें अपने हृदयके विषै कार्यकारणभावसे रहित, विचारसे बाहर, अनुपम, अभिमानके सम्बन्धसे दूर, वेदवचनोंसे सिद्ध और 'मैं' इस शब्दसे प्रसिद्ध पूर्ण ब्रह्मका अनुभव करता है

अजरममरमस्ताभाववस्तुस्वरूपं स्तिमितसलिलराशिप्रख्यमाख्याविहीनम् ।
शमितगुणविकारं शाश्वतं शान्तमेकं हृदि कलयति विद्वान्ब्रह्म पूर्णं समाधौ॥

अन्वय और पदार्थ– (विद्वान्) विवेकी (समाधौ) समाधिकालमें (हृदि) हृदयके विषै (अजरम्) जरारहित (अमरम्) मरणरहित (अस्ताभाववस्तुस्वरूपम्) भाववस्तुरूप (स्तिमितसलिलराशिप्रख्यम्) निश्चलसमुद्रसमान (आख्याविहीनम्) नामरहित (शमितगुणविकारम्) जिनमें गुणोंका विकार शान्त होगया है ऐसे (शाश्वतम्) अविचल (शान्तम्) शान्त (एकम्)



अद्वितीय (पूर्णं ब्रह्म) पूर्ण ब्रह्मको (कलयति) अनुभव करता है ॥ ४०९ ॥

भावार्थ–विवेकी पुरुष समाधिकालमें अपने हृदयके विषैं अजर, अमर, सर्वदा भावरूस्तुरूप, निश्चलसमुद्र समान नामरहित, गुणोंके विकारसे न हुएहुए, अविचल शान्त और अद्वितीय पूर्ण परब्रह्मका अनुभव करता है।

समाहितान्तःकरणः स्वरूपे विलोकयात्मानमखण्डवैभवम् । विच्छिन्धि बन्धं भवगन्धगन्धितं यत्नेन पुंस्त्वं सफलीकुरुष्व ॥ ४१० ॥

अन्वय और पदार्थ–(स्वरूपे) स्वरूपमें (समाहितान्तःकरणः) अन्तःकरणको स्थिर करताहुआ (अखण्डवैभवम्) पूर्ण वैभववाले (आत्मानम्) आत्माको (विलोकय) देख (भवगन्धगन्धितम्) संसारकी गन्धसे बसे हुए (बन्धम्) बन्धनको (विच्छिन्धि) काट (यत्नेन) यत्न करके (पुंस्त्वम्) पुरुषत्वको (सफलीकुरुष्व) सफल कर ॥ ४१० ॥

भावार्थ–तू अन्तःकरणको स्वरूपमें एकाग्र करके अखण्ड वैभववाले आत्माका दर्शनकर संसारकी गन्धसे बसे हुए बन्धनको काटडाल और यत्नके साथ पुरुषपनेको सफल कर ॥ ४१० ॥

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सच्चिदानन्द-

मद्वयम् । भावयात्मानमात्मस्थं न भूयः कल्पसेऽध्वने ॥ ४११ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सर्वोपाधिनिर्मुक्तम्) सकल उपाधियोंसे छूटेहुए(सच्चिदानन्दम्) सच्चिदानन्द (अद्वयम्) अद्वितीय (आत्मानम्) अपनेको (आत्मस्थम्) अपनेमें स्थित (भावय) विचार (पुनः) फिर (अध्वने) मार्गके लिये (न) नहीं (कल्पसे) सम्पन्न होगा ॥ ४११ ॥

भावार्थ-सकल उपाधियोंसे रहित, सच्चिदानन्द रूप और अद्वितीय आत्माको अपना रूप विचार तो फिर संसारमार्गमें नहीं घूमना पड़ेगा ॥ ४११ ॥

छायेव पुंसः परिदृश्यमानमाभासरूपेण फलानुभूत्या । शरीरमाराच्छववन्निरस्तं पुनर्न सन्धत्त इदं महात्मा ॥

अन्वय और पदार्थ-(महात्मा) महात्मा (आभासरूपेण) आभासरूपसे (फलानुभूत्या) फलभोगवाने करके (पुंसः) पुरुषकी (छाया-इव) छायाकी समान (परिदृश्यमानम्) दीखते हुए (आरात्) समीपतासे (शववत्) मृतककी समान (निरस्तम्) दूर करे (इदम्) इस शरीरको (पुनः) फिर (न) नहीं (सन्धत्ते) सन्धान करता है

भावार्थ-आभासरूपसे फल भोगनेके निमित्त पुरुषकी छायाकी समान पीछे दीखनेवाले और विचार दृष्टिसे मृतककी समान दूर फेंकेहुए इस शरीरका महात्मा पुरुष पीछे अनुसन्धान नहीं करते ॥ ४१२ ॥

सततविमलबोधानन्दरूपं समेत्य त्यज जडमलरूपोपाधिमेतं सुदूरे। अथ पुनरपि नैष स्मर्यतां वान्तवस्तु स्मरण-विषयभूतं कल्पते कुत्सनाय ॥ ४१३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सततविमलबोधानन्दरूपम्) विस्तीर्ण निर्मलज्ञानरूप और आनन्दरूप आत्माको (समेत्य) प्राप्त होकर (जडमलरूपोपाधिम्) जड़ और मलमय उपाधिरूप (एतम्) इसको (सुदूरे) अतिदूर (त्यज) छोड़ (अथ) और (पुनः-अपि) फिरभी (एषः) यह (न) नहीं (स्मर्यताम्) स्मरण कियाजाय (वान्त-वस्तु) वमनकी हुई वस्तु (स्मरणविषयभूतम्) स्मरणका विषय हुआ (कुत्सनाय) निन्दाके अर्थ (कल्पते) कल्पित होता है ॥ ४१३ ॥

भावार्थ-विस्तीर्ण और निर्मल ज्ञानरूप तथा आनन्द-रूप आत्माको पाकर इस जड़ और मलरूप उपाधि (देह) को दूरसे त्यागदे और फिर कभी इसका स्मरण भी मत करे, क्योंकि वमनकरी हुई वस्तुके स्मरणसे ग्लानि और तिरस्कार ही उत्पन्न होता है ॥ ४१३ ॥

समूलमेतत्परिदह्य वन्हौ सदात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पे। ततः स्वयं नित्य-विशुद्धबोधानन्दात्मना तिष्ठति विद्वरिष्ठः

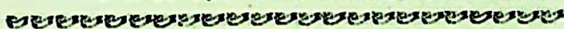
अन्वय और पदार्थ-(निर्विकल्पे)निर्विकल्प (सदात्मनि) सत्स्वरूप (ब्रह्मणि) ब्रह्मरूप (वन्हौ) अग्निमें (एतत्) इसको (समूलम्) मूलसहित (परिदह्य) भस्म करके (ततः) तदनन्तर (विद्वरिष्ठः) विद्वानोंमें श्रेष्ठ (स्वयम्) आप (नित्यविशुद्धबोधानन्दात्मना) नित्य, शुद्ध ज्ञान और आनन्दस्वरूप करके (तिष्ठति) स्थित होता है

भावार्थ-निर्विकल्प परमसत्य ब्रह्मरूप अग्निमें इस उपाधि जड़मूलसे भस्म करके तदनन्तर उत्तम विद्वान् स्वयं नित्य, शुद्ध, बोध और आत्मारूप रहता है।४१४।

प्रारब्धसूत्रग्रथितं शरीरं प्रयातु वा तिष्ठतु गोरिवास्रृक् । न तत्पुनः पश्यति तत्त्ववेत्तानन्दात्मनि ब्रह्मणि लीनवृत्तिः॥

अन्वय और पदार्थ-(प्रारब्धसूत्रग्रथितम्) प्रारब्ध-रूप डोरेसे गुथाहुआ (शरीरम्) शरीर (प्रयातु) चला जाय (वा) या (तिष्ठतु) स्थित रहे (आनन्दात्मनि) आनन्दरूप (ब्रह्मणि) ब्रह्ममें (लीनवृत्तिः) लीनहुई है वृत्ति जिसकी ऐसा (तत्त्ववेत्ता) तत्त्वज्ञानी (गौः) गौके (असृक् इव) रुधिरकी समान (पुनः) फिर (तत्) उसको (न) नहीं (पश्यति) देखता है ॥ ४१५ ॥

भावार्थ-प्रारब्धरूपी रस्सीमें बँधाहुआ यह शरीर चलाजाय चाहे रहे, परन्तु आनन्दस्वरूप ब्रह्ममें लीन हुआ तत्त्वज्ञानी पुरुष फिर गौके रुधिरकी समान उस शरीरकी ओरको नहीं देखता ॥ ४१५ ॥



अखण्डानन्दमात्मानं विज्ञाय स्वस्व-रूपतः । किमिच्छन्कस्य वा हेतोर्देहं पुष्णाति तत्त्ववित् ॥ ४१६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अखण्डानन्दम्)अखण्ड आनन्द-रूप (आत्मानम्) आत्माको (स्वस्वरूपतः) अपना स्वरूप (विज्ञाय) जानकर (तत्त्ववित्) तत्त्वज्ञानी (किम्) क्या (इच्छन्) इच्छा करता हुआ (वा) या (कस्य) किस (हेतोः) हेतुसे (देहम्) देहको (पुष्णाति) पुष्ट करता है ॥ ४१६ ॥

भावार्थ-अखण्ड आनन्दरूप आत्माको अपना स्व-रूप जान लेने पर तत्त्वज्ञानी पुरुष किस इच्छासे और किस कारणसे देहका पोषण करे ? ४१६

संसिद्धस्य फलं त्वेतज्जीवन्मुक्तस्य योगिनः । बहिरन्तःसदानन्दरसास्वादन-मात्मनि ॥ ४१७ ॥

अन्वय और पदार्थ (सदा) सदा (आत्मनि) चित्त में (बहिः) बाहर (अन्तः) भीतर (आनन्दरसास्वाद-नम्) ब्रह्मानन्दरसका स्वादलेना (एतत्-तु) यह ही (संसिद्धस्य) सम्यक् सिद्ध हुए (जीवन्मुक्तस्य) जीवन्मुक्त (योगिनः) योगीका (फलम्) फल है ॥ ४१७ ॥

भावार्थ-सम्यक् प्रकार सिद्धहुए जीवन्मुक्त योगीको यही बड़े भारी फलकी प्राप्ति है, कि-वह अपने चित्तमें भीतर बाहर ब्रह्मानन्दरसको पिया करे ॥ ४१७ ॥

वैराग्यस्य फलं बोधो बोधस्योपरतिः फलम् । स्वानन्दानुभवाच्छान्तिरेषैवोपरतेः फलम् ॥ ४१८ ॥

अन्वय और पदार्थ (बोधः) बोध (वैराग्यस्य) वैराग्य का (फलम्) फल है (उपरतिः) उपराम (बोधस्य) बोधका (फलम्) फल है (स्वानन्दानुभवात्) निजानन्दके अनुभवसे (शान्तिः) शान्ति होना (एषा–एव) यह ही (उपरतेः) उपरामका (फलम्) फल है

भावार्थ–वैराग्यका फल बोध है बोधका फल उपराम है और उपरामका फल अपने स्वरूपके आनन्दका अनुभव होनेसे परमशान्ति प्राप्त होना है ॥ ४१८ ॥

यद्युत्तरोत्तराभावः पूर्वं पूर्वं तु निष्फलम् । निवृत्तिः परमा तृप्तिरानन्दोऽनुपमः स्वतः ॥४१९॥ दृष्टदुःखेष्वनुद्वेगो विद्यायाः प्रस्तुतं फलम् । यत्कृतं भ्रान्तिवेलायां नानाकर्मजुगुप्सितम् । पश्चान्नरो विवेकेन तत्कथं कर्तुमर्हति ॥ २० ॥

अन्वय और पदार्थ-(यदि) जो (उत्तरोत्तराभावः) अगले अगलेका अभाव है (तु) तो (पूर्वं पूर्वम्) पहिला २ (निष्फलम्) निष्फल है (निवृत्तिः) निवृत्ति (परमा) परम (तृप्तिः) तृप्ति (स्वतः) अकृत्रिम (अनुपमः)

अनुपम (आनन्दः) आनन्द (दृष्टदुःखेषु) संसारके दुःखोंमें (अनुद्वेगः) व्याकुल न होना (विद्यायाः) विद्याका (प्रस्तुतम्) प्रत्यक्ष (फलम्) फल है (भ्रान्तिवेलायाम्) भ्रान्तिके समयमें (यत्) जो (जुगुप्सितम्) निन्दित (नानाकर्म) अनेकों प्रकारका कर्म (कृतम्) किया है (पश्चात्) पीछे (विवेकेन) विवेकके द्वारा (नरः) मनुष्य (तत्) उसको (कर्तुम्) करनेको (कथम्) कैसे (अर्हति) योग्य होता है। ४१९। ४२०।

भावार्थ-यदि शान्ति न हो तो उपराम व्यर्थ है, उपराम न हो तो बोध वृथा है और बोध न हो तो वैराग्य निष्फल है, निवृत्ति, परमतृप्ति, स्वतः सिद्ध अनुपम आनंद और संसारके दुःखोंसे उद्विग्न न होना यह ब्रह्मविद्याके फलरूप हैं, भ्रान्तिके समयमें यदि कोई अनेकोंप्रकारके निन्दितकर्म बनगए हों तो वह विवेक होनेके अनन्तर तत्त्वज्ञानीसे किसी प्रकार नहीं बनसकते॥४१९॥४२०॥

विद्याफलं स्यादसतो निवृत्तिः प्रवृत्तिरज्ञानफलं तदीक्षितम् । तज्ज्ञाज्ञयोर्यन्मृगतृष्णिकादौ नो चेद्विदां दृष्टफलं किमस्मात् ॥ ४२१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(असतः) असत्से (निवृत्तिः) निवृत्त होना (विद्याफलम्) विद्याका फल (प्रवृत्तिः) प्रवृत्त होना (अज्ञानफलम्) अज्ञानका फल (स्यात्) होगा (तत्) वह (ज्ञाज्ञयोः) ज्ञानी और अज्ञानीका (मृग-

तृष्णिकादौ) मृगतृष्णा आदिमें (ईक्षितम्) देखा है (नोचेत्) नहीं तो (विदाम्) विद्वानोंको (अस्मात्) इससे (दृष्टफलम्) दीखनेवाला फल (किम्) क्या हुआ।

भावार्थ–जाननेवाला मनुष्य मृगतृष्णा आदिमें प्रवृत्त नहीं होता है और अज्ञानी मनुष्य उसमें प्रवृत्ति करता है, इस दृष्टान्तसे समझना चाहिये कि–मिथ्या पदार्थसे निवृत्ति होय यह विद्याका फल है और असत् पदार्थमें प्रवृत्ति होय यह अविद्याका फल है, यदि ऐसा न हो तो विद्वानोंमें ज्ञानसे होनेवाला दीखताहुआ और फल ही क्या है ? ॥ ४२१ ॥

अज्ञानहृदयग्रन्थेर्विनाशो यद्यशेषतः। अनिच्छोर्विषयः किं नु प्रवृत्तेः कारणं स्वतः ॥ २२ ॥

अन्वय और पदार्थ–(यदि) जो (अशेषतः) पूर्णरूपसे (अज्ञानहृदयग्रन्थेः) अज्ञानरूपी हृदयकी गाँठका (विनाशः) विनाश होय [तर्हि] तो (किंनु) क्या (विषयः) विषय (अनिच्छोः) इच्छा न करनेवालेकी (प्रवृत्तेः) प्रवृत्तिका (कारणम्) कारण (स्वतः) स्वयं होगा।

भावार्थ–यदि सब प्रकारसे अज्ञानरूपी हृदयकी गाँठका नाश होजाय तो फिर क्या विषय, इच्छा न करनेवाले तत्त्वज्ञानीकी प्रवृत्तिका स्वयं कारण होसकता है ? कदापि नहीं होसकता ॥ ४२२ ॥

वासनानुदयो भोग्ये वैराग्यस्य तदा-

वधिः । अहंभावोदयाभावो बोधस्य परवधिः । लीनवृत्तेरनुत्पत्तिर्मर्यादोपरतेस्तु सा ॥ २३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(भोग्ये) भोगके पदार्थोंमें (वासनानुदयः) वासनाका उदय न हो (तदा) तब (वैराग्यस्य) वैराग्यकी (अवधिः) सीमा है (अहम्भावोदयाभावः) अहन्ताके उदयका अभाव (बोधस्य) बोधकी (परमावधिः) परम सीमा है (लीनवृत्तेः) लीनहुई वृत्तिका (अनुत्पत्ति) फिर उत्पन्न न होना (सा तु) वह तो (उपरतेः) उपरतिकी (मर्यादा) सीमा है ॥ ४२३ ॥

भावार्थ-भोग्यपदार्थोंमें वासना उत्पन्न न हो यह वैराग्यकी पराकाष्ठा है, अहंभावका उदय न हुआ करे यह बोधकी पराकाष्ठा है और लीन हुई वृत्ति फिर उत्पन्न न हो, यह उपरामकी चरम सीमा है ॥ ४२३ ॥

ब्रह्माकारतया सदा स्थिततया निर्मुक्तबाह्यार्थधीरन्यावेदितभोग्यभोगकलनो निद्रालुवद्बालवत् । स्वप्नालोकितलोकवज्जगदिदं पश्यन् क्वचिल्लब्धधीरास्ते कश्चिदनन्तपुण्यफलभुग्धन्यः स मान्यो भुवि ॥ ४२३ ॥

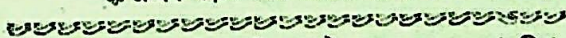
अन्वय और पदार्थ-(सदा) सर्वदा (ब्रह्माकारतया) ब्रह्मस्वरूपपनेसे (स्थिततया) स्थित होनेके कारण निद्रा-

लुवत्) सोते हुए मनुष्यकी समान (निर्मुक्तबाह्यार्थधीः) छूटगई है बाहरी पदार्थोंसे बुद्धि जिसकी ऐसा (बालवत्) बालककी समान (अन्यावेदितभोग्यभोगकलनः) दूसरेके अर्पण कियेहुए भोग्यपदार्थोंको भोगनेवाला (इदम्) इस (जगत्) संसारको (स्वप्नालोकितलोकवत्) स्वप्नमें देखेहुए लोककी समान (पश्यन्) देखता हुआ (कश्चित्) कोई (लब्धधीः) स्थितप्रज्ञ (क्वचित्) कहीं (आस्ते) रहता है (अनन्तपुण्यफलभुक्) अनन्त पुण्यफलोंको भोगने वाला (सः) वह (धन्यः) धन्य है (भुवि) भूलोकमें (मान्यः) मान्य है ॥ ४२४ ॥

भावार्थ-सर्वदा ब्रह्माकारपनेसे रहनेके कारण जिसका विषयोंका अनुसन्धान सोये हुए मनुष्यकी समान छूट गया हो, जो दूसरोंके अर्पण कियेहुए भोग्यपदार्थोंको बालककी समान भोगता हो और इस जगत्को स्वप्न में दीखनेवाले लोकोंकी समान देखता हो ऐसा कोई स्थिरबुद्धि योगी कहीं किसी ही स्थानमें रहता है, उस योगीको ही अनन्त पुण्योंके फलोंको भोगनेवाला, धन्य भूमण्डलभरका मान्य समझो ॥ ४२४ ॥

स्थितप्रज्ञो यतिरयं यः सदानन्दमश्नुते । ब्रह्मण्येव विलीनात्मा निर्विकारो विनिष्क्रियः ॥ २५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(निर्विकारः)निर्विकार (विनिष्क्रियः) क्रियारहित (ब्रह्मणि-एव) ब्रह्ममें ही (लीनात्मा) लीन चित्त वाला (यः) जो (सदा) सर्वदा (आनन्दम्)



आनन्दको (अश्नुते) भोगता है (अयम्) यह (यतिः) योगी (स्थितप्रज्ञः) स्थितप्रज्ञ है ॥ २५ ॥

भावार्थ–निर्विकार, क्रियारहित और ब्रह्ममें ही लीन-वृत्तिवाला जो योगी सदा आनन्दमें रहता है उसको निश्चयबुद्धिवाला स्थितप्रज्ञ जानो ॥ ४२५ ॥

ब्रह्मात्मनोः शोधितयोरेकभावाव-गाहिनी । निर्विकल्पा च चिन्मात्रा वृत्तिः प्रज्ञेति कथ्यते ॥ २६ ॥

अन्वय और पदार्थ–(शोधितयोः) उपाधिरहित (ब्रह्मात्मनोः) ब्रह्म तथा आत्माकी (एकभावावगाहिनी) एकतामें पहुँचीहुई (निर्विकल्पा) विकल्परहित (चिन्मात्रा) ब्रह्माकार (वृत्तिः) वृत्ति (प्रज्ञा–इति) प्रज्ञा इस नाम से (कथ्यते) कहीजाती है ॥ ४२६ ॥

भावार्थ–उपाधियोंको दूरकरके ब्रह्म तथा आत्माकी एकतामें पहुँचीहुई विकल्परहित और ब्रह्माकार वृत्ति प्रज्ञा कहाती है ॥ ४२६ ॥

सुस्थितासौ भवेद्यस्य स्थितप्रज्ञः स उच्यते । यस्य स्थिता भवेत्प्रज्ञा यस्या-नन्दो निरन्तरः । प्रपञ्चो विस्मृतप्रायः स जीवन्मुक्तस्य इष्यते ॥ २७ ॥

अन्वय और पदार्थ–(असौ) यह (यस्य) जिसकी (सुस्थिता) पूर्णस्थित (भवेत्) हो (सः) वह (स्थितप्रज्ञः)

स्थितप्रज्ञ (उच्यते) कहाजाता है (यस्य) जिसकी (प्रज्ञा) बुद्धि (स्थिता) निश्चल (भवेत्) हो (यस्य) जिसका (आनन्दः) आनन्द (निरन्तरः) निरन्तर (प्रपञ्चः) प्रपञ्च (विस्मृतप्रायः) भूलाहुआसा [भवेत्] हो (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (इष्यते) इच्छा कियाजाता है ॥ ४१७ ॥

भावार्थ-यह प्रज्ञा जिसको सम्यक्प्रकार निश्चल हो गई हो वह स्थितप्रज्ञ कहाता है, जिसकी बुद्धि निश्चल होगई हो, जिसको निरन्तर आनन्द वर्त्तता हो और जो प्रायः प्रपञ्चको भूलगया हो वह जीवन्मुक्त कहाता है ।

लीनधीरपि जागर्ति यो जाग्रद्धर्म-वर्जितः । बोधो निर्वासनो यस्य स जीव-न्मुक्त इष्यते ॥ ४२८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(लीनधीः-अपि) विलीन हुई है बुद्धि जिसकी ऐसा भी (यः) जो (जाग्रद्धर्मवर्जितः) जाग्रत अवस्थाके धर्मोंसे रहित हुआ (जागर्त्ति) जागता है (यस्य) जिसका (बोधः) बोध (निर्वासनः) वासना रहित है (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (इष्यते) इच्छा कियाजाता है ॥ ४२८ ॥

भावार्थ-जो बुद्धि लीन होने पर भी जागता हो, जो जागता हुआ भी जाग्रतके धर्मोंसे रहित हो और जिस का बोध वासनारहित हो वह जीवन्मुक्त कहाता है ॥

शांतसंसारकलनः कलावानपि निष्कलः।

यस्य चित्तं विनिश्चिन्तं स जीवन्मुक्त इष्यते ॥ ४२६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(शान्तसंसारकलनः) जिसका संसारका अनुसन्धान शान्त होगया है (कलवान्-अपि) कलवान् भी (निष्कलः) कलारहित हो (यस्य) जिस का (चित्तम्) चित्त (विनिश्चन्तम्) चिन्तारहित हो (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (इष्यते) इच्छा कियाजाता है ॥ ४२६ ॥

भावार्थ-जिसका संसारकी रचनाका अनुसन्धान शान्त होगया हो, जो लोकोंकी दृष्टिमें परिच्छिन्न होकर भी परिपूर्ण हो और जिसका चित्त चिन्तासे रहित हो वह जीवन्मुक्त कहाता है ॥ ४२६ ॥

वर्तमानेऽपि देहेऽस्मिञ्छायावदनुवर्तिनि । अहंताममताभावो जीवन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥ ४३० ॥

अन्वय और पदार्थ-(छायावत्) छायाकी समान (अनुवर्तिनि) अनुसरण करनेवाले (अस्मिन्) इस (देहे) देहके (वर्तमाने—अपि) विद्यमान होतेहुए भी (अहन्ताममताभावः) अहम्भाव और ममत्वका अभाव होना (जीवन्मुक्तस्य) जीवन्मुक्तका (लक्षणम्) लक्षण है ॥ ४३० ॥

भावार्थ-छायाकी समान साथ रहनेवाले इस शरीरके होतेहुए भी जिसका इसमें अहंकार और ममता नहीं होती है उसको जीवन्मुक्त समझे ॥ ४३० ॥

अतीताननुसन्धानं भविष्यदविचारणम् । औदासीन्यमपि प्राप्तं जीवन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥ ४३१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अतीताननुसन्धानम्) बीती हुई बातका स्मरण न करना (भविष्यदविचारणम्) होनहारका विचार न करना (अपि) और (औदासीन्यम्) उदासीनता (प्राप्तम्) प्राप्त हुई (जीवन्मुक्तस्य) जीवन्मुक्त का (लक्षणम्) लक्षण है ॥ ४३१ ॥

भावार्थ-जो पुरुष बीतीहुई बातका स्मरण न करता हो, भविष्यत्का विचार न करता हो और सबमें उदासीन रहता हो उसको जीवन्मुक्त माने ॥ ४३१ ॥

गुणदोषविशिष्टेऽस्मिन्स्वभावेन विलक्षणे । सर्वत्र समदर्शित्वं जीवन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥ ४३२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(गुणदोषविशिष्टे) गुण दोषोंसे भरेहुए (स्वभावेन) स्वभाव करके (विलक्षणे) विलक्षण (अस्मिन्) इस संसारमें (सर्वत्र) सब जगह (समदर्शित्वम्) समदर्शीपना (जीवन्मुक्तस्य) जीवन्मुक्त का (लक्षणम्) लक्षण है ४३२

भावार्थ-गुणदोषोंसे भरेहुए और स्वभावसे ही विलक्षणतावाले इस प्रपंचमें जिसकी दृष्टि सर्वत्र एकसी हो उसको जीवन्मुक्त माने ४३२

इष्टानिष्टार्थसम्प्राप्तौ समदर्शितयात्मनि। उभयत्राविकारित्वं जीवन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥ ३३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इष्टानिष्टार्थसंप्राप्तौ) इष्ट और अनिष्ट पदार्थोंकी प्राप्ति होनेपर (समदर्शितया)समदर्शीपने करके (आत्मनि) चित्तमें (उभयत्र) दोनों दशामें (अविकारित्वम्) विकाररहित होना (जीवन्मुक्तस्य) जीवन्मुक्तका (लक्षणम्) लक्षण है ४३३

भावार्थ-अच्छा लगनेवाला पदार्थ मिले चाहे अच्छा न लगनेवाला पदार्थ मिले, समदर्शीभावसे दोनों प्रकार के पदार्थोंकी प्राप्ति पर चित्तमें विकार न लाना जीवन्मुक्तका लक्षण है ४३३

ब्रह्मानन्दरसस्वादासक्तचित्ततया यतेः। अन्तर्बहिरविज्ञानं जीवन्मुक्तस्य लक्षणम्

अन्वय और पदार्थ-(ब्रह्मानन्दरसस्वादासक्तचित्ततया) ब्रह्मानन्दरसके स्वादमें आसक्तचित्तपने करके (यतेः) यतिको (अन्तर्बहिरविज्ञानम्) भीतर बाहर का ज्ञान न होना (जीवन्मुक्तस्य) जीवन्मुक्तका (लक्षणम्) लक्षण है ४३४

भावार्थ-ब्रह्मानन्दका रस पीनेमें चित्त आसक्त हो जानेके कारण जिसका भीतर बाहरके विषयोंका अनुसन्धान नहीं रहता है उसको जीवन्मुक्त समझना चाहिये ॥ ४३४ ॥

देहेन्द्रियादौ कर्त्तव्ये ममाहम्भाव-वर्जितः । औदासीन्येन यस्तिष्ठेत्स जीवन्मुक्तलक्षणः ॥ ३५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(देहेन्द्रियादौ) देह इन्द्रिय आदि में से (कर्त्तव्ये) कर्त्तव्यमें (ममाहम्भाववर्जितः) ममता और अहङ्कारसे रहित (यः) जो (औदासीन्येन) उदासीनतासे (तिष्ठेत्) स्थित होय (सः) वह (जीवन्मुक्तलक्षणः) जीवन्मुक्तसंज्ञक है ॥ ३५ ॥

भावार्थ-देह और इन्द्रिय आदिमें तथा दूसरे कामकाजमें 'मैं और मेरा' ऐसी ममता और अहंकारसे रहित हुआ जो सदा उदासीनभावसे वर्त्ताव करता है उसको जीवन्मुक्त समझो ॥ ३५ ॥

विज्ञात आत्मनो यस्य ब्रह्मभाव श्रुतेर्बलात्। भवबन्धविनिर्मुक्तः स जीवन्मुक्तलक्षणः ॥ ३६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यस्य) जिसका (श्रुतः) श्रुत (बलात्) बलसे (आत्मनः) अपना (ब्रह्मभावः)ब्रह्मपना (विज्ञातः) जानाहुआ है (भवबन्धविनिर्मुक्तः) संसारबन्धनसे छूटाहुआ (सः) वह (जीवन्मुक्तलक्षणः) जीवन्मुक्तसंज्ञक है ॥ ३६ ॥

भावार्थ-जिसने श्रुतिके बलसे अपना ब्रह्मपना जान लिया हो और जो संसारके बन्धनसे छूटाहुआ हो उसको जीवन्मुक्त जानो ॥ ३६ ॥

देहेन्द्रियेष्वहम्भाव इदम्भावस्तदन्यके। यस्य नो भवतः क्वापि स जीवन्मुक्त इष्यते ॥ ३७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यस्य) जिसका (क्वापि) कहीं भी (देहेंद्रियेषु) देह और इन्द्रियोंमें (अहम्भावः) अहंपना (तदन्यके) उससे अन्य पदार्थोंमें (इदम्भावः) इदम्भाव (न) नहीं (भवतः) होते हैं (सः) वह (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त (इष्यते) समझा जाता है ३७

भावार्थ-जिसको कभी भी शरीर और इन्द्रियोंमें 'यह मैं ही हूँ' ऐसी बुद्धि न हो और अन्य पदार्थोंमें 'यह सत्य हैं' ऐसी बुद्धि न हो,उसको जीवन्मुक्त जानो।

न प्रत्यग्ब्रह्मणो भेदं कदापि ब्रह्मसर्गयोः। प्रज्ञया यो विजानाति स जीवन्मुक्तलक्षणः ॥ ३८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (प्रज्ञया) बुद्धिसे (कदापि) कभी भी (प्रत्यग्ब्रह्मणोः) जीव और ब्रह्मके (ब्रह्मसर्गयोः) ब्रह्म और सृष्टिके (भेदम्) भेदको (न) नहीं (विजानाति) जानता हो (सः) वह (जीवन्मुक्तलक्षणः) जीवन्मुक्तसंज्ञक है ॥ ३८ ॥

भावार्थ-जो पुरुष अपनी बुद्धिसे कभी भी जीव और ब्रह्मके भेदको तथा ब्रह्म और जगत्के भेदको नहीं देखता है उसको जीवन्मुक्त जानो ॥ ३८ ॥

साधुभिः पूज्यमानेऽस्मिन् पीड्यमानेऽपि दुर्जनैः । समभावो भवेद्यस्य स जीवन्मुक्तलक्षणः ॥ ३९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अस्मिन्) इस शरीरके (साधुभिः) सज्जनोंकरके (पूज्यमाने) पूजा कियेजातेहुए (दुर्जनैः) दुष्टोंकरके (पीड्यमाने-अपि) पीडित कियेजातेहुए भी (यस्य) जिसको (समभावः) समदृष्टि (भवेत्) हो (सः) वह (जीवन्मुक्तलक्षणः) जीवन्मुक्त संज्ञक है ३९

भावार्थ-सज्जन पुरुष इस शरीरका सन्मान करें चाहे नीच पुरुष इस शरीरको पीड़ा दें, उन दोनोंमें ही जिस की समदृष्टि हो उसको जीवन्मुक्त जानो ॥ ३९ ॥

यत्र प्रविष्टाः विषयाः परेरिताः, नदीप्रवाहा इव वारिराशौ । लीयन्ति सन्मात्रतया न विक्रियामुत्पादयन्त्येष यतिर्विमुक्तः ॥ ४४० ॥

अन्वय और पदार्थ-(परेरिताः) दूसरोंके प्रेरणा किये हुए (विषयाः) विषय (वारिराशौ) समुद्रमें (नदीप्रवाहा इव) नदियोंके प्रवाहोंकी समान (यत्र) जिसमें (प्रविष्टाः) प्रविष्टहुए(सन्मात्रतया)ब्रह्मभावसे (लीयन्ति) लीन होते हैं (विक्रयाम्) विकारको (न) नहीं (उत्पादयन्ति) उत्पन्न करते हैं (एषः) यह (यतिः) साधक (जीवन्मुक्तः) जीवन्मुक्त है ॥ ४४० ॥

भावार्थ-दूसरोंके प्रेरणा कियेहुए विषय, समुद्रमें नदियोंके प्रवाहकी समान जिसमें पहुँचकर ब्रह्मरूपसे लीन होजाते हैं और किसी प्रकारका भी विकार उत्पन्न नहीं करते हैं उस साधकको जीवन्मुक्त जानो ॥ ४० ॥

विज्ञातब्रह्मतत्त्वस्य यथापूर्वं न संसृतिः ।
अस्ति चेन्न स विज्ञातब्रह्मभावो बहिर्मुखः॥

अन्वय और पदार्थ-(विज्ञातब्रह्मतत्त्वस्य) ब्रह्मका तत्त्व जाननेवालेको (संसृतिः) संसार (यथापूर्वम्) पहिलेकी समान (न) नहीं होता है (चेत्) जो (अस्ति) होता है [तर्हि] तो (सः) वह (विज्ञातब्रह्मभावः) ब्रह्मत्वको जाननेवाला (न) नहीं है (बहिर्मुखः) बहिर्मुख है ॥ ४१ ॥

भावार्थ-जिसने ब्रह्मका तत्त्व जानलिया हो उसको संसार पहिलेकेसा नहीं रहता है, यदि पहिलेकेसा रहे तो उसको ब्रह्मतत्त्वसे अनजान और बहिर्मुख समझो

प्राचीनवासनावेगादसौ संसरतीति चेत् ।
न सदेकत्वविज्ञानान्मन्दीभवति वासना॥

अन्वय और पदार्थ-(असौ) यह (प्राचीनवासनावेगात्) पुरातन वासनाके वेगसे (संसरति) संसारको प्राप्त होता है (इति चेत्) यदि ऐसा कहो [तर्हि] तो (न) ठीक नहीं है (सदेकत्वविज्ञानात्) ब्रह्मकी एकताके ज्ञानसे (वासना) वासना (मन्दीभवति) मन्द होजाती है ॥ ४२ ॥

भावार्थ–पहिली वासनाके वेगसे जीवन्मुक्त भी जन्ममरणरूप संसारको पाता है, ऐसी शंका नहीं करना चाहिये, क्योंकि ब्रह्मकी एकताको जानलेनेके कारण वासना मन्द होजाती है ॥ ४२ ॥

अत्यन्तकामुकस्यापि वृत्तिः कुण्ठति मातरि । तथैव ब्रह्मणि ज्ञाते पूर्णानन्दे मनीषिणः ॥ ४३ ॥

अन्वय और पदार्थ–(अत्यन्तकामुकस्य-अपि) अत्यन्त कामीकी भी (वृत्तिः) प्रवृत्ति (मातरि) माता में (कुण्ठति) रुक जाती है (तथैव) तैसे ही (पूर्णानन्दे) पूर्णानन्दरूप (ब्रह्मणि) ब्रह्मके (ज्ञाते) जानने पर (मनीषिणः) विद्वानकी [वृत्तिः] प्रवृत्ति होती है

भावार्थ—जैसे अतिकामी पुरुषकी प्रवृत्ति भी अपनी मातामें आकर रुकजाती है तैसे ही पूर्णानन्द ब्रह्मको जानलेने पर विद्वान्‌की वृत्ति भी विषयोंमें जानेसे रुक जाती है ॥ ४३ ॥

निदिध्यासनशीलस्य वाह्यप्रत्यय ईक्ष्यते । ब्रवीति श्रुतिरेतस्य प्रारब्धं फलदर्शनात् ॥ ४४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(निदिध्यासनशीलस्य) निदिध्यासनमें तत्पर पुरुषकी (वाह्यप्रत्ययः) बाहरी प्रतीति (ईक्ष्यते) देखी जाती है (श्रुतिः) श्रुति (फलदर्शनात्)

फल दीखनेसे (एतस्य) इसके (प्रारब्धम्) प्रारब्धको (ब्रवीति) कहती है ॥ ४४ ॥

भावार्थ-निदिध्यासनमें तत्पर जीवन्मुक्तको कुछएक प्रतीति होती है वह इतना उसका प्रारब्ध है, ऐसा श्रुति कहती है ॥ ४४ ॥

सुखाद्यनुभवो यावत्तावत्प्रारब्धमिष्यते । फलोदयः क्रियापूर्वो निष्क्रियो न हि कुत्रचित् ॥ ४५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यावत्) जबतक (सुखाद्यनुभावः) सुख आदिका अनुभव होता है (तावत्) तब तक (प्रारब्धम्) प्रारब्ध (इष्यते) मानाजाता है (फलोदयः) फलका उदय (क्रियापूर्वः) क्रियापूर्वक होता है (निष्क्रियः) क्रियाके विना (कुत्रचित्) कहीं (न हि) नहीं होता है ॥ ४५॥

भावार्थ-जबतक सुख दुःख आदिका अनुभव होता ये तबतक प्रारब्ध है 'ऐसा मानाजाता है' क्योंकि किसी फलका उदय, पहिले कोई क्रिया हो तब ही होसकता है क्रियाके विना कहीं फल प्राप्त होता ही नहीं ४५

अहंब्रह्मेति विज्ञानात्कल्पकोटिशतार्जितम् । सञ्चितं विलयं याति प्रबोधात् स्वप्नकर्मवत् ॥ ४६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्रबोधात्) जागनेसे (स्वप्नकर्मवत्) स्वप्नके कर्मकी समान (अहं-ब्रह्म-इति-

विज्ञानात्) मैं ब्रह्म हूँ ऐसा जानलेनेसे (कल्पकोटिशतार्जितम्) सैंकड़ों करोड़ों कल्पोंमें इकट्ठा किया (सञ्चयम्) सञ्चित कर्म (विलयम्) विनाशको (याति) प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥

भावार्थ-जैसे जागजाने पर स्वप्नमेंके कर्म विलीन होजाते हैं तैसे ही 'अहं ब्रह्म' मैं ब्रह्म हूँ ऐसा ज्ञान होते ही सैंकड़ों करोड़ कल्पोंके सञ्चित कर्म विलीन होजाते हैं

यत्कृतं स्वप्नवेलायां पुण्यं वा पापमुल्वणम् । सुप्तोत्थितस्य किं तत्स्यात् स्वर्गाय नरकाय वा ॥ ४७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(स्वप्नवेलायाम्) स्वप्नके समय में (यत्) जो (उल्वणम्) बड़ा भारी (पुण्यम्) पुण्य (वा) या (पापम्) पाप (कृतम्) किया (तत्) वह (किम्) क्या (सुप्तोत्थितस्य) सोकर उठेहुएके (स्वर्गाय) स्वर्गके लिये (वा) या (नरकाय) नरकके लिये (स्यात्) होगा ॥ ४७ ॥

भावार्थ-स्वप्न देखनेमें जो बड़ाभारी पुण्य वा पाप किया हो वह क्या सुपना देखकर उठेहुए पुरुषको स्वर्ग वा नरक देसकता है ? कदापि नहीं देसकता ४७

स्वमसङ्गमुदासीनं परिज्ञाय नभो यथा । न श्लिष्यति च यत्किञ्चित्कदाचिद्भाविकर्मभिः ॥ ४४८ ॥



अन्वय और पदार्थ-(नभः यथा) आकाशकी समान (स्वम्) अपनेको (असङ्गम्) असङ्ग (उदासीनम्) उदासीन (परिज्ञाय) जानकर (कदाचित्) कभी (भावकर्मभिः) होनहार कर्मों करके (यत्किञ्चित्) जरा भी (न) नहीं (श्लिष्यति) संसक्त होता है ४८

भावार्थ आकाशकी समान अपने स्वरूपको असङ्ग और उदासीन जान लेनेपर, पुरुषको भविष्यकालके कर्म किसी समय जरा भी स्पर्श नहीं करसकते ४८

न नभो घटयोगेन सुरागन्धेन लिप्यते। तथात्मोपाधियोगेन तद्धर्मैर्नैव लिप्यते ॥

अन्वय और पदार्थ-(घटयागेन) घड़ेके संयोगसे (नभः) आकाश (सुरागन्धेन) मादक गन्धसे (न) नहीं (लिप्यते) लिप्त होता है (तथा) तैसे ही (आत्मा) आत्मा (उपाधियोगेन) उपाधिके संयोगसे (नैव) कदापि नहीं (लिप्यते) लिप्त होता है ॥ ४६ ॥

भावार्थ-घड़ेके संयोग होने पर भी घड़ेमेंकी मदिरा का गन्ध आकाशको नहीं लगता, तैसे ही आत्मा उपाधियोंका योग होने पर भी उपाधियोंके धर्मोंसे लिप्त नहीं होता ॥ ४६ ॥

ज्ञानोदयात्पुरारब्धं कर्म ज्ञानान्न नश्यति। अदत्त्वा स्वफलं लक्ष्यमुद्दिश्यो सृष्टबाणवत् ॥ ५० ॥

अन्वय और पदार्थ-(ज्ञानोदयात्) ज्ञानका उदय होनेसे (पुरा) पहिले (आरब्धम्) आरम्भ हुआ (कर्म) कर्म (लक्ष्यम्) लक्ष्यको (उद्दश्य) जाँचकर (उत्सृष्टबाणवत्) छोड़े हुए बाणकी समान (स्वफलम्) अपने फलका (अदत्त्वा) विनादिये (ज्ञानात्) ज्ञानसे (न) नहीं (नश्यति) नष्ट होता है ॥ ५० ॥

भावार्थ-ज्ञान होनेसे पहिले जिसका फल होनेका आरम्भ होचुका है वह प्रारब्ध कर्म अपना फल विना दिये ज्ञानसे नष्ट नहीं होता, जैसे कि निशाना ताककर छोड़ा हुआ बाण अपना फल विना दिये नहीं लौटता५०

व्याघ्रबुद्ध्या विनिर्मुक्तो बाणः पश्चात्तु गोमतौ। न तिष्ठति छिनत्त्येव लक्ष्यं वेगेन निर्भरम् ॥ ५१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(व्याघ्रबुद्ध्या) व्याघ्रकी बुद्धिसे (विनिर्मुक्तः) छोड़ाहुआ (बाणः) बाण (पश्चात्) पीछे (गोमतौ) गौकी बुद्धि होनेपर (न) नहीं (तिष्ठति) ठहरता है (तु) किन्तु (वेगेन) वेग करके (निर्भरम्) पूर्णरीतिसे (लक्ष्यम्) लक्ष्यको (छिनत्ति एव) छेदन करता ही है ॥ ५१ ॥

भावार्थ-पहिले बाघ समझकर बाणको छोड़ दिया और पीछे मालूम हो कि-यह गो है, तो क्या वह बाण ठहरा रहेगा कदापि नहीं रुकेगा, किन्तु भरपूर वेगसे लक्ष्यको छेद डालेगा ॥ ५१ ॥

प्रारब्धं बलवत्तरं खलु विदां भोगेन तस्य क्षयः, सम्यग्ज्ञानहुताशनेन विलयः प्राक्सञ्चितागामिनाम् । ब्रह्मात्मैक्यमवेक्ष्य तन्मयतया ये सर्वदा संस्थितास्तेषां तत्त्रितयं नहि क्वचिदपि ब्रह्मैव ते निर्गुणम् ॥ ५२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विदाम्-खलु) ज्ञानियोंका भी (प्रारब्धम्) प्रारब्ध (बलवत्तरम्) बड़ा बलवान् होता है (तस्य) उसका (क्षयः) नाश (भोगेन) भोग करके [भवति] होता है (सञ्चितागामिनाम्) संचित और आगामी कर्मोंका (विलयः) नाश (प्राक्) पहिले (सम्यग्ज्ञानहुताशनेन) यथार्थ ज्ञानरूप अग्निसे [भवति] होता है (ये) जो (ब्रह्मात्मैक्यम्) ब्रह्मस्वरूपकी एकता को (अवेक्ष्य) देखकर (सर्वदा) सदा (तन्मयतया) तन्मयभावसे (स्थिताः) स्थित होते हैं (तेषाम्) उनके (तत्त्रितयम्) वह तीनों (क्वचिदपि) कहीं भी (नहि) नहीं हैं (ते) वह (निर्गुणम्) निर्गुण (ब्रह्म एव) ब्रह्म ही हैं ॥ ५२ ॥

भावार्थ-ज्ञानियोंका भी प्रारब्ध बड़ा बलवान् होता है इस कारण उसका भोगसे ही क्षय होता है रहे संचित तथा भविष्य कर्म सो पहिले ही यथार्थ ज्ञानरूप अग्निसे लय होजाते हैं, परन्तु जो ब्रह्मस्वरूपकी एकताको देखकर सदा ब्रह्ममय होकर रहते हैं, उनके

वह तीनों कर्म नहीं रहते क्योंकि वह तो निर्गुण ब्रह्म-रूप होते हैं ॥ ५३ ॥

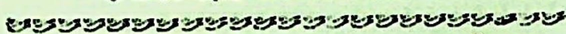
उपाधितादात्म्यविहीनकेवलब्रह्मात्मनैवात्मनि तिष्ठतो मुनेः । प्रारब्धसद्भावकथा न युक्ता, स्वप्नार्थसम्बन्धकथेव जाग्रतः ॥ ४५३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(उपाधितादात्म्यविहीनकेवलब्रह्मात्मना-एव) उपाधियोंके अध्याससे रहित केवल ब्रह्मरूपसे ही (आत्मनि) अपनेमें (तिष्ठतः) स्थितहुए (मुनेः) मुनिकी (प्रारब्धसद्भावकथा) प्रारब्ध शेष रहने की बात (जाग्रतः) जागनेकी (स्वप्नार्थसम्बन्धकथा-इव) स्वप्नके पदार्थोंके सम्बन्धकी बातकी समान (युक्ता) ठीक (न) नहीं है ॥

भावार्थ-उपाधियोंके अध्याससे रहित केवल ब्रह्मरूप से ही अपनेमें रहनेवाले मुनिका प्रारब्ध शेष रहता है, यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि-जागेहुएको स्वप्नके पदार्थोंका सम्बन्ध रहता है, यह कहना सम्भव ही नहीं

न हि प्रबुद्धः प्रतिभासदेहे, देहोपयोगिन्यपि च प्रपञ्चे । करोत्यहन्तां ममतामिदन्तां, किन्तु स्वयं तिष्ठति जागरणे

अन्वय और पदार्थ-(प्रबुद्धः) जागाहुआ (प्रतिभासदेहे) स्वप्नके शरीरमें (देहोपयोगिनी) देहके उपयोगी



(प्रपञ्चे अपि) प्रपंचमें भी (अहंताम्) अहन्ताको (ममताम्) ममताको (इदन्ताम्) इदन्ताको (नहि) नहीं (करोति) करता है (किन्तु) परन्तु (जागरेण) जाग्रत् से (स्वयम्) आप (तिष्ठति) स्थित होता है ॥ ५४ ॥

भावार्थ–जागा हुआ मनुष्य स्वप्नके देहमें तथा उस देहके उपयोगमें आनेवाले प्रपंचमें अहन्ता ममता वा इदन्ताको करता ही नहीं, किन्तु जाग्रतसे ही व्यवहार करता है ॥ ५४ ॥

न तस्य मिथ्यार्थसमर्थनेच्छा न संग्रहस्तज्जगतोऽपि दृष्टः । तत्रानुवृत्तिर्यदि चेन्मृषार्थे न निद्रया मुक्त इतीष्यते ध्रुवम् ॥ ४५५ ॥

अन्वय और पदार्थ–(तस्य) उसकी (मिथ्यार्थसमर्थनेच्छा) मिथ्या पदार्थोंके समर्थनकी इच्छा (न) नहीं (तज्जगतः) तिस जगत्का (संग्रहः-अपि) संग्रह भी (न) नहीं (दृष्टः) देखा है (यदि) जो (तत्र) तिस (मृषार्थे) मिथ्यापदार्थोंमें (अनुवृत्तिः) सम्बन्ध (चेत्) हो [तर्हि] तो (निद्रया) निद्रासे (न) नहीं (मुक्तः) छूटा (इति) ऐसा (ध्रुवम्) निश्चय (इष्यते) मानाजाताहै

भावार्थ–जागे हुए मनुष्यको स्वप्नके मिथ्या पदार्थों का समर्थन करनेकी इच्छा नहीं होती और स्वप्नकी सामग्रीको इकट्ठा भी नहीं कियाजासकता, यदि जागते में भी स्वप्नके मिथ्या पदार्थोंकी अनुवृत्ति करता हो तो समझलो कि–इस पुरुषको निद्राने छोड़ा ही नहीं है५५

तद्वत्परे ब्रह्मणि वर्त्तमानः सदात्मना तिष्ठति नान्यदीक्षते। स्मृतिर्यथा स्वप्नविलोकितार्थे तथा विदः प्राशनमोचनादौ

अन्वय और पदार्थ-(तद्वत्) तैसे ही (परे, ब्रह्मणि) परब्रह्ममें (वर्त्तमानः) वर्त्तमान (सदात्मना) तत्स्वरूप से (तिष्ठति) स्थित होता है (अन्यत्) और (न) नहीं (ईक्षते) देखता है (यथा) जैसे (स्वप्नविलोकितार्थे) स्वप्नमें देखेहुए पदार्थमें (स्मृतिः) स्मृति होती है (तथा) तैसे (विदः) ज्ञानीको (प्राशनमोचनादौ) भोजन मलोत्सर्गादिमें [स्मृतिः] स्मृति होती है ॥५६॥

भावार्थ-परब्रह्ममें मग्न पुरुष सत्‌रूपसे ही रहता है और वह ब्रह्मके सिवाय दूसरे किसी पदार्थको नहीं देखता, जैसे जागेहुए पुरुषको स्वप्नमें देखेहुए पदार्थोंका स्मरण रहता है तैसे सत्‌रूपसे रहनेवाले ज्ञानीको भी भोजन और मलोत्सर्ग आदिकार्यमें व्यवहारका स्मरण रहता है ॥ ५६ ॥

कर्मणा निर्मितो देहः प्रारब्धं तस्य कल्प्यताम्। नानादेरात्मनो युक्तं नैवात्मा कर्मनिर्मितः ॥ ४५७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(देहः) शरीर (कर्मणा) कर्म करके (निर्मितः) रचाहुआ है (तस्य) उसका (प्रारब्धम्) प्रारब्ध (कल्प्यताम्) कल्पना कियाजाय (अनादेः) अनादि (आत्मनः) आत्माको (युक्तम्, न) योग्य नहीं

है [यतः] क्योंकि (आत्मा) आत्मा (कर्मनिर्मितः) कर्मका रचाहुआ (न) नहीं है ॥

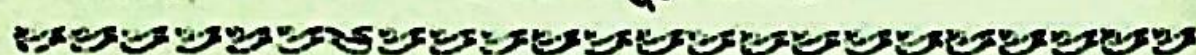
भावार्थ—देहको कर्मोंने रचा है, इस कारण प्रारब्ध देहका है ऐसी कल्पना भले ही करलो, परन्तु आत्मा जो कि-अनादि होनेके कारण कर्मोंका बना हुआ नहीं हो सकता, उसकी प्रारब्ध है, ऐसी कल्पना करना उचित नहीं है ॥ ५७ ॥

अजो नित्यः शाश्वत इति ब्रूते श्रुति-रमोघवाक् । तदात्मना तिष्ठतोऽस्य कुतः प्रारब्धकल्पना ॥ ४५८ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अमोघवाक्) सत्य कहनेवाली (श्रुतिः) श्रुति (अजः) अजन्मा है (नित्यः) नित्य है है (शाश्वत :) अविनाशी है (इति) ऐसा (ब्रूते) कहती है (तदात्मना) ऐसे रूपमें (तिष्ठतः) स्थित (अस्य) इसके (प्रारब्धकल्पना) प्रारब्धकी कल्पना (कुतः) कहां॥

भावार्थ—"अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणः" अर्थात् आत्मा अजन्मा, नित्य और शाश्वत है, ऐसा, सत्य-वचनवाली श्रुति कहती है, इसकारण ऐसे आत्मस्वरूप से रहनेवाले मुनिके प्रारब्धकी स्थिति कैसे होसकती है?

प्रारब्धं सिद्ध्यति तदा यदा देहात्मना स्थितिः । देहात्मभावो नैवेष्टः प्रारब्धं त्यज्यतामतः ॥ ४५९ ॥

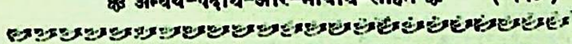


अन्वय और पदार्थ-(यदा) जब (देहात्मना) देह-रूपसे (स्थितिः) स्थिति हो (तदा) तब (प्रारब्धम्) प्रारब्ध (सिद्ध्यति) सिद्ध होता है (देहात्मनः) देहरूपसे मान (नैव) नहीं (इष्टः) इच्छित है (अतः) इसकारण (प्रारब्धम्) प्रारब्ध (त्यज्यताम्) त्यागाजाय

भावार्थ-देहरूपसे स्थित हो तो प्रारब्ध सिद्ध हो, परन्तु मुनिकी देहरूपसे स्थिति मानी ही नहीं जाती इसी लिये मुनिकी प्रारब्धका विचार ही न करे ॥ ५९ ॥

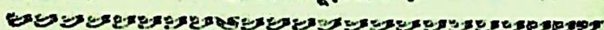
शरीरस्यापि प्रारब्धकल्पना भ्रान्ति-रेव हि। अध्यस्तस्य कुतः सत्त्वमसत्य-स्य कुतो जनिः ॥६०॥ अजातस्य कुतो नाशः प्रारब्धमसतः कुतः । ज्ञानेना-ज्ञानकार्यस्य समूलस्य लयो यदि ४६१ तिष्ठत्ययं कथं देह इति शंकावतो जडान् समाधातुं बाह्यदृष्ट्या प्रारब्धं वदति श्रुतिः । न तु देहादिसत्यत्वबोधनाय विपश्चिताम् ॥ ४६२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(हि) निश्चय (शरीस्य) शरीरकी (प्रारब्धकल्पना-अपि) प्रारब्धकी कल्पना भी (भ्रांति,एव) भ्रांति ही है (अध्यस्तस्य) अध्यस्तकी (सत्त्वम्) सत्यता (कुतः) कहां (असत्यस्य) असत्यकी (जनिः)


उत्पत्ति (कुतः) कहां (अजातस्य) उत्पन्न न हुएका (नाशः) नाश (कुतः) कहां (असतः) असत्का (प्रारब्धम्) प्रारब्ध (कुतः) कहां (समूलस्य) मूल सहित (अज्ञानकार्यस्य) अज्ञानके कार्यका (यदि) जो (लयः) नाश है [तर्हि] तो (अयम्) यह (देहः) शरीर (कथम्) कैसे (तिष्ठति) स्थित रहता है (इति) ऐसी (शंकावतः) शंकावाले (जडान्) जड़ोंको (समाधातुम्) समाधान करनेको (श्रुतिः) श्रुति (बाह्यदृष्ट्या) बाहरी दृष्टिसे (प्रारब्धम्) प्रारब्धको (वदति) कहती हैं (विपश्चिताम्) विचारवानोंके (देहादिसत्यत्वबोधनाय, तु) देह आदिकी सत्यताके बोधित करनेको तो (न) नहीं ॥ ६०–६२ ॥

भावार्थ–शरीरका प्रारब्ध है, यह कल्पना भी वास्तवमें भ्रान्तिरूप ही है, क्योंकि–अध्यस्त (व्यवहारमात्रको माना हुआ) पदार्थ सत्य नहीं होता और असत्यका जन्म होना सम्भव नहीं है, जो जन्मा नहीं उसका मरण नहीं होसकता, तथा जो मरता नहीं उसका प्रारब्ध नहीं होसकता, ज्ञानसे अज्ञानके कार्यका यदि मूलसहित नाश होजाय तो फिर इस देहका रहना ही कैसे सम्भव होसकता है ? ऐसी शंकावाले जड़पुरुषोंका समाधान करनेके लिये ही श्रुतिने 'प्रारब्ध रहता है' ऐसा बाहरी दृष्टिसे कहा है किन्तु विद्वानोंको 'देहादि सत्य है' ऐसा समझानेको नहीं कहा है ॥६०॥६१॥६२॥

परिपूर्णमनाद्यन्तमप्रमेयमविक्रियम् ।
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानाऽस्ति किंचन॥



अन्वय और पदार्थ-(परिपूर्णम्) परिपूर्ण(अनाद्यन्तम्) आदि अन्त रहित (अप्रमेयम्) प्रमाणके अगम्य (अविक्रियम्) विकाररहित (एकम्, एव) एक ही (अद्वयम्) अद्वितीय (ब्रह्म) ब्रह्म है (इह) यहाँ (नाना) भिन्न २ (किञ्चन) कुछ (न, अस्ति) नहीं है ॥ ६३ ॥

भावार्थ-परिपूर्ण, आदि तथा अन्तरहित, प्रमाणका अगम्य और विकाररहित एक ही अद्वितीय ब्रह्म है,यहां जुदा २ कुछ भी नहीं है ॥ ६३ ॥

सद्घनं चिद्घनं नित्यमानन्दघनमक्रियम् । एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ॥ ६४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सद्घनम्) सत्रूप (चिद्घनम्) चेतनरूप (नित्यम्) नित्य (आनन्दघनम्) आनन्दरूप (अक्रियम्) क्रियारहित (एकम्, एव) एक ही (अद्वयम्) अद्वितीय (ब्रह्म) ब्रह्म है (इह) यहाँ (नाना) भिन्न २ (किञ्चन) कुछ (न) नहीं (अस्ति) है

भावार्थ-सत्रूप, चित्तरूप नित्य, आनन्दरूप और क्रियारहित ब्रह्म एक ही और अद्वितीय है, यहां जुदा २ कुछ नहीं है ॥ ६४ ॥

प्रत्यगेकरसं पूर्णमनन्तं सर्वतोमुखम् । एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन॥

अन्वय और पदार्थ-(प्रत्यक्) व्यापक (एकरसम्) एकरस (पूर्णम्) पूर्ण (अनन्तम्) अन्तरहित (सर्वतो-

मुखम्) सर्वत्र विराजमान (एकम्, एव) एक ही (अद्व-यम्) अद्वितीय (ब्रह्म) ब्रह्म है (इह) यहां (नाना) भिन्न २ (किञ्चन) कुछ (न) नहीं (अस्ति) है ६५

भावार्थ–व्यापक, एकरस, पूर्ण, अनन्त और सर्वत्र विराजमान ब्रह्म एक और अद्वितीय है, यहां जुदा २ कुछ नहीं है ॥ ६५ ॥

अहेयमनुपादेयमनादेयमनाश्रयम्। एक-मेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ६६

अन्वय और पदार्थ–(अहेयम्) न त्यागनेयोग्य (अनु-पादेयम्) न ग्रहण करनेयोग्य (अनादेयम्) विषयोंसे रहित (अनाश्रयम्) आश्रयरहित (एकम्, एव) एक ही (अद्वयम्) अद्वितीय (ब्रह्म) ब्रह्म है (इह) यहां (नाना) भिन्न २ (किञ्चन) कुछ (न) नहीं (अस्ति) है६६

भावार्थ–जो न छोड़ा जासके, न लियाजा सके, ऐसा विषयोंसे तथा आश्रयसे रहित एक ही अद्वितीय ब्रह्म है यहां जुदा कुछ भी नहीं है ॥ ६६ ॥

निर्गुणं निष्कलं सूक्ष्मं निर्विकल्पं निरञ्जनम् । एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ॥ ६७ ॥

अन्वय और पदार्थ–(निर्गुणम्) गुणरहित (निष्कलम्) निर्मल (एकम्, एव) एक ही (अद्वयम्) अद्वितीय (ब्रह्म) ब्रह्म है (इह) यहां (नाना) भिन्न २ (किञ्चन) कुछ (न) नहीं (अस्ति) है ॥ ६७ ॥

भावार्थ–निर्गुण, अंशरहित, सूक्ष्म, निर्विकल्प और निरञ्जन ब्रह्म एक ही और अद्वितीय है, यहां जुदा २ कुछ नहीं है ॥ ६७ ॥

अनिरूप्यस्वरूपं यन्मनोवाचामगोचरम् । एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ॥ ६८ ॥

अन्वय और पदार्थ–(अनिरूप्यस्वरूपम्) जिसके स्वरूपका वर्णन नहीं होसकता (यत्) जो (मनोवाचाम्) मन और वाणीका (अगोचरम्) प्रत्यक्ष न होनेवाला (एकम्, एव) एक ही (अद्वयम्) अद्वितीय (ब्रह्म) ब्रह्म है (इह) यहाँ (नाना) भिन्न २ (किञ्चन) कुछ (न) नहीं (अस्ति) है ॥ ६८ ॥

भावार्थ–मन वाणीके न पहुंचनेके कारण जिसके स्वरूपका वर्णन नहीं होसकता ऐसा ब्रह्म एक और अद्वितीय है यहां जुदा २ कुछ है ही नहीं ॥ ६८ ॥

सत्समृद्धं स्वतःसिद्धं शुद्धं बुद्धमनीदृशम् । एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ॥ ६९ ॥

अन्वय और पदार्थ–(सत्) स्वरूप (समृद्धम्) परिपूर्ण (स्वतःसिद्धम्) स्वयंसिद्ध (शुद्धम्) शुद्ध (बुद्धम्) ज्ञानरूप (अनदीशम्) जिसकी समान कोई है ही नहीं (एकम्, एव) एक ही (अद्वयम्) अद्वितीय (ब्रह्म)

ब्रह्म है (इह) यहां (नाना) भिन्न २ (किञ्चन) कुछ (न) नहीं (अस्ति) है ॥ ६९ ॥

भावार्थ-सत्य, परिपूर्ण, स्वतःसिद्ध, ज्ञानस्वरूप और जिसकी समान कोई है ही नहीं ऐसा ब्रह्म एक और अद्वितीय है, यहां भिन्न २ कुछ है ही नहीं ॥६९॥

निरस्तरागा विनिरस्तभोगाः शान्ताः सुदान्ताः यतयो महान्तः । विज्ञाय तत्त्वं परमे तदन्ते प्राप्ताः परां निर्वृतिमात्म-योगात् ॥ ७० ॥

अन्वय और पदार्थ-(निरस्तरागाः) रागको त्यागने वाले (विनिरस्तभोगाः) भोगको त्यागनेवाले (शान्ताः) शान्त (सुदान्ताः) परम जितेन्द्रिय (महान्तः) महात्मा (यतयः) साधक (तत्त्वम्) तत्त्वको (विज्ञाय) जान कर (परमे) श्रेष्ठ (तदन्ते) उसके परिणाममें (आत्म-योगात्) आत्मयोगसे (पराम्) अत्यन्त (निर्वृतिम्) सुखको (प्राप्ताः) प्राप्तहुए ॥ ७० ॥

भावार्थ-राग और भोगके त्यागी शान्त और परम-जितेन्द्रिय महात्मा संन्यासी तत्त्वको जानकर उसके परिणाममें आत्मविचारके द्वारा परम सुख (मुक्ति) को प्राप्त होगए ॥ ७० ॥

भवानपीदं परतत्त्वमात्मनः स्वरूप-मानन्दघनं विचार्य । विधूय मोहं स्वमनः-प्रकल्पितम् मुक्तः कृतार्थो भवतु प्रबुद्धः

अन्वय और पदार्थ-(भवान्, अपि) तू भी (इदम्) इस (परतत्त्वम्) परमतत्त्व (आनन्दघनम्) आनन्दघन (आत्मनः)आत्माके (स्वरूपम्) स्वरूपको (विचार्य) विचार कर (स्वमनःप्रकल्पितम्) अपने मनसे कल्पना किये हुए (मोहम्) अज्ञानको (विधूय) नष्ट करके (मुक्तः) मुक्त (कृतार्थः) कृतकृत्य (प्रबुद्धः) बोधमय (भवतु) हो ॥ ७१ ॥

भावार्थ-तू भी इस परमतत्त्वरूप और आनन्दघन आत्माके स्वरूपको विचारकर और अपने मनसे कल्पना कियेहुए मोहको दूर करके मुक्त कृतार्थ और बोधमय हो

समाधिना साधुविनिश्चलात्मना
पश्यात्मतत्त्वं स्फुटबोधचक्षुषा।निःसंशयं
सम्यगवेक्षितश्चेच्छ्रुतः पदार्थो न पुन-
र्विकल्पते ॥ ७२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(समाधिना) समाधि करके (साधुविनिश्चलात्मना) भलेप्रकार निश्चल हुई बुद्धिसे (स्फुटबोधचक्षुषा) स्पष्ट ज्ञाननेत्रके द्वारा (आत्मतत्त्वम्) आत्मतत्त्वको (पश्य) देख (चेत्) जो (श्रुतः) सुनाहुआ (पदार्थः) पदार्थ (निःसंशयम्) संशयरहित (सम्यक्) भले प्रकार (अवलोकितः) देख लिया [तर्हि] तो (पुनः) फिर (न) नहीं (विकल्पते) विकल्प करता है

भावार्थ-समाधिसे भले प्रकार निश्चल हुई बुद्धिसे स्पष्ट ज्ञानरूप चक्षुके द्वारा तू आत्मतत्त्वका दर्शन कर

यदि सुना हुआ पदार्थ भले प्रकार निःसन्देहरूपसे देखनेमें आजाय तो फिर उसमें किसी प्रकारका विकल्प नहीं रहता है ॥ ७२ ॥

स्वस्याविद्याबन्धसम्बन्धमोक्षात्सत्यज्ञानानन्दरूपात्मलब्धौ । शास्त्रं युक्तिर्देशिकोक्तिः प्रमाणं चान्तःसिद्धा स्वानुभूतिः प्रमाणम् ॥ ७३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(स्वस्याविद्याबन्धसम्बन्धमोक्षात्) अपने अविद्यारूपी बन्धनके सम्बन्धके छूटनेसे (सत्यज्ञानानन्दरूपात्मलब्धौ) सत्य, ज्ञान और आनन्दरूप आत्माकी प्राप्ति होनेमें (शास्त्रम्) शास्त्र (युक्तिः) युक्ति (देशिकोक्तिः) आचार्यका उपदेश (प्रमाणम्) प्रमाण है (अन्तःसिद्धा) भीतर सिद्ध हुआ (स्वानुभूतिः, च) अपना अनुभव भी (प्रमाणम्) प्रमाण है ॥

भावार्थ-अपनी अविद्यारूप बन्धनके सम्बन्धसे छुटकारा होने पर सत्य ज्ञान और आनन्दरूप आत्माकी प्राप्ति होनेमें, शास्त्र, युक्ति और ब्रह्मज्ञानी आचार्यका प्रमाण है और अन्तःकरणमें सिद्ध हुआ, अपना अनुभी इसका प्रमाण होता है ॥ ७३ ॥

बन्धो मोक्षश्च तृप्तिश्च चिन्तारोग्यक्षुधादयः । स्वेनैव वेद्या यज्ज्ञानं परेषामानुमानिकम् ॥ ७४ ॥

अन्वय और पदार्थ (बन्धः) बन्ध (च) और (मोक्षः) मोक्ष (च) और (तृप्तिः) तृप्ति (चिन्तारोग्यक्षुधादयः) चिन्ता, आरोग्य और भूख आदि (स्वेन-एव) अपने करके ही (वेद्यः) जाननेयोग्य हैं (यज्ज्ञानम्) जिनका ज्ञान (परेषाम्) दूसरोंका (आनुमानिकम्) अनुमान से होता है ॥ ७४ ॥

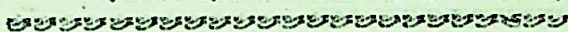
भावार्थ-बन्ध, मोक्ष, तृप्ति, चिन्ता, नीरोगता और भूख आदि पदार्थ अपने ही अनुभवमें आते हैं और दूसरोंको जो इनका ज्ञान होता है वह अनुमानसे कल्पना किया जाता है ॥ ७४ ॥

तटस्थिता बोधयन्ति गुरवः श्रुतयो यथा।
प्रज्ञयैव तरेद्विद्वानीश्वरानुगृहीतया॥७५॥

अन्वय और पदार्थ--(श्रुतयः) श्रुतियें (यथा) जैसे (गुरवः) गुरुजन (तटस्थिताः) तटस्थ होकर (बोधयन्ति) बोधित करते हैं (विद्वान्) विवेकी (ईश्वरानुगृहीतया) ईश्वरकी अनुग्रह कीहुई (प्रज्ञया-एव) प्रज्ञा करके ही (तरेत्) तरे ॥ ७५ ॥

भावार्थ श्रुतियोंकी समान गुरु भी तटस्थ होकर समझाते हैं, इसकारण विद्वान् पुरुष ईश्वरके अनुग्रह वाली अपनी बुद्धिसे ही तर जाय । ७५ ।

स्वानुभूत्या स्वयं ज्ञात्वा स्वमात्मानमखण्डितम् । संसिद्धः सन्मुखं तिष्ठेन्निर्विकल्पात्मनात्मनि ॥ ४७६ ॥


अन्वय और पदार्थ-(स्वयम्) आप (स्वानुभूत्या) अपने अनुभव करके (स्वम्) अपने (आत्मानम्) आत्माको (अखण्डितम्) अखण्डित (ज्ञात्वा) जान कर (संसिद्धः सन्) सम्यक् सिद्ध हुआ (आत्मनि) अपने में (निर्विकल्पात्मना) निर्विकल्परूप से (सुखम्) सुखपूर्वक (तिष्ठेत्) स्थित होय ॥ ७६ ॥

भावार्थ-अपने अनुभवसे आप ही अपने आत्माको अखण्डरूप जानकर सम्यक् सिद्ध होता हुआ अपनेमें ही निर्विकल्परूपसे सुखपूर्वक रहै ॥ ७६ ॥

वेदान्तसिद्धान्तनिरुक्तिरेषा ब्रह्मैव जीवः सकलं जगच्च । अखण्डरूपस्थितिरेव मोक्षो ब्रह्माद्वितीये श्रुतयः प्रमाणं

अन्वय और पदार्थ-(जीवः) जीव (सकलम्) सम्पूर्ण (जगत्, च) जगत् भी (ब्रह्म-एव) ब्रह्म ही है (अखण्डरूपस्थितिः, एव) अखण्डरूपसे स्थिति ही (मोक्षः) मोक्ष है (ब्रह्माद्वितीये) ब्रह्मके अद्वितीयपने में (श्रुतयः) श्रुतियें (प्रमाणम्) प्रमाण हैं (एषा) यह (वेदान्तसिद्धान्तनिरुक्तिः) वेदान्तके सिद्धान्तका निर्वचन है ७७

भावार्थ—जीव और सब जगत् ब्रह्म ही है, तथा अखण्डरूपसे रहना ही मोक्ष है, इतना ही वेदान्तके सिद्धान्तका व्याख्यान है, ब्रह्मके अद्वितीयपनेमें श्रुतियें प्रमाण हैं ॥ ७७ ॥

इति गुरुवचनाच्छ्रुतिप्रमाणात्परमव-

गम्य सतत्वमात्मयुक्त्या । प्रशमित-
करणः समाहितात्मा क्वचिदचलाकृति-
रात्मनिष्ठितोऽभूत् ॥ ७८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इति) इस प्रकार (गुरुवचनात्) गुरुके वचनसे (श्रुतिप्रमाणात्) श्रुतिके प्रमाणसे (आत्मयुक्त्या) अपनी युक्तिसे (परम्) पर (तत्त्वम्) तत्त्व को (अवगम्य) पाकर (प्रशमितकरणः) शान्त हुई हैं इन्द्रियें जिसकी ऐसा (समाहितात्मा) सावधान मन हुआ (सः) वह शिष्य (क्वचित्) कहीं (अचलाकृतिः) निश्चलाकार (आत्मनिष्ठितः) आत्मामें निष्ठा वाला (अभूत्) हुआ ॥ ७८ ॥

भावार्थ-इसप्रकार गुरुके वचनसे और श्रुतिरूप प्रमाण के विचार करके अपने परम तत्त्वको जानकर जिसकी इन्द्रियें शान्त होगई हैं और मन सावधान होगया है ऐसा शिष्य किसी स्थलमें निर्विकल्प समाधि लगाकर रहने लगा ॥ ७८ ॥

कञ्चित्कालं समाधाय परे ब्रह्मणि
मानसम् । उत्थाय परमानन्दमिदं वच-
नमब्रवीत् ॥ ७९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(कञ्चित्कालम्) कुछ एक समय (परे, ब्रह्मणि) परब्रह्ममें (मानसम्) मनको (समाधाय) स्थापन करके (उत्थाय) उठकर (परमानन्दात्) परम

आनन्दसे (इदम्) यह (वचनम्) वचन (अब्रवीत्) बोला

भावार्थ–कुछ समय पर्यन्त परब्रह्ममें इसप्रकार मनको स्थापन करकै उस समाधिसे उठ तिस शिष्यने परम आनन्दसे नीचे लिखा वचन कहा ॥ ७९ ॥

बुद्धिर्विनष्टा गलिता प्रवृत्तिर्ब्रह्मात्मनोरेकतयाधिगत्या । इदं न जानेऽप्यनिदं न जाने किं वा कियद्वा सुखमस्त्यपारम् ॥ ८० ॥

अन्वय और पदार्थ–(ब्रह्मात्मनोः) ब्रह्म और जीव का (एकतया) एकता करकै (अधिगत्या) अनुभव होनेसे (बुद्धिः) बुद्धि (विनष्टा) नष्ट होगई (प्रवृत्तिः) प्रवृत्ति (गलिता) गलित होगई (इदम्) दृश्यको (न) नहीं (जाने) जानता हूँ (अनिदम्, अपि) अदृश्य पदार्थको भी (न) नहीं (जाने) जानता हूँ (अपारम्) अपार (सुखम्) सुख (किम्, वा) क्या (कियत्, वा) कितना (अस्ति) है ॥ ८० ॥

भावार्थ–जीव और ब्रह्मकी एकताका अनुभव होजाने के कारण मेरी बुद्धि गल गई, प्रवृत्तिका नाश होगया, मैं न दृश्य पदार्थको जानता हूँ न अदृश्य पदार्थको जानता हूँ और यह सुख अपार होनेके कारण कैसा और कितना है सो नहीं कहा जासकता ॥ ८० ॥

वाचा वक्तुमशक्यमेव मनसा मन्तुं न वा शक्यते स्वानन्दामृतपूरपूरित-

परब्रह्माम्बुधेर्वैभवम् । अम्भोराशिविशीर्णवार्षिकशिलाभावं भजन्मे मनो यस्यांशांशलवे विलीनमधुनानन्दात्मना निर्वृतम् ॥ ८१ ॥

अन्वय और पदार्थ—(स्वानन्दामृतपूरपूरितपरब्रह्माम्बुधेः) निजानन्दरूप अमृतके प्रवाहसे भरेहुए परब्रह्म रूप समुद्रका (वैभवम्) महिमा (वाचा) वाणी करकै (वक्तुम्) कहनेको (अशक्यम्, एव) अशक्य ही है (वा) और (मनसा) मन करकै (मन्तुम्) मनन करने को (न) नहीं (शक्यते) शक्य होता है (यस्य) जिसके (अंशांशलवे) अंशके अंशके लवमें (अम्भोराशिविशीर्णवार्षिकशिलाभावम्) समुद्रमें पड़े वर्षाके ओलेकी समानताको (भजन्) भजता हुआ (विलीनम्) विलीन हुआ (मे) मेरा (मनः) मन (अधुना) अब (आनन्दात्मना) आनन्दरूपसे (निर्वृतम्) निर्वाणको प्राप्त है ॥ ८१ ॥

भावार्थ-स्वरूपानन्दरूपी अमृतके प्रवाहसे भरे हुए परब्रह्मरूप समुद्रकी महिमा वचनसे नहीं कही जासकती और मनसे मनन नहीं कीजासकती कि जिस महिमाके अंशके अंशके भी अंशमें समुद्रमें पड़े हुए वर्षाके ओले की समान लीन हुआ मेरा मन आनन्दरूपसे निर्वाण रूपको पारहा है ॥ ८१ ॥

क्व गतं केन वा नीतं कुत्र लीनमिदं जगत् । अधुनैव मया दृष्टं नास्ति किं महदद्भुतम् ॥ ८२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इदम्) यह (जगत्) संसार (क्व) कहां (गतम्) गया (वा) या (केन) किस-करकै (नीतम्) लेजाया गया (कुत्र) कहाँ (लीनम्) लीन होगया (अधुना एव) अब ही (मया) मैंने (दृष्टम्) देखा था (किम्) क्या (महत्) बड़ाभारी (अद्भुतम्) आश्चर्य (न) नहीं (अस्ति) है ॥ ८२ ॥

भावार्थ-यह जगत् कहां गया ? कहां लीन होगया कौन लेगया ? मैं तो अभी इसको देख रहा था क्या यह परम आश्चर्य नहीं है ॥ ८२ ॥

किं हेयं किमुपादेयं किमन्यत्किंविलक्षणम् । अखण्डानन्दपीयूषपूर्णे ब्रह्ममहार्णवे ॥ ८३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अखण्डानन्दपीयूषपूर्णे) अखंड आनन्दरूप अमृतसे भरे (ब्रह्ममहार्णवे) ब्रह्मरूप महासमुद्रमें (किम्) क्या (हेयम्) त्यागने योग्य है (किम्) क्या (उपादेयम्) ग्रहण करने योग्य है (किम्) क्या (अन्यत्) और है (किम्) क्या (विलक्षणम्) विलक्षण है ॥ ८३ ॥

भावार्थ–अखण्ड आनन्दरूप अमृतसे भरे ब्रह्मरूप महासागरमें क्या लेना ? और क्या देना ? क्या भिन्न है ? और क्या विलक्षण है ? कुछ भी नहीं है ॥ ८३ ॥

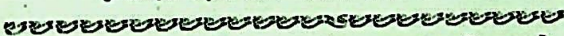
न किंचिदत्र पश्यामि न शृणोमि न वेद्म्यहम् । स्वात्मनैव सदानन्दरूपेणास्मि विलक्षणः ॥ ८४ ॥

अन्वय और पदार्थ–(अत्र) इस दशामें (अहम्) मैं (किञ्चित्) कुछ (न) नहीं (पश्यामि) देखता हूँ (न) नहीं (शृणोमि) सुनता हूँ (न) नहीं (वेद्मि) जानता हूँ (सदानन्दरूपेण) सदानन्दरूप (स्वात्मना–एव) अपने स्वरूप करके ही (विलक्षणः) विलक्षण (अस्मि) हूँ ॥ ८४ ॥

भावार्थ–इस स्थितिमें मैं न कुछ देखता हूँ, न कुछ सुनता हूँ, और न कुछ जानता हूँ मैं तो सदानन्दस्वरूप के कारण सबसे जुदा हूँ ॥ ८४ ॥

नमो नमस्ते गुरवे महात्मने विमुक्तसङ्गाय सदुत्तमाय । नित्याद्वयानन्दरसस्वरूपिणे भूम्ने सदापारदयांबुधाम्ने ॥

अन्वय और पदार्थ–(महात्मने) महात्मा (विमुक्तसङ्गाय) संगरहित (सदुत्तमाय) सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ (नित्याद्वयानन्दरसस्वरूपिणे) नित्य अद्वितीय आनंदरसरूप (भूम्ने) व्यापक (सदापारदयाम्बुधाम्ने) सदा



अपार दयारूपी जलके समुद्र (ते) तुम (गुरवे) गुरुके अर्थ (नमः) प्रणाम है (नमः) प्रणाम है ॥ ८५ ॥

भावार्थ-आप गुरुके अर्थ कि-जो आप महात्मा विषयासक्तिरहित, सत्पुरुषोंमें उत्तम, नित्य तथा अद्वितीय आनन्दरसस्वरूप, व्यापक और सदा अपार दयारूपी जलके समुद्र हो बारंबार प्रणाम है ॥ ८५ ॥

यत्कटाक्षशशिसान्द्रचन्द्रिकापातधूतभवतापजश्रमः । प्राप्तवानहमखण्डवैभवानन्दमात्मपदमक्षयं क्षणात् ॥८६॥

अन्वय और पदार्थ-(यत्कटाक्षशशिसान्द्रचन्द्रिकापातधूतभवतापजश्रमः) जिनके कटाक्षरूपी चन्द्रमाकी घनी चाँदनीके पडनेसे दूर होगया है संसारतापसे उत्पन्न हुआ श्रम जिसका ऐसा (अहम्) मैं (क्षणात्) क्षण भरमें (अखण्डवैभवानन्दम्) अखण्ड आनन्दरूप वैभववाले (अक्षयम्) अविनाशी (आत्मपदम्) आत्मपदको (प्राप्तवान्, अस्मि) प्राप्त हुआ हूँ ॥ ८६ ॥

भावार्थ-जिनके कटाक्षरूपी चन्द्रमाकी घनी चाँदनीके पड़नेसे मैं संसाररूपी तापसे उत्पन्न हुए परिश्रमसे क्षणभरमें मुक्त होकर आनन्दरूप और अखण्ड वैभव वाले अविनाशी आत्मपदको प्राप्त होगया हूँ ऐसे गुरुको प्रणाम करता हूँ ॥ ८६ ॥

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं विमुक्तोऽहं भवग्रहात् । नित्यानन्दस्वरूपोहं पूर्णोहं त्वदनुग्रहात् ॥ ८७ ॥

अन्वय और पदार्थ–(त्वदनुग्रहात्) आपके अनुग्रह से (अहम्) में (धन्यः) धन्य हूँ (अहम्) मैं (कृतकृत्यः) कृतार्थ हूँ (अहम्) मैं (भवग्रहात्) संसाररूप नाकेसे (विमुक्तः) छूटा हूँ (अहम्) मैं (नित्यानन्दस्वरूपः) नित्य आनन्दस्वरूप हूँ (अहम्) मैं (पूर्णः) पूर्ण हूँ

भावार्थ–हे गुरो ! मैं आपके अनुग्रहसे भाग्यशाली हुआ हूँ, कृतार्थ हुआ हूँ, संसाररूपी नाकेसे छूट गया हूँ, नित्य आनन्दरूप और पूर्ण हुआ हूँ ॥ ८७ ॥

असङ्गोऽहमनङ्गोऽहमलिंगोऽहमभंगुरः । प्रशान्तोऽहमनन्तोऽहममलोऽहं चिरन्तनः ॥ ८८ ॥

अन्वय और पदार्थ–(अहम्) मैं (असङ्गः) असङ्ग (अहम्) मैं (अनङ्ग) अशरीरी (अहम्) मैं (अलिंगः) अलिंग (अहम्) मैं (अनंगः) निरवयव (अहम्) मैं (शान्तः) शान्त (अहम्) मैं (अनन्तः) अनन्त (अहम्) मैं (अमलः) निर्मल (अहम्) मैं (चिरन्तनः) पुरातन हूँ ॥

भावार्थ–मैं असंग, अशरीरी, लिंगशरीररहित, शांत, अनन्त, निर्मल और सनातन हूँ ॥ ४८८ ॥

अकर्ताहमभोक्ताहमविकारोऽहमक्रियः, । शुद्धबोधस्वरूपोहं केवलोहं सदाशिवः ॥

अन्वय और पदार्थ–(अहम्) मैं (अकर्त्ता) कुछ न करनेवाला (अहम्) मैं (अभोक्ता) कुछ न भोगनेवाला (अहम्) मैं (अविकारः) निर्विकार (अहम्) मैं

(अक्रियः) निष्क्रिय (अहम्) मैं (शुद्धबोधस्वरूपः) शुद्ध ज्ञानरूप (अहम्) मैं (केवलः) केवल (सदाशिवः) सदाशिव हूँ ॥ ८९ ॥

भावार्थ-मैं अकर्ता, अभोक्ता निर्विकार निष्क्रिय, शुद्धज्ञानरूप और केवल सदा मंगलरूप हूँ ॥ ८९ ॥

द्रष्टुः श्रोतुर्वक्तुः कर्तुर्भोक्तुर्विभिन्न एवाहम् । नित्यनिरन्तरनिष्क्रियनिःसीमासंगपूर्णबोधात्मा ॥ ९० ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (द्रष्टुः) द्रष्टासे (श्रोतुः) श्रोतासे (वक्तुः) वक्तासे (कर्तुः) कर्तासे (भोक्तुः) भोक्तासे (विभिन्नः, एव) भिन्न ही हूँ (नित्यनिरन्तरनिष्क्रियनिःसीमासङ्गपूर्णबोधात्मा)नित्य निरन्तर, क्रियारहित, अवधिरहित, संगरहित और पूर्ण बोधरूप हूँ ॥ ९० ॥

भावार्थ-मैं देखनेवालेसे, सुननेवालेसे, करनेवालेसे और भोगनेवालेसे जुदा ही हूँ, मैं तो नित्य, अभिन्न; क्रियारहित, अवधिरहित और संगरहित पूर्ण ज्ञानस्वरूप हूँ ॥ ९० ॥

नाहमिदं नाहमदोप्युभयोरवभासकं परं शुद्धम् । बाह्याभ्यन्तरशून्यं पूर्णं ब्रह्माद्वितीयमेवाहम् ॥ ९१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (इदम्) यह (न) नहीं हूँ (अहम्) मैं (अदः) यह (अपि) भी (न) नहीं हूँ (अहम्) मैं (उभयोः) दोनोंका (अवभासकम्) प्रकाशक (परम्) पर (शुद्धम्) शुद्ध (बाह्याभ्यन्तरशून्यम्) बाहर भीतरके भेदसे रहित (अद्वितीयम्) अद्वितीय (पूर्णम्) पूर्ण (ब्रह्म एव) ब्रह्म ही हूँ

भावार्थ-मैं न द्रष्टा हूँ, न दृश्य हूँ, किन्तु मैं इन दोनों को प्रकाश देनेवाला, परमशुद्ध, भीतर बाहरके भेदसे रहित, पूर्ण और अद्वितीय ब्रह्म ही हूँ ॥ ६१ ॥

निरुपममनादितत्त्वं त्वमहमिदमद
इति कल्पनादूरम् । नित्यानन्दैकरसं
सत्यं ब्रह्माद्वितीयमेवाहम् ॥ ६२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(निरुपमम्) उपमारहित (अनादितत्त्वम्) अनादितत्त्व (अहम्) मैं (त्वम्, अहम्, इदम्, अदः, इति-कल्पनादूरम्) तू, मैं, यह और वह इसप्रकारकी कल्पनाओंसे दूर (नित्यानन्दैकरसम्) नित्य, आनन्द, एकरस (सत्यम्) सत्य (अद्वितीयम्) अद्वितीय (ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही हूँ ॥ ६२ ॥

भावार्थ-उपमारहित, अनादि तत्त्वरूप, मैं-तू यह-वह इत्यादि कल्पनाओंसे रहित, नित्य, आनन्दस्वरूप, एकरस, अद्वितीय ब्रह्म ही हूँ ॥ ६२ ॥

नारायणोहं नरकान्तकोहं पुरान्त-

कोहं पुरुषोहमीशः । अखण्डबोधोहमशेषसाक्षी निरीश्वरोहं निरहं च निर्ममः ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (नारायणः) नारायण (अहम्) मैं (नरकान्तकः) नरकासुरका नाशक (अहम्) मैं (पुरान्तकः) त्रिपुरनाशक (पुरुषः) पुरुष (अहम्) मैं (ईशः) समर्थ (अहम्) मैं (अखण्डबोधः) अखण्डज्ञानस्वरूप (अहम्) मैं (अशेषसाक्षी) सबका साक्षी (अहम्) मैं (निरीश्वरः) नियन्तारहित (निरहम्) अहंकाररहित (च) और (निर्ममः) ममतारहित हूँ ॥ ६३ ॥

भावार्थ-नरकासुरनाशक नारायण मैं हूँ त्रिपुरानाशक शिव मैं हूँ, अखण्डज्ञानरूप ईश्वर मैं हूँ, मैं सब का साक्षी हूँ, अहंकारहीन और ममतारहित हूँ मेरा ईश्वर कोई नहीं है ॥ ६३ ॥

सर्वेषु भूतेष्वहमेव संस्थितो ज्ञानात्मनान्तर्बहिराश्रयः सन् । भोक्ता च भोग्यं स्वयमेव सर्वं यद्यत्पृथग्दृष्टमिदंतया पुरा ॥ ६४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सर्वेषु) सब (भूतेषु) प्राणियों में (अन्तः) भीतर (बहिः) बाहर (ज्ञानात्मना) ज्ञानस्वरूपसे (आश्रयः सन्) आश्रय होकर (संस्थितः) स्थित हूँ (भोक्ता) भोगनेवाला (भोग्यम्) भोगने

योग्य (च) और (पुरा) पहिले (यत्, यत्) जो २ (इदन्तया) यह है इसप्रकार (पृथक्) अलग (दृष्टम्) देखा था (सर्वम्) सब (स्वयम्, एव) आप ही हूँ ॥

भावार्थ—सब पदार्थोंमें भीतर बाहर ज्ञानरूपसे मैं ही रह रहा हूँ, भोक्ता, भोग्य और जो २ पहिले यह है ऐसा अलग देखनेमें आता था वह सब मैं स्वयं ही हूँ ६४

मय्यखण्डसुखाम्भोधौ बहुधा विश्व-वीचयः । उत्पद्यन्ते विलीयन्ते माया-मारुतविभ्रमात् ॥ ६५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(अखण्डसुखाम्भोधौ) अखण्ड सुखके समुद्ररूप (मयि) मुझमें (बहुधा) प्रायः (माया-मारुतविभ्रमात्) मायारूपी वायुके विशेष चलनेसे (विश्ववीचयः) जगत्‌रूप तरंगें (उत्पद्यन्ते) उत्पन्न होती हैं (विलीयन्ते) विलीन होती हैं ॥ ६५ ॥

भावार्थ—मैं तो अनन्तसुखका समुद्ररूप हूँ, उसमें मायारूपी पवनके चलनसे अनेकों प्रकारकी बड़ी बड़ी जगत्‌रूप तरंगे उत्पन्न होती हैं और फिर लीन हो जाती हैं ॥ ६५ ॥

स्थूलादिभावा मयि कल्पिता भ्रमा-दारोपिता नुस्फुरणेन लोकैः । काले यथा कल्पकवत्सरायनर्त्वादयो निष्कलनिर्वि-कल्पे ॥ ६६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (निष्कलनिर्विकल्पे) भाग और भेदरहित (काले) कालमें (कल्पवत्सरायनर्त्वादयः) कल्प-वर्ष-अयन-ऋतु आदि(लोकैः) लोकोंने (कल्पिताः) कल्पना कर लिये हैं [तथा] तैसे (नु) ही (मयि) मेरे विषैं (स्फुरणेन) स्फुरणके कारण (भ्रमात्) भ्रमसे (स्थूलादिभावाः) स्थूलता आदि (आरोपिताः) मान लिये हैं ॥ ६६ ॥

भावार्थ-जैसे कालमें कोई भाग वा भेद नहीं है परंतु लोकोंने उसमें कल्प, वर्ष, ऋतु, अयन आदि भेदोंकी कल्पना करली है, तैसे ही मुझमें न कोई अंश है न कुछ भेदभाव है तथापि लोकोंने स्थूल शरीर आदि भ्रांतिसे मुझमें मान लिये हैं, कि-जो फुरा करते हैं ॥ ६६ ॥

आरोपितं नाश्रयदूपकं भवेत्कदापि मूढैरतिदोषदूषितैः। नार्द्रीकरोत्यूपरभूमिभागं मरीचिकावारिमहाप्रवाहः ॥६७॥

अन्वय और पदार्थ-(अतिदोषदूषितैः) अत्यन्त दोषसे दूषित (मूढैः) मूढों करके (आरोपितम्) कल्पना किया हुआ (कदापि) कभी भी (आश्रयदूषकम्) आश्रयको दूषित करनेवाला (न) नहीं (भवेत्) हो (मरीचिकावारिमहाप्रवाहः) मरीचिकाके जलका बड़ा प्रवाह (ऊषरभूमिभागम्) ऊपरभूमिके भागको (न) नहीं (आर्द्रीकरोति) गीला करता है ॥ ६७ ॥

भावार्थ-अत्यन्त दोषसे दूषित हुए मूढ पुरुषोंका कल्पना किया हुआ पदार्थ अपने आश्रयको दूषित नहीं

करता, मरुमरीचिकाके जलका बड़ाभारी प्रवाह ऊपर भूमिके भागको भिगोता ही नहीं ॥ ९७ ॥

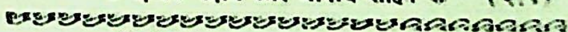
आकाशवल्लेपविदूरगोहमादित्यवद्भा-स्यविलक्षणोहम्। अहार्यवन्नित्यविनि-श्चलोहमम्भोधिवत्पारविवर्जितोहम् ९८

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (आकाशवत्) आकाशकी समान (लेपविदूरगः) लेपसे रहित (अहम्) मैं (आदित्यवत्) आदित्यकी समान (भास्यविलक्षणः) प्रकाश योग्य पदार्थोंसे न्यारा (अहम्) मैं (अहार्यवत्) पर्वतकी समान (नित्यविनिश्चलः) सर्वदा निश्चल (अहम्) मैं (अम्भोधिवत्) समुद्रकी समान (पार-विवर्जितः) पाररहित हूँ ॥ ९८ ॥

भावार्थ-मैं आकाशकी समान सकल लेपोंसे रहित सूर्यकी समान प्रकाशयोग्य पदार्थोंसे न्यारा सदा पहाड़की समान निश्चल और समुद्रकी समान अपार हूँ ९८

न मे देहेन सम्बन्धो मेघेनेव विहायसः। अतः कुतो मे मद्धर्मा जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तयः॥

अन्वय और पदार्थ-(विहायसः) आकाशका (मेघेन इव) मेघ करके जैसे (देहेन) देह करके (मे) मेरा (सम्बन्धः) सम्बन्ध (न) नहीं है (अतः) इसकारण (मद्धर्माः) मेरे धर्म (जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तयः) जाग्रत्-स्वप्न और सुषुप्ति (मे) मेरे (कुतः) कहाँ ॥ ९९ ॥



भावार्थ-जैसे आकाशका बादलोंसे कुछ सम्बन्ध नहीं है तैसे ही मेरा देहके साथ सम्बन्ध नहीं है तब देहके धर्म जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्तिसे तो सम्बन्ध होगा ही क्या ? ॥ ९९ ॥

उपाधिरायाति स एव गच्छति स एव कर्माणि करोति भुंक्ते। स एव जीर्यन्म्रियते सदाहं कुलाद्रिवन्निश्चल एव संस्थितः ॥ ५०० ॥

अन्वय और पदार्थ-(उपाधिः) उपाधि (आयाति) आता है (सः, एव) वह ही (गच्छति) जाता है (सः एव) वह ही (कर्माणि) कर्मोंको (करोति) करता है (भुंक्ते) भोगता है (सः, एव) वह ही (जीर्यन्) जीर्ण होता हुआ (म्रियते) मरता है (अहम्) मैं (सदा) नित्य (कुलाद्रिवत्) कुलाचलकी समान (निश्चलः एव) निश्चल ही (संस्थितः) स्थित हूँ ॥

भावार्थ-जो उपाधि है वही आती है और जाती है वही कर्म करती है,वही भोगती है और जीर्ण होकर मर जाती है,मैं तो सदा पर्वतकी समान निश्चल ही रहता हूँ

न मे प्रवृत्तिर्न च मे निवृत्तिः सदैकरूपस्य निरंशकस्य । एकात्मको यो निविडो निरन्तरो व्योमेव पूर्णः स कथं नु चेष्टते ॥ १ ॥

अन्वय और पदार्थ-(निरंशकस्य) निरवयव (सदैकरूपस्य) सदा एकरूप (मे) मेरी (प्रवृत्तिः) प्रवृत्ति (न) नहीं है (च) और (निवृत्तिः च) निवृत्ति भी (न) नहीं है (यः) जो (एकात्मकः) एकरूप (निविडः) घना (निरन्तरः) अन्तर रहित (व्योम-इव) आकाश की समान (पूर्णः) पूर्ण है (सः) वह (कथम्-नु) कैसे (चेष्टते) चेष्टा कर सकता है ? ॥ ५०१ ॥

भावार्थ-मैं कि-जो सर्वदा निरवयव और एकरूप हूँ उस मेरी न प्रवृत्ति है, न निवृत्ति है, जो एकरूप आनंदघन, अन्तररहित और आकाशकी समान पूर्ण है उस का क्रिया करना कैसे सम्भव होसकता है ॥ ५०१ ॥

पुण्यानि पापानि निरिन्द्रियस्य निश्चेतसो निर्विकृतेर्निराकृतेः । कुतो ममाखण्डसुखानुभूतेर्ब्रूते ह्यनन्वागतमित्यपि श्रुतिः ॥ २ ॥

अन्वय और पदार्थ-(निरिन्द्रियस्य) इन्द्रियरहित (निश्चेतसः) चित्तरहित (निर्विकृतेः) विकाररहित (निराकृतेः) निराकार (अखण्डसुखानुभूतेः) अखण्डसुखके अनुभवरूप (मम) मुझे (पुण्यानि) पुण्य (पापानि) पाप (कुतः) कहाँ (अनन्वागतम् इति) अनन्वागत इत्यादि (श्रुतिः अपि) श्रुति भी (ब्रूते) कहती है ॥ ५०२ ॥

भावार्थ-मैं इन्द्रियोंसे रहित, चित्तरहित, निर्विकार और अखण्डसुखका अनुभवरूप हूँ, मुझे पुण्य और पाप कैसे लगसकते हैं ? अन्धामतम् इत्यादि श्रुति भी ऐसा ही कहती है ॥ २ ॥

छायया स्पृष्टमुष्णं वा शीतं वा सुष्ठु दुष्ठु वा । न स्पृशत्येव यत्किंचित्पुरुषं तद्विलक्षणम् ॥ ३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(छायया) छाया करके (स्पृष्टम्) स्पर्श किया हुआ (शीतम्) ठण्डा (उष्णम्) गरम (वा) या (सुष्ठु) अच्छा (वा) या (दुष्ठु) बुरा (तद्विलक्षणम्) तिससे विलक्षण (पुरुषम्) पुरुषको (यत्-किञ्चित्-एव) जरा भी (न) नहीं (स्पृशति) स्पर्श करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—छाया करके स्पर्श किया हुआ ठण्डा वा गरम, अच्छा वा बुरा पदार्थ, छायासे विलक्षण पुरुषको जरा भी स्पर्श नहीं करता है ॥ ३ ॥

न साक्षिणं साक्ष्यधर्मा संस्पृशन्ति विलक्षणम् । अविकारमुदासीनं गृहधर्माः प्रदीपवत् ॥ ४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(गृहधर्माः) घरके धर्म (प्रदीपवत्) दीपकको जैसे (साक्ष्यधर्माः) दृश्यपदार्थोंके धर्म (अविकारम्) निर्विकार (उदासीनम्) उदासीन (विल-

क्षणम्) विलक्षण (साक्षिणम्) द्रष्टाको (न) नहीं (संस्पृशन्ति) स्पर्श करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ-जैसे घरके धर्म दीपकको स्पर्श नहीं करते तैसे ही सबसे विलक्षण निर्विकार और उदासीन साक्षी को दृश्यपदार्थोंके धर्म स्पर्श नहीं करते ॥ ४ ॥

रवेर्यथा कर्मणि साक्षिभावो वन्हेर्यथा दाहनियामकत्वम् । रज्जोर्यथारोपित-वस्तुसङ्गस्तथैव कूटस्थचिदात्मनो मे ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (कर्मणि) कर्ममें (रवेः) सूर्यका (साक्षिभावः) साक्षीपन है (यथा) जैसे (वन्हेः) अग्निका (दाहनियामकत्वम्) दाहमें नियामकपना है (यथा) जैसे (रज्जोः) रज्जुको (आरोपित-वस्तुसंगः) आरोपित वस्तुका संग है (तथा-एव) तैसे ही (कूटस्थचिदात्मनः) कूटस्थ चेतनरूप (मे) मेरा [साक्षिभावः] साक्षीपन है ॥ ५ ॥

भावार्थ-जैसे कर्ममें सूर्यका साक्षीपना है, जैसे दाह में अग्निका नियामकपना है और जैसे रज्जुको अँधेरे में मानेहुए सर्पका संग है तैसे ही मुझ कूटस्थ चैतन्य का साक्षीपना है ॥ ५ ॥

कर्तापि वा कारयितापि नाहं भोक्तापि वा भोजयितापि नाहम् । द्रष्टापि वा दर्शयितापि नाहं सोऽहं स्वयंज्योति-रनीदृगात्मा ॥ ६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (कर्त्ता) करनेवाला (वा) या (कारयिता-अपि) करानेवाला भी (न) नहीं हूँ (अहम्) मैं (भोक्ता-अपि) भोगनेवाला भी (वा) या (भोजयिता-अपि) भुगानेवाला भी (न) नहीं हूँ (द्रष्टा अपि) देखनेवाला भी (वा) या (दर्शयिता-अपि) दिखानेवाला भी (न) नहीं हूँ (सः) वह (अनीदृक्) इनसे विलक्षण (अहम्) मैं (स्वयंज्योतिः) स्वयंप्रकाश (आत्मा) आत्मा हूँ ॥ ६ ॥

भावार्थ-मैं करनेवाला वा करानेवाला, भोगनेवाला वा भोगवानेवाला और देखनेवाला तथा दिखानेवाला नहीं हूँ, मैं तो स्वयंप्रकाश और मन वचनसे निरूपण करनेके अयोग्य हूँ ॥ ६ ॥

चलत्युपाधौ प्रतिबिम्बलौल्यमौपाधिकं मूढधियो नयन्ति । स्वबिम्बभूतं रविवद्विनिष्क्रियं कर्तास्मि भोक्तास्मि हतोऽस्मि हेति ॥ ७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(मूढधियः) मूढबुद्धि पुरुष (उपाधौ) उपाधिके (चलति) चलने पर (औपाधिकम्) उपाधिके सम्बन्धसे प्रतीत होनेवाले (प्रतिबिम्बलौल्यम्) प्रतिबिम्बके चपलत्वको (कर्त्ता-अस्मि) कर्त्ता हूँ (भोक्ता-अस्मि) भोक्ता हूँ (हा हतः-अस्मि) हाय मारागया (इति) इस प्रकार (रविवत्) सूर्यकी समान (निष्क्रियम्) क्रियारहित (स्वबिम्बभूतम्) बिम्बभूत आत्मस्वरूपको (नयन्ति) प्राप्त करते हैं ॥ ७ ॥

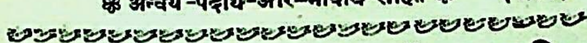
भावार्थ-जैसे अनेकों पात्रोंमें भरे जलमें जो सूर्यका प्रतिबिम्ब पड़ता है जब जल वायुसे हिले है उसके साथ सूर्यके प्रतिबिम्ब भी हिलें हैं उस समय मूढ़पुरुष समझें हैं कि-सूर्य हिल रहा है, परन्तु वास्तवमें सूर्यमें वह हिलनेकी क्रिया नहीं होती है तैसे ही उपाधिका चलन होने पर उस उपाधिके सम्बन्धसे प्रतीत होने वाली चपलताको मूढ़बुद्धिवाले पुरुष 'मैं कर्त्ता हूँ' 'मैं भोक्ता हूँ' 'हाय ! मैं मारागया' इसप्रकार चिंवस्वरूप निष्क्रिय आत्मस्वरूप मैं मान लेते हैं ॥ ७ ॥

जले वापि स्थले वापि लुठत्वेष जडात्मकः । नाहं विलिप्ये तद्धर्मैर्घटधर्मैर्नभो यथा ॥ ८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एषः) यह (जडात्मकः) जडस्वरूप देह (वापि) चाहे (जले) जलमें (वापि) चाहे (स्थले) स्थलमें (लुठतु) लौटे (तद्धर्मैः) उसके धर्मों करके (घटधर्मैः) घटके धर्मों करके (नभः-यथा) आकाश जैसे (अहम्) मैं (न) नहीं (विलिप्यते) लिप्त होता हूँ ॥ ८ ॥

भावार्थ-यह जडपदार्थमय शरीर चाहे जलमें लौटो और चाहे थलमें पड़ा रहो परन्तु जैसे घटके कंबुग्रीवत्व आदि धर्मोंसे आकाश लिप्त नहीं होता, तैसे ही मैं देह के धर्मोंसे लिप्त नहीं होता हूँ ॥ ८ ॥

कर्तृत्वभोक्तृत्वखलत्वमत्तताजडत्वबद्धत्वविमुक्ततादयः । बुद्धेर्विकल्पा न तु



सन्ति वस्तुनः स्वस्मिन्परे ब्रह्मणि केवलेऽद्वये ॥ ९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(कर्तृत्वभोक्तृत्वखलत्वमत्तताजडत्वबद्धत्वविमुक्ततादयः) कर्तापना, भोक्तापना, मत्तपना, बुद्धपना और मुक्तपना आदि (विकल्पाः) भेद (बुद्धेः) बुद्धिके (सन्ति) हैं (केवले) केवल (अद्वये) अद्वितीय (स्वस्मिन्) आत्मस्वरूप (परे-ब्रह्मणि-तु) परब्रह्ममें तो (वस्तुतः) वास्तवमें (न) नहीं हैं ॥९॥

भावार्थ-कर्तापना, भोक्तापना, खलपना, मत्तपना, बुद्धपना और विमुक्तपना आदि विकल्प बुद्धिके ही हैं, अतएव वह आत्मस्वरूप कि-जो केवल अद्वितीय परब्रह्म है उसमें वास्तविक नहीं हैं ॥ ९ ॥

सन्तु विकाराः प्रकृतेर्दशधा सहस्रधा वापि । किं मेऽसङ्गचितस्तैर्न घनः क्वचिदम्बरं स्पृशति ॥ १० ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्रकृतेः) प्रकृतिके (दशधा) दश प्रकारके (शतधा) सौ प्रकारके (वा) या (सहस्रधा अपि) सौ प्रकारके भी (विकाराः) विकार (सन्तु) हों (तैः) उनसे (असंगचित्तः) असंग और चेतनरूप (मे) मेरा (किम्) क्या है (घनः) बादल (क्वचित्) कहीं (अम्बरम्) आकाशको (स्पृशति) स्पर्श करता है

भावार्थ-प्रकृतिके दशों, सैंकडों वा हजारों विकार भले ही रहैं, उनसे असंग चेतनस्वरूप मेरा क्या संबंध

है ? अर्थात् कुछ सम्बन्ध नहीं है, क्या कभी बादल आकाशको स्पर्श कर सकते हैं ? कदापि नहीं ॥१०॥

अव्यक्तादि स्थूलपर्यन्तमेतद्विश्वं यत्राभासमात्रं प्रतीतम् । व्योमप्रख्यं सूक्ष्ममाद्यन्तहीनं ब्रह्माद्वैतं यत्तदेवाह-मस्मि ॥ ११ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एतत्) यह (अव्यक्तादि) सूक्ष्म से लेकर (स्थूलपर्यन्तम्) स्थूलपर्यन्त (विश्वम्) विश्व (यत्र) जिसमें (आभासमात्रम्) आभासमात्र (प्रतीतम्) प्रतीत होता है (यत्) जो (व्योमप्रख्यम्)आकाश की समान (आद्यन्तहीनम्) आदि अन्तरहित (अद्वैतम्) अद्वितीय (ब्रह्म) ब्रह्म है (तत्-एव) वह ही (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ ॥ ११ ॥

भावार्थ-आकाशकी समान सूक्ष्म, आदि तथा अन्त से रहित और अद्वितीय ब्रह्म कि जिसमें अव्यक्तसे लेकर स्थूलपर्यन्त यह सब जगत् आभासमात्र प्रतीत होता है, वह ब्रह्म मैं ही हूँ ॥ ११ ॥

सर्वाधारं सर्ववस्तुप्रकाशं सर्वाकारं सर्वगं सर्वशून्यम् । नित्यं शुद्धं निश्चलं निर्विकल्पं ब्रह्माद्वैतं यत्तदेवाहमस्मि ॥

अन्वय और पदार्थ-(सर्वधारम्) सबका आधार (सर्ववस्तुप्रकाशम्) सब वस्तुओंका प्रकाशक (सर्वा-

कारम्) सर्वरूप (सर्वगम्) सबमें व्यापक (सर्वशून्यम्) सबसे रहित (नित्यम्) नित्य (शुद्धम्) शुद्ध (निश्चलम्) निश्चल (निर्विकल्पम्) विकल्परहित (अद्वैतम्) अद्वितीय (यत्) जो (ब्रह्म) ब्रह्म है (तत्-एव) वह ही (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ ॥ १२ ॥

भावार्थ–सर्वाधार, सर्वप्रकाशक, सर्वरूप, सर्वव्यापक सबसे रहित, नित्य, शुद्ध, निश्चल, निर्विकल्प और अद्वितीय जो ब्रह्म है सो मैं हूँ ॥ १२ ॥

यत्प्रत्यस्ताशेषमायाविशेषं प्रत्यग्-
रूपं प्रत्ययागम्यमानम् । सत्यज्ञानान-
न्तमानन्दरूपं ब्रह्माद्वैतं यत्तदेवाहमस्मि॥

अन्वय और पदार्थ–(प्रत्यग्रूपम्) सर्वव्यापक (प्रत्ययागम्यमानम्) जिसका भाग इन्द्रियोंसे नहीं हो सकता (यत्प्रत्यस्ताशेषमायाविशेषम्) जिसमें मायाके सम्बन्धसे कोई भी भेद नहीं है (सत्यज्ञानानन्तम्) सत्य-ज्ञान-अनन्तरूप (यत्) जो (ब्रह्म) ब्रह्म है (तत्-एव) वह ही (ब्रह्म) ब्रह्म (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ १३

भावार्थ–सर्वव्यापक, इन्द्रियोंसे जाननेमें आनेवाला, सच्चिदानन्दरूप, अनन्त, अद्वितीय और जिसमें मायाके सम्बन्धसे कोई भी भेद नहीं है ऐसा जो ब्रह्म वह ही मैं हूँ ॥ १३ ॥

निष्क्रियोस्म्यविकारोस्मि निष्कलो-

ऽस्मि निराकृतिः । निर्विकल्पोऽस्मि नित्योऽस्मि निरालम्बोऽस्मि निर्द्वयः॥

अन्वय और पदार्थ-(निष्क्रियः) क्रियारहित (अस्मि) हूँ (अविकारः) विकाररहित (अस्मि) हूँ (निष्कलः) अंशरहित (निराकृतिः) आकाररहित (अस्मि) हूँ (निर्विकल्पः) विकल्परहित (अस्मि) हूँ (निरालम्बः) आलम्बनरहित (निर्द्वयः) द्वैतपनेसे रहित (अस्मि) हूँ ४

भावार्थ-मैं क्रियारहित, विकाररहित, अंशरहित, आकाररहित, विकल्परहित, नित्य, आश्रयरहित और अद्वितीय हूँ ॥ १४ ॥

सर्वात्मकोऽहं सर्वोऽहं सर्वातीतोऽहमद्वयः । केवलाखण्डबोधोहमानन्दोहं निरन्तरम् ॥ १५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (सर्वात्मकः) सर्वरूप (अहम्) मैं (सर्वः) सर्व (अहम्) मैं (सर्वातीतः) सबसे परे (अद्वयः) अद्वितीय (अहम्) मैं (केवलाखण्डबोधः) केवल अखण्ड ज्ञानस्वरूप (अहम्) मैं (आनन्दः) आनन्दरूप (निरन्तरम्) अन्तररहित [अस्मि] हूँ ॥ १५ ॥

भावार्थ-मैं सबका आत्मा, सर्वरूप, सबसे अलग अद्वितीय, केवल अखण्डज्ञानरूप और निरन्तर आनन्दरूप हूँ ॥ १५ ॥

स्वाराज्यसाम्राज्यविभूतिरेषा भव-त्कृपा श्रीमहिमप्रसादात् । प्राप्ता मया श्रीगुरवे महात्मने नमो नमस्तेऽस्तु पुन-र्नमोऽस्तु ॥ ५१६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(मया) मैंने (भवत्कृपाश्रीमहिमप्रसादात्) आपकी कृपाकी उत्तम महिमाके प्रसादसे (एषा) यह (स्वराज्यसाम्राज्यविभूतिः) ब्रह्मानन्दरूपचक्रवर्तीपनेकी विभूति (प्राप्ता) पाई (ते) आप (महात्मने) महात्मा (श्रीगुरवे) श्रीगुरुके अर्थ (नमः) प्रणाम (अस्तु) हो (पुनः) फिर (नमः) प्रणाम (अस्तु) हो ॥ १६ ॥

भावार्थ-जिन आपकी करुणाकी महिमाके श्रेष्ठ प्रसाद से मैंने ब्रह्मानन्दके चक्रवर्तीपनेका ऐश्वर्य पाया है ऐसे आप महात्मा गुरुके अर्थ वार वार प्रणाम है ॥ १६ ॥

महास्वप्ने मायाकृतजनिजरामृत्युगहने, भ्रमन्तं क्लिश्यन्तं बहुलतरतापैरनुदिनम् । अहङ्कारव्याघ्रव्यथितमिममत्यन्तकृपया, प्रबोध्य प्रस्वापात्परमवितवान्मामसि गुरो ॥

अन्वय और पदार्थ-(गुरो) हे गुरो ! (महास्वप्ने) बड़े भारी स्वप्नमें (मायाकृतजनिजरामृत्युगहने) माया-

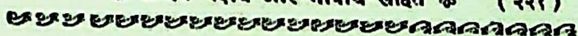
रचित जन्म जरा मृत्युरूप वनमें (भ्रमन्तम्) घूमतेहुए (अनुदिनम्) प्रतिदिन (बहुलतरतापैः) बहुतसे तापों से (क्लिश्यन्तम्) क्लेश पातेहुए (अहङ्कारव्याघ्रव्यथितम्) अहङ्काररूप व्याघ्रसे पीड़ा पाते हुए (इमम्) इस (माम्) मुझको (अत्यन्तकृपया) परमकृपा करके (प्रस्वापात्) स्वप्नमेंसे (प्रबोध्य) जगाकर (परम्) अत्यन्त (अवितवान्-असि) रक्षाकी है ॥ १७ ॥

भावार्थ-हे गुरो! जो मैं बड़ेभारी स्वप्नके विषैं माया के रचे जन्म, बुढ़ापा और मरणरूप घोर वनमें भटकता फिरता था प्रतिदिन बड़े २ तापोंसे क्लेश पारहा था, और अहङ्काररूपी बाघसे व्यथित होरहा था, तिस मुझको आपने परमकृपा करके स्वप्नमेंसे जगादिया और बड़ीभारी रक्षा करी है ॥ १७ ॥

नमस्तस्मै सदैकस्मै कस्मैचिन्महसे नमः। यदेतद्विश्वरूपेण राजते गुरुराज ते

अन्वय पदार्थ-(गुरुराज) हे गुरुराज (यत्) जो एत-द्विश्वरूपेण) इस विश्वरूपसे (राजते) विराजमान है (तस्मै) तिस (कस्मैचित्) मन वाणीसे जाननेमें न आनेवाले (सदा) त्रिकालमें (एकरूपम्) एकरूप (महसे) ज्योतिःस्वरूप (ते) आपके अर्थ (नमः) प्रणाम है (नमः) प्रणाम है ॥ १८ ॥

भावार्थ-हे गुरुराज! जो यह जगत्स्वरूपसे भासरहा है तिस, मन वचनके अगोचर सदा एकरूप ज्योतिःस्वरूप आपको वार वार प्रणाम है ॥ १८ ॥



इति नतमवलोक्य शिष्यवर्यं समधिगतात्मसुखं प्रबुद्धतत्त्वम् । प्रमुदितहृदयः स देशिकेन्द्रः, पुनरिदमाह वचः परं महात्मा ॥ १९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इति) इसप्रकार (समधिगतात्मतत्त्वम्) प्राप्त हुआ है आत्मतत्त्व जिसको ऐसे (प्रबुद्धतत्त्वम्) तत्त्वको जाने हुए (शिष्यवर्यम्) श्रेष्ठ शिष्यको (नतम्) प्रणाम करता हुआ (अवलोक्य) देखकर (प्रमुदितहृदयः) हृदयमें प्रसन्न हुआ (सः) वह (महात्मा) महात्मा (देशिकेन्द्रः) सद्गुरु (पुनः) फिर (इदम्) यह (परम्) श्रेष्ठ (वचः) वचन (आह) बोला

भावार्थ-इस प्रकार जिसको आत्मसुख प्राप्त होगया और जिसने तत्त्वको जान लिया ऐसे उत्तम शिष्यको प्रणाम करते हुए देखकर हृदयमें परमप्रसन्न हुए इन महात्मा सद्गुरुने फिर यह आगे लिखा श्रेष्ठ वचन कहा

ब्रह्मप्रत्ययसन्ततिर्जगतो ब्रह्मैव सत्सर्वतः, पश्याध्यात्मदृशा प्रशान्तमनसा सर्वास्ववस्थास्वपि । रूपादन्यदवेक्षितं किमभितश्चक्षुष्मतां दृश्यते, तद्वद्ब्रह्मविदः सतः किमपरं बुद्धेर्विहारास्पदम् ॥

अन्वय और पदार्थ-(जगत्) संसार (ब्रह्मप्रत्ययसन्ततिः) ब्रह्मकी प्रतीतिका प्रवाह है (अतः) इस कारण (प्रशान्तमनसा) परम शान्त मनसे (अध्यात्मदृशा) अध्यात्मदृष्टि करके (सर्वतः) सर्वत्र (सर्वासु अपि) सब ही (अवस्थासु) अवस्थाओंमें (सतः) सत्स्वरूप (ब्रह्म-एव) ब्रह्मको ही (पश्य) देख (चक्षुष्मताम्) नेत्रवालोंका (अभितः) चारों ओर (अवेक्षितम्) देखा हुआ (रूपात्) रूपसे (अन्यत्) और (किम्) क्या (दृश्यते) देखा जाता है (तद्वत्) तैसे ही (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानीकी (बुद्धेः) बुद्धिका (विहारास्पदम्) विहारका स्थान (सतः) ब्रह्मसे (अपरम्) और (किम्) क्या है ? ॥ २० ॥

भावार्थ-यह जो जगत् है ब्रह्मकी प्रतीतिका ही प्रवाह है, इसकारण मनको शान्त रखकर ज्ञानदृष्टिसे सब स्थानोंमें और सब अवस्थाओंमें ब्रह्म ही है, ब्रह्मसे अन्य कुछ नहीं है ऐसा देख, जैसे नेत्रवाले पुरुषोंको जो चारों ओर देखनेमें आता है वह रूपके सिवाय और कुछ भी नहीं है तिसीप्रकार ब्रह्मवेत्ताकी बुद्धिके विहारका स्थान ब्रह्मके सिवाय और कुछ नहीं है ॥ २० ॥

कस्तां परानन्दरसानुभूतिमुत्सृज्य शून्येषु रमेत विद्वान् । चन्द्रे महाल्हादिनि दीप्यमाने चित्रेन्दुमालोकयितुं क इच्छेत् ॥ २१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(कः) कौन (विद्वान्) विवेकी (ताम्) उस (परानन्दरसानुभूतिम्) परमानन्द रसके अनुभवको (उत्सृज्य) छोड़कर (शून्येषु) शून्योंमें (रमेत) रमण करे (महाल्हादिनि) परमसुख देनेवाले (चन्द्रे) चन्द्रमाके (दीप्यमाने) प्रकाशमान होते हुए (कः) कौन (चित्रेन्दुम्) चित्रके चन्द्रमाको (आलोकयितुम्) देखनेको (इच्छेत्) चाहै ॥ ११ ॥

भावार्थ-कौन विवेकी पुरुष इस परम आनन्दरसके अनुभवको छोड़कर शून्य पदार्थोंमें रमण करेगा ? कोई नहीं, अत्यन्त सुखदायक चन्द्रमाका प्रकाश होते हुए चित्रमें बनाए हुए चन्द्रमाको देखनेकी किसको इच्छा होगी ? ॥ २१ ॥

असत्पदार्थानुभवेन किंचिन्न ह्यस्ति तृप्तिर्न च दुःखहानिः । तदद्वयानन्दरसानुभूत्या तृप्तः सुखं तिष्ठ सदात्मनिष्ठया ॥ २२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(असत्पदार्थानुभवेन) असत् पदार्थोंके अनुभवसे (किञ्चित्) कुछ (तृप्तिः) तृप्ति (न) नहीं (च) और (दुःखहानिः) दुःखकी हानि (नहि) नहीं (अस्ति) है (तत्) तिससे (अद्वयानन्दरसानुभूत्या) अद्वितीय आनन्दरसके अनुभवसे (तृप्तः) तृप्त हुआ (सदा) सर्वदा (आत्मनिष्ठया) आत्मनिष्ठा करके (सुखम्) सुखपूर्वक (तिष्ठ) स्थित हो ॥ २२ ॥

भावार्थ–मिथ्या पदार्थोंके अनुभवसे कुछ तृप्ति नहीं मिलती और दुःख भी दूर नहीं होता इस कारण तू अद्वितीय आनन्दरसके अनुभवसे तृप्त होकर सब काल में आत्मनिष्ठामें सुखपूर्वक स्थित हो ॥ २२ ॥

स्वमेव सर्वथा पश्यन्मन्यमानः स्वमद्वयम् । स्वानन्दमनुभुञ्जानः कालं नय महामते ॥ २३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(महामते) हे बड़े बुद्धिमान् (सर्वथा) सबप्रकारसे (स्वम् एव) आत्मस्वरूपको ही (पश्यन्) देखताहुआ (स्वम्) अपनेको (अद्वयम्) अद्वितीय (मन्यमानः) मानताहुआ (स्वानन्दम्) आत्मानन्दको (अनुभुञ्जानः) भोगताहुआ (कालम्) समयको (नय) व्यतीत कर ॥ २३ ॥

भावार्थ–हे परमविवेकी शिष्य ! तू सब स्थलोंमें अपनेको ही देखता है अपनेको अद्वितीय मानता और अपनेको ही भोगता हुआ निजस्वरूपके आनन्दमें कालक्षेप कर॥ २३ ॥

अखण्डबोधात्मनि निर्विकल्पे विकल्पनं व्योम्नि पुरप्रकल्पनम् । तदद्वयानन्दमयात्मना सदा शान्तिं परामेत्य भजस्व मौनम्॥ २४ ॥



अन्वय और पदार्थ-(अखण्डबोधात्मनि) अखण्ड-ज्ञानरूप (निर्विकल्पे) निर्विकल्प (आत्मनि) आत्मामें (विकल्पनम्) भेदकी कल्पना करना (व्योम्नि) आकाशमें (पुरप्रकल्पनम्) नगरकी कल्पना करना है (तत्) तिससे (सदा) सर्वदा (आनन्दमयात्मना) आनन्दमयस्वरूपसे (पराम्) परम (शान्तिम्) शान्तिको (एत्य) प्राप्त होकर (मौनम्) मौनको (भजस्व) सेवन कर

भावार्थ-अखण्ड ज्ञानस्वरूप भेदशून्य आत्मामें भेदकी कल्पना करना आकाशमें नगरकी कल्पना करनेकी समान मिथ्या है इसकारण तू सर्वदा आनन्दमयरूपसे परम-शान्तिको पाकर मौनभावको धारण कर ॥ २४ ॥

तूष्णीमवस्था परमोपशान्तिर्बुद्धेरसत्कल्पविकल्पहेतोः । ब्रह्मात्मनो ब्रह्मविदो महात्मनो यत्राद्वयानन्दसुखं निरन्तरम् ॥ २५ ॥

अन्वय औरप दार्थ-(असत्कल्पविकल्पहेतोः) मिथ्या-पदार्थोंका संकल्प विकल्प होनेकी कारणरूप (बुद्धेः) बुद्धिकी (परमोपशान्तिः) परमशान्ति (तूष्णीम्-अवस्था) मौनावस्था है (यत्र) जिसमें (ब्रह्मात्मना) ब्रह्मरूपसे (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी (महात्मनः) महात्माको ((निरन्तरम्) निरन्तर (अद्वयानन्दसुखम्) अद्वितीय आनन्दका सुख होता है॥ २५ ॥

भावार्थ मिथ्या पदार्थोंके संकल्प विकल्प होनेकी कारणरूप बुद्धिकी जो परमशान्ति सो मौन अवस्था है, कि-जिस मौनावस्थाके होनेपर ब्रह्मरूपसे ब्रह्मको जानने वाले महात्माको निरन्तर आनन्दभरा सुख रहता है२५

नास्ति निर्वासनान्मौनात्परं सुखकृदुत्तमम् । विज्ञातात्मस्वरूपस्य स्वानन्दरसपायिनः ॥ २६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विज्ञातात्मस्वरूपस्य) आत्मस्वरूपके ज्ञाता (स्वानन्दरसपायिनः) निजानन्दका रस पीनेवालेको (निर्वासनात्) वासनारहित (मौनात्) मौनसे (परम्) अधिक (सुखकृत्) सुखकारी (उत्तमम्) उत्तम पदार्थ (न) नहीं (अस्ति) है ॥ २६ ॥

भावार्थ--आत्मस्वरूपके ज्ञाता और सर्वदा आनन्दरसको पीनेवाले पुरुषको, वासनारहित मौनसे बढ़कर सुखदायक और कोई उत्तम पदार्थ नहीं है ॥ २६ ॥

गच्छंस्तिष्ठन्नुपविशञ्छयानो वान्यथापि वा। यथेच्छया वसेद्विद्वानात्मारामः सदा मुनिः ॥ २७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आत्मारामः) आत्मस्वरूपमें रमण करनेवाला (सदा) सर्वदा (मुनिः) मौनधारी (विद्वान्) तत्त्ववेत्ता (यथेच्छया) अपनी इच्छानुसार (गच्छन्) चलताहुआ (तिष्ठन्) ठहरताहुआ (उप-

शन्) बैठताहुआ (वा) या (शयानः) सोता हुआ (अपि वा) या (अन्यथा) और प्रकारसे (वसेत्) रहे।

भावार्थ-आत्माराम और सदा मौन रखनेवाला विद्वान् अपनी इच्छानुसार चले खड़ा रहे, बैठारहे, सोता रहे अथवा अन्य कोई क्रिया करे ॥ ५२७ ॥

न देशकालासनदिग्यमादिलक्ष्याद्यपेक्षाप्रतिबद्धवृत्तेः । संसिद्धतत्त्वस्य महात्मनोऽस्ति स्ववेदने का नियमाद्यवस्था

अन्वय और पदार्थ-(अप्रतिबद्धवृत्तेः) प्रतिबन्धरहित वृत्तिवाले (संसिद्धतत्त्वस्य) तत्त्वज्ञानी (महात्मनः) महात्माको (देशकालासनदिग्यमादिलक्ष्याद्यपेक्षा) देश काल आसन, दिशा और यम आदिकी अपेक्षा (न) नहीं (अस्ति) है (स्ववेदने) आत्माको जाननेमें (नियमाद्यवस्था) नियम आदिकी आवश्यकता (का) क्या ॥ २८ ॥

भावार्थ-बन्धनरहित वृत्तिवाले तत्त्वज्ञानी महात्मा को देश, काल,आसन,दिशा और यम नियमादि साधनों की आवश्यकता नहीं है, अपने स्वरूपको जाननेमें नियमादिकी आवश्यकता ही क्या? ॥ २८ ॥

घटोऽयमिति विज्ञातुं नियमः कोन्वपेक्ष्यसे । विना प्रमाणसुष्ठुत्वं यस्मिन् सति पदार्थधीः ॥ २९ ॥ अयमात्मा

नित्यसिद्धः प्रमाणे सति भासते। न देशं नापि वा कालं न शुद्धिं वाप्यपेक्षते ३०

अन्वय और पदार्थ-(अयम्) यह (घटः) घड़ा है (इति) ऐसा (विज्ञातुम्) जाननेको (यस्मिन्-सति) जिसके होने पर (पदार्थधीः) पदार्थका ज्ञान होता है (प्रमाणसुष्ठुत्वं-विना) प्रमाणकी सुष्टुताके सिवाय (कः-नु) कौनसा (नियमः) नियम (अपेक्ष्यते)अपेक्षा किया जाता है (अयम्) यह (नित्यसिद्धः) नित्यसिद्ध (आत्मा) आत्मा (प्रमाणे-सति) प्रमाणके होने पर (भासते) भासता है (देशम्) देशको (न) नहीं (अपिवा) और (कालम्) कालको (न) नहीं (अपिवा) और (शुद्धिम्) शुद्धिको (न) नहीं (अपेक्षते) अपेक्षा करता है ॥ २९ ॥ ३० ॥

भावार्थ—जैसे 'यह घडा है' इस बातको जाननेमें, रूपको जाननेवाले चक्षुकी उत्तमताके सिवाय और किसी नियमकी आवश्यकता नहीं है तैसे ही आत्माको जानने में बुद्धिकी शुद्धताके सिवाय देश, काल या शरीर बुद्धि आदिकी कोई आवश्यकता नहीं है, बुद्धि शुद्ध होय तो यह नित्यशुद्ध आत्मा स्वयं ही भास जाता है २९॥३०

देवदत्तोऽहमित्येतद्विज्ञानं निरपेक्षकम्। तद्वद् ब्रह्मविदोप्यस्य ब्रह्माहमिति वेदनं

अन्वय और पदार्थ-(अहम्) मैं (देवदत्तः) देवदत्त हूँ (इति) ऐसा (एतत्) यह (ज्ञानम्) ज्ञान

(निरपेक्षकम्) निरपेक्ष है (तद्वत्) तैसे ही (अस्य) इस (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानीका (अहम्) मैं (ब्रह्म) ब्रह्म हूँ (इति) यह (वेदनम्) ज्ञान है ॥ ३१ ॥

भावार्थ-जैसे 'मैं देवदत्त हूँ' इसको जाननेमें दूसरे किसीकी भी अपेक्षा नहीं है, तिसीप्रकार 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा जाननेमें इस ब्रह्मज्ञानीको भी और किसीकी अपेक्षा नहीं है ॥ ३१ ॥

भानुनेव जगत्सर्वं भासते यस्य तेजसा अनात्मकमसत्तुच्छं किं नु तस्यावभासकम् ॥ ३२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सर्वम्) सब (जगत्) संसार (भानुना-इव) सूर्य करके जैसे (यस्य) जिसके (तेजसा) तेजसे (भासते) भासता है (अनात्मकम्) जड (असत्) मिथ्या (तुच्छम्) तुच्छ पदार्थ (किम्-नु) क्या (तस्य) उसका (अवभासकम्) प्रकाशक होसकता है ॥ ३२ ॥

भावार्थ-सूर्यकी समान जिसके तेजसे सकल जगत् प्रकाशित होरहा है, उसका प्रकाश क्या मिथ्या भूत तुच्छ जड पदार्थोंसे होसकता है ? ॥ ३२ ॥

वेदशास्त्रपुराणानि भूतानि सकलान्यपि । येनार्थवन्ति तं किं नु विज्ञातारं प्रकाशयेत् ॥ ३३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वेदशास्त्रपुराणानि) वेद शास्त्र और पुराण (सकलानि) सकल (भूतानि-अपि) भूत भी (येन) जिस करके (अर्थवन्ति) प्रकाशवान् हैं (तम्) उस (विज्ञातारम्) विज्ञाताको (किम्-नु) क्या (प्रकाशयेत्) प्रकाशित करे ॥ ३३ ॥

भावार्थ-वेद, शास्त्र, पुराण और सकल भूत जिसके तेजसे प्रकाशित हैं उस ज्ञाता पदार्थका प्रकाश दूसरे किस पदार्थसे होसकता है ? किसीसे नहीं ॥ ३३ ॥

एष स्वयंज्योतिरनन्तशक्तिरात्मा-प्रमेयः सकलानुभूतिः यमेव विज्ञाय विमुक्तबन्धो जयत्ययं ब्रह्मविदोत्तमोत्तमः

अन्वय और पदार्थ-(एषः) यह (आत्मा) आत्मा (स्वयंज्योतिः) स्वयंप्रकाश (अनन्तशक्तिः) अनन्तशक्तिवाला (अप्रमेयः) प्रमाणसे अगम्य (सकलानुभूतिः) सबका अनुभव करनेवाला है (यम्) जिसको (विज्ञाय-एव) जानकर ही (विमुक्तबन्धः) बन्धनसे छूटा हुआ (अयम्) यह (उत्तमोत्तमः) परमोत्तम (ब्रह्मवित्) ब्रह्मज्ञानी (जयति) सर्वश्रेष्ठ होता है ३४

भावार्थ-यह आत्मा स्वयंप्रकाश, अनन्तशक्तिवाला प्रमाणोंसे अगम्य और सबका अनुभव करनेवाला है, कि-जिसको जानकर बन्धनमेंसे छूटा हुआ सर्वोत्तम ब्रह्मज्ञानी विजय पाता है ॥ ३४ ॥

न खिद्यते नो विषयैः प्रमोदते न सज्जते नापि विरज्यते च। स्वस्मिन्

सदा क्रीडति नन्दति स्वयं निरन्तरा-
नन्दरसेन तृप्तः ॥ ३५ ॥

अन्वय और पदार्थ—(निरन्तरानन्दरसेन) निरन्तर आनन्दरससे (तृप्तः) तृप्त हुआ (न) नहीं (खिद्यते) खेद पाता है (न) नहीं (विषयैः) विषयोंसे (प्रमोदते) प्रसन्न होता है (न) नहीं (सज्जते) आसक्त होता है (अपि) और (न) नहीं (विरज्यते) विरक्त होता है (सदा) सर्वदा (स्वस्मिन्) अपनेमें (क्रीडति) क्रीड़ा करता है (स्वयम्) आप (नन्दति) आनन्द भोगता है ३५

भावार्थ-अखण्ड आनन्दरससे तृप्त हुआ ब्रह्मज्ञानी न खिन्न होता है, न विषयोंसे आनन्द मानता है, न कहीं आसक्त होता है, और न किसीसे उकताता है, किन्तु सदा आप ही अपने स्वरूपमें क्रीडा करता है और आप ही आनन्द भोगता है ॥ ३५ ॥

क्षुधां देहव्यथां त्यक्त्वा बालः क्रीडति वस्तुनि। तथैव विद्वान् रमते निर्ममो निरहं सुखी ॥ ३६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(बालकः) बालक (क्षुधाम्) भूखको (देहव्यथाम्) शरीरकी पीड़ाको (त्यक्त्वा) त्याग कर (वस्तुनि) पदार्थोंमें (क्रीडति) क्रीडा करता है (तथा-एव) तैसे ही (निर्ममः) ममतारहित (निरहम्) निरहंकार (सुखी) सुखको प्राप्त (विद्वान्) विवेकी (रमते) रमण करता है ॥ ३६ ॥

भावार्थ जैसे बालक भूख और शरीरकीकी पीड़ाको भूलकर खिलौनोंमें खेलता रहता है तैसे ही अहंकार और ममतारहित सुखको प्राप्त हुआ ज्ञानी भी सब को भूलकर आत्मविचारमें ही मग्न रहता है ॥ ३६ ॥

चिन्ताशून्यमदैन्यभैक्षमशनं पानं सरिद्वारिषु। स्वातन्त्र्येण निरंकुशा स्थितिरभीर्निद्रा श्मशाने वने। वस्त्रं क्षालनशोषणादिरहितं दिग्वास्तुशय्या महीसञ्चारो निगमान्तवीथिषु विदां क्रीडा परे ब्रह्मणि ॥ ३७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(विदाम्) ज्ञानियोंका (चिन्ताशून्यम्) चिन्ताहीन (अदैन्यभैक्षम्) दीनताके बिना मिलाहुआ भिक्षाका अन्न (अशनम्) भोजन (सरिद्वारिषु) नदियोंके नालोंमें (पानम्) पीना (स्वातन्त्र्येण) स्वतन्त्रताके साथ (निरंकुशा) वेरोक (स्थितिः) रहन (श्मशाने) श्मशानमें (वने) वनमें (अभीः) निर्भय (निद्रा) सोना (क्षालनशोषणादिरहितम्) धोने सुखाने आदिसे रहित (दिक्) दिशा (वस्त्रम्) वस्त्र (मही) पृथ्वी (वास्तुशय्या) घरकी शय्या (निगमान्तवीथिषु) वेदान्तकी गलियोंमें (संचारः) विचरना (परे, ब्रह्मणि) परब्रह्ममें (क्रीडा) क्रीड़ा [भवति] होती है ॥३७॥

भावार्थ-ब्रह्मज्ञानी पुरुष चिन्ता और दीनताके बिना मिला हुआ भिक्षाका अन्न खाते हैं, नदियोंका जल

पीते हैं, स्वतन्त्रताके साथ निरंकुश रहते हैं, श्मशानमें वा वनमें निर्भय सोते हैं, जिसको धोना वा सुखाना नहीं पड़ता ऐसा दिशारूप वस्त्र पहरते हैं घरकी समान पृथ्वीकी शय्या पर सोते हैं वेदान्तकी गलियोंमें विचरते हैं और परब्रह्ममें क्रीडा करते हैं ॥ ३७ ॥

विमानमालम्ब्य शरीरमेतद् भुनक्त्य-
शेषान्विषयानुपस्थितान् । परेच्छया
बालवदात्मवेत्ता योऽव्यक्तलिंगोऽननु-
षक्तबाह्यः ॥ ३८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (अव्यक्तलिंगः) अप्रकट चिन्हवाला (अननुषक्तबाह्यः) बाहरी पदार्थोंमें आसक्त न हुआ (ब्रह्मवेत्ता) ब्रह्मज्ञानी है [सः] वह (बालवत्) बालककी समान (परेच्छया) अन्यकी इच्छासे (एतत्) इस (शरीरम्) शरीररूप (विमानम्) विमानको (आलम्ब्य) आश्रय करके (उपस्थितान्) प्राप्त हुए (अशेषान्) सकल (विषयान्) विषयोंको (भुनक्ति) भोगता है ॥ ३८ ॥

भावार्थ-जिसके वर्ण,आश्रम आदिके चिन्ह जाने नहीं जाते ऐसा बाहरी पदार्थोंमें आसक्तिरहित ब्रह्मज्ञानी इस शरीररूप सवारीमें रहकर दूसरेकी इच्छासे आये हुए सकल विषयोंको बालककी समान भोगता है ३८

दिगम्बरो वापि च साम्बरो वा त्वग-

म्बरो वापि चिदम्बरस्थः । उन्मत्तवद्वापि च बालवद्वा पिशाचवद्वापि चरत्यवन्याम्

अन्वय और पदार्थ-(चिदम्बरस्थः) चैतन्यरूपी आकाशमें रहनेवाला (अवन्याम्) भूतलपर (अपि वा) या (दिगम्बरः) नंगा (वा) या (साम्बरः, च) वस्त्र धारण किये भी (अपि वा) या (त्वगम्बरः) वृक्षों की छाल ओढे (अपि वा) या (उन्मत्तवत्) उन्मत्तकी समान (वा) या (बालवत्) बालककी समान (च) भी (अपि वा) या (पिशाचवत्) पिशाचकी समान (चरति) विचरता है ॥ ३९ ॥

भावार्थ-चैतन्यरूपी आकाशमें रहनेवाला ब्रह्मज्ञानी पृथ्वी पर नङ्गा फिरता है, वस्त्र पहर कर फिरता है वृक्ष की छाल ओढकर फिरता है, उन्मत्तकी समान फिरता है, बालककी समान फिरता है और पिशाचकी समान भी फिरता है ॥ ३९ ॥

कामान्निष्कामरूपी संश्चरत्येकचरो मुनिः । स्वात्मनैव सदा तुष्टः स्वयं सर्वात्मना स्थितः ॥ ४० ॥

अन्वय और पदार्थ-(एकचरः) अकेला फिरनेवाला (सदा) सर्वदा (स्वात्मना-एव) अपने स्वरूपसे ही (तुष्टः) तृप्त (स्वयम्) आप (सर्वात्मना) सर्वरूपसे (स्थितः) स्थित (मुनिः) ज्ञानी (निष्कामरूपी सन्)

निष्कामरूप होता हुआ (कामान्) विषयोंको (चरति) भोगता है ॥ ४० ॥

भावार्थ—अकेला विचरनेवाला, सर्वदा अपने स्वरूप से ही तृप्त और आप ही सर्वरूपसे रहनेवाला ब्रह्मज्ञानी निष्कामभावसे विषयोंको भोगता है ॥ ४० ॥

क्वचिन्मूढो विद्वान्क्वचिदपि महा-राजविभवः । क्वचिद् भ्रान्तः सौम्यः क्वचिदजगराचारकलितः ॥ क्वचित्पात्रीभूतः क्वचिदवमतः क्वाप्यविदितश्चरत्येवं प्राज्ञः सततपरमानन्दसुखितः ॥४१॥

अन्वय और पदार्थ-(सततपरमानन्दसुखितः) निरन्तर परमानन्दसे सुखको प्राप्त हुआ (प्राज्ञः) ब्रह्मज्ञानी (क्वचित्) कहीं (मूढः) मूढ (विद्वान्) विवेकी (क्वचित्-अपि) कहीं (महाराजविभवः) चक्रवर्ती राजाके ऐश्वर्यवाला (क्वचित्) कहीं (भ्रान्तः) भ्रम में पड़ा (सौम्यः) सज्जन (क्वचित्) कहीं (अजगराचारकलितः) अजगरके समान आचरण रखनेवाला (क्वचित्) कहीं (पात्रीभूतः) पात्ररूप (क्वचित्) कहीं (अवमतः) अपमानित हुआ (क्वापि) कहीं (अविदितः) जाननेमें न आता हुआ (एवम्) इस प्रकार (चरति) विचरता है ॥ ४१ ॥

भावार्थ निरन्तर परम आनन्दसे सुखको प्राप्त हुआ ब्रह्मज्ञानी कहीं मूढ होकर, कहीं विद्वान होकर कहीं

चक्रवर्ती राजाके ऐश्वर्यवाला होकर, कहीं भटकता फिरताहुआ, कहीं भलामानस होकर, कहीं अजगरके सी रहन रखकर, कहीं सभ्य होकर, कहीं अपमानित होकर और कहीं जाननेमें ही न आवे ऐसी रीतिसे विचरता है ॥ ४१ ॥

निर्धनोऽपि सदा तुष्टोऽप्यसहायो महाबलः । नित्यतृप्तोप्यभुञ्जानोऽप्यसमः समदर्शनः ॥ अपि कुर्वन्नकुर्वाणश्चाभोक्ता फलभोग्यपि । शरीर्यप्यशरीर्येषः परिच्छिन्नोऽपि सर्वगः ॥ ४२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(एषः) यह (निर्धनः-अपि) निर्धन होकर भी (सदा) सर्वदा (तृप्तः) तृप्त (असहायः-अपि) सहायक रहित होकर भी (महाबलः) परमबली (अभुञ्जानः-अपि) भोग न करता हुआ भी (नित्यतृप्तः) सदातृप्त (असमः-अपि) विलक्षण होकर भी (समदर्शनः) समदृष्टि (कुर्वन्-अपि) करता हुआ भी (अकुर्वाणः) न करनेवाला (च) और (फलभोगी-अपि) फलोंको भोगता हुआ भी (अभोक्ता) न भोगनेवाला (शरीरी-अपि) देहधारी होकर भी (अशरीरी) शरीरसे पृथक् (परिच्छिन्नः अपि) परिच्छिन्न होकर भी (सर्वगः) सर्वव्यापक [अस्ति] है ॥

भावार्थ-ब्रह्मज्ञानी निर्धन होने पर भी सदा संतुष्ट, किसी सहायकके न होने पर भी महाबली, विषयोंको

विना भोगे भी सदा तृप्त, विलक्षण होने पर भी सम-दृष्टिवाला, कर्मोंको करता हुआ भी अकर्त्ता, फलोंको भोगता हुआ भी अभोक्ता, देहधारी होकर भी देहसे पृथक् और परिछिन्न होकर भी व्यापक है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अशरीरं सदा सन्तमिमं ब्रह्मविदं क्वचित् । प्रियाप्रिये न स्पृशतस्तथैव च शुभाशुभे ॥ ४४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सदा) सब कालमें (अशरीर-सन्तम्) शरीराभिमानरहित हुए (इमम्) इस (ब्रह्म-विदम्) ब्रह्मज्ञानीको (क्वचित्) कभी भी (प्रियाप्रिये) प्रिय और अप्रिय (तथा एव) तैसे ही (शुभाशुभे च) शुभ अशुभ भी (न) नहीं (स्पृशतः) स्पर्श करते हैं ४४

भावार्थ-सर्वदा शरीराभिमानसे शून्य रहनेंवाले ब्रह्मज्ञानीको कभी भी प्रिय अप्रिय और सुख दुःख वा पाप पुण्य स्पर्श नहीं करते हैं ॥ ४४ ॥

स्थूलादिसम्बन्धवतोभिमानिनः सुखं च दुःखं च शुभाशुभे च । विध्वस्तबन्धस्य सदात्मनो मुनेः कुतः शुभं वाप्यशुभं फलं वा ॥ ४५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अभिमानिनः) अभिमानी (स्थूलादिसम्बन्धवतः) स्थूल आदिका सम्बन्धवालेको (सुखम्) सुख (च) और (दुःखम्) दुःख (च) और

(शुभाशुभे) पुण्य पाप (च) भी [भवतः] होते हैं (विध्वस्तबन्धस्य) बन्धनको तोड़नेवाले (सदात्मनाः) ब्रह्मरूप (मुनेः) मुनिको (शुभम्) शुभ (अपि वा) या (अशुभम्) अशुभ (फलम्) फल (कुतः) कहाँ ? ४५

भावार्थ—अभिमानके कारण स्थूल शरीर आदिका सम्बन्धवाले पुरुषको ही सुख दुःख और पुण्य पाप लगता है, परन्तु जिसनें अभिमानको ही तोड़ डाला हैं उस ब्रह्मस्वरूप मुनिको शुभ अशुभ फल कैसे होसकता हैं।

तमसा ग्रस्तवद्भानादग्रस्तोऽपि रविर्जनैः। ग्रस्त इत्युच्यते भ्रान्त्या ह्यज्ञात्वा वस्तुलक्षणम्। तद्वद्देहादिबन्धेभ्यो विमुक्तं ब्रह्मवित्तमम्। पश्यन्ति देहवन्मूढाः शरीराभासदर्शनात् ॥ ४७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(तमसा) राहु करके (अग्रस्तः अपि) न ग्रसा हुआ भी (रविः) सूर्य (ग्रस्तवत्) ग्रसा हुआ सा (भानात्) प्रतीत होनेसे (जनैः) पुरुषों करके (भ्रान्त्या) भ्रान्ति करके (वस्तुलक्षणम्) वस्तुस्वरूपको (अज्ञात्वा-हि) न जानकर ही (ग्रस्तः) ग्रसा गया (इति) ऐसा (उच्यते) कहा जाता है (तद्वत्) तैसे ही (मूढाः) मूढ पुरुष (शरीराभासदर्शनात्) शरीरका आभास दीखनेसे (देहादिभ्यः) देह आदिकोंसे (विमुक्तम्) छूटे हुए (ब्रह्मवित्तमम्) ब्रह्म-

ज्ञानियोंमें भी श्रेष्ठको (देहवत्) देहकी समान (पश्यन्ति) देखते हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

भावार्थ-सूर्यको राहु निगल नहीं लेता है, तथापि जिनको सूर्यकी स्थितिकी खबर नहीं है, वह पुरुष भ्रमवश राहुको निगला हुआसा जाननेके कारण उसको ग्रसाहुआ कहते हैं, तैसे ही श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी पुरुष देह आदिके बन्धनोंसे मुक्त होता है तथापि जिनको उसकी यह दशा मालूम नहीं होती है वह पुरुष शरीरका आभास दीखनेके कारण उसको शरीरवाला मानते हैं ॥४६॥४७

अहिर्निर्ल्वयनीं वायं मुक्त्वा देहं तु तिष्ठति । इतस्ततश्चाल्यमानो यत्किंचित्प्राणवायुना ॥ ४८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अहिः) सर्प (निर्ल्वयनीम् वा) कैंचुलीको जैसे (अयम्) यह (देहम्) शरीरको (मुक्त्वा) छोडकर (प्राणवायुना) प्राणवायु करके (यत्किंचित्) कुछ एक (इतस्ततः) इधर उधरको (चाल्यमानः) चलायमान किया हुआ (तिष्ठति) स्थित रहता है ४८

भावार्थ-जैसे सर्प कैंचलीको छोड़कर रहता है, तैसेही ब्रह्मज्ञानी देहके अभिमानको छोड़कर रहता है, इस ब्रह्मज्ञानीके देहको प्राणवायु ही थोड़ा बहुत इधर उधर को चलाता है ॥ ४८ ॥

स्रोतसा नीयते दारु यथा निम्नोन्न-

तस्थलम् । दैवेन नीयते देहो यथा कालोपभुक्तिषु ॥ ४९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (दारु) काठ (स्रोतसा) प्रवाह करके (निम्नोन्नतस्थलम्) नीचेऊँचे स्थानको (नीयते) लेजाया जाता है (देहः) शरीर (दैवेन) दैव करके (यथाकालोपभुक्तिषु) यथा समय भोगस्थानोंमें (नीयते) लेजाया जाता है ॥ ४९ ॥

भावार्थ-जैसे जलका प्रवाह काठको ऊँचे नीचे स्थानों पर लेजाता है, तैसे ही ब्रह्मज्ञानीके शरीरको प्रारब्ध यथा समय प्राप्त होनेवाले फलोंको भुगावनेके लिये लेजाता है ॥ ४९ ॥

प्रारब्धकर्मपरिकल्पित-वासनाभिः संसारिवच्चरति भुक्तिषु मुक्तदेहः । सिद्धः स्वयं वसति साक्षिवदत्र तूष्णीं चक्रस्य मूलमिव कल्पविकल्पशून्यः ॥ ५० ॥

अन्वय और पदार्थ-(मुक्तदेहः) मुक्त पुरुषका शरीर (प्रारब्धकर्मपरिकल्पितवासनाभिः) प्रारब्ध कर्मकी कल्पना कीहुई वासनाओंसे (भुक्तिषु) भोगोंमें (संसारिवत्) संसारीको समान (चरति) विचरता है (अत्र) इस देहमें (सिद्धः) मुक्त पुरुष (चक्रस्य) पहियेके (मूलम्-इव) मूलकी समान (कल्पविकल्प-शून्यः) संकल्पविकल्पोंसे शून्य (साक्षिवत्) साक्षीकी समान (स्वयम्) आप (तूष्णीम्) मौन (वसति) रहता है

भावार्थ—मुक्त पुरुषका देह प्रारब्ध कर्मसे कल्पना कीहुई वासनाओंसे भोगोंमें संसारी पुरुषकी समान विचरता है, परन्तु उस देहमें मुक्त पुरुष पहियेके मूल की समान संकल्पविकल्पसे रहित हो साक्षीकी समान स्वयं मौन होकर रहता है ॥ ५० ॥

नैवेन्द्रियाणि विषयेषु नियुङ्क्त एष नैवापयुङ्क्त उपदर्शनलक्षणस्थः । नैव क्रियाफलमपीषदवेक्षते स स्वानन्दसान्द्ररसपानसुमत्तचित्तः ॥ ५१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(उपदर्शनलक्षणस्थः) साक्षीके समान स्थित (स्वानन्दसान्द्ररसपानसुमत्तचित्तः) स्वरूपानन्दका गाढ़ा रस पीनेसे मस्त मनवाला (एषः) यह (इन्द्रियाणि) इन्द्रियोंको (विषयेषु) विषयोंमें (नैव) नहीं (अपयुंक्ते) हटाता है (क्रियाफलम्) कर्मफलको (ईषत्-च) जरा भी (नैव) नहीं (अवेक्षते) देखता है

भावार्थ-साक्षीकी समान रहताहुआ और स्वरूपानंद का गाढ़ा रस पीनेसे मस्त चित्तवाला ब्रह्मज्ञानी अपनी इन्द्रियोंको न तो विषयोंमें जोडता है और न विषयोंसे खेंचता है तथा कर्मोंके फलको जरा भी नहीं देखता है ५१

लक्ष्यालक्ष्यगतिं त्यक्त्वा यस्तिष्ठेत् केवलात्मना । शिव एव स्वयं साक्षादयं ब्रह्मविदुत्तमः ॥ ५२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यः) जो (लक्ष्यालक्ष्यगतिम्) स्थूल सूक्ष्मके अभिमानको त्यक्त्वा, त्यागकर (केवलात्मना) केवल स्वरूपसे (तिष्ठेत्) स्थित होय (अयम्) यह (साक्षात्) प्रत्यक्ष (शिवः, एव) शिव ही है (ब्रह्मवित्तमः) ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ है ॥ ५२ ॥

भावार्थ-स्थूल सूक्ष्म शरीरके अभिमानको छोड़ कर जो पुरुष केवलरूपसे रहता है वह आप ही साक्षात् शिवरूप है और ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ है ॥ ५२ ॥

जीवन्नेव सदा मुक्तः कृतार्थो ब्रह्मवित्तमः । उपाधिनाशाद् ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येति निर्द्वयम् ॥ ५३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ब्रह्मवित्तमः) ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ (जीवन्-एव) जीता हुआ ही (मुक्तः) मुक्त (कृतार्थः) कृतकृत्य है (उपाधिनाशात्) उपाधिका नाश होनेसे (ब्रह्म-एव-सन्) ब्रह्मरूप ही होता हुआ (निर्द्वयम्) अद्वितीय (ब्रह्म) ब्रह्मको (अप्येति) प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥

भावार्थ-श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी जीता हुआ ही सर्वदा मुक्त है और कृतार्थ है, यह पुरुष उपाधिका नाश होने से ब्रह्मरूपसे अद्वितीय ब्रह्मको प्राप्त होता है॥ ५३ ॥

शैलूषो वेषसद्भावाभावयोश्च यथा पुमान् । तथैव ब्रह्मविच्छ्रेष्ठः सदा ब्रह्मैव नापरः ॥ ५५४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (शैलूषः) नट (वेषसद्भावभावयोः) वेषके होने पर और न होने पर (च) भी (पुमान्) पुरुष है (तथा-एव) तैसे ही (ब्रह्मविच्छ्रेष्ठः) ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ (सदा) सर्वदा (ब्रह्म-एव) ब्रह्म ही है (अपरः) और (न) नहीं है॥

भावार्थ-जैसे नट, वेष पहरे होय तब और न पहरे होय तब भी पुरुष ही है, तिसी प्रकार ब्रह्मवेत्ता देह होय तो और देह न होय तब भी सर्वदा ब्रह्मरूप है, देहरूप है ही नहीं॥ ५५४ ॥

यत्र क्वापि विशीर्णं सत्पर्णमिव तरोर्वपुः पततात्। ब्रह्मीभूतस्य यतेः प्रागेव तच्चिदग्निना दग्धम्॥ ५५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(ब्रह्मीभूतस्य) ब्रह्मरूप हुए (यतेः) साधकका (वपुः) शरीर (तरोः) वृक्षका (पर्णम् इव) पत्ता जैसे (विशीर्णम्-सत्) विशीर्ण होता हुआ (यत्र-क्व-अपि) चाहे कहीं भी (पततात्) पड़े (हि) क्योंकि (तत्) वह (प्राक्-एव) पहिले ही (चिदग्निना) चेतनाग्निसे (दग्धम्) भस्म होगया है॥

भावार्थ-ब्रह्मरूप हुए साधकका शरीर वृक्षके पत्तेकी समान विशीर्ण होकर चाहे जहाँ गिर पड़े उसकी कुछ चिन्ता नहीं होती, क्योंकि-वह शरीर तो पहिलेसे ही चैतन्यरूप अग्निसे भस्म होजाता है॥ ५५ ॥

सदात्मनि ब्रह्मणि तिष्ठतो मुनेः पूर्णा-

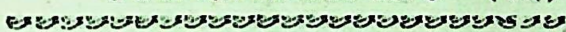
ऽद्वयानन्दमयात्मना सदा । न देश-कालाद्युचितप्रतीक्षा त्वङ्मांसविट्पिण्ड-विसर्जनाय ॥ ५६ ॥

अन्वय और पदार्थ-(सदा) सर्वदा (पूर्णाद्वयानन्दात्मना) पूर्ण अद्वितीय और आनन्दमय स्वरूपसे (सदात्मनि) सत्स्वरूप (ब्रह्मणि) ब्रह्ममें (तिष्ठतः) स्थित हुए (मुनेः) मुनिको (त्वङ् मांसविट्पिण्डविसर्जनाय) त्वचा मांस और विष्टाका पिण्ड छोड़नेके लिये (देशकालाद्युचितप्रतीक्षा) देश काल आदि उचित पदार्थकी प्रतीक्षा (न) नहीं है ॥ ५६ ॥

भावार्थ-सर्वदा पूर्ण, अद्वितीय और आनन्दस्वरूपसे सद्रूप ब्रह्ममें रहनेवाले मुनिको त्वचा, मांस और विष्टा के समूहरूप शरीरको छोड़नेके लिये देशकाल आदि उचित पदार्थोंकी अपेक्षा नहीं रहती ॥ ५६ ॥

देहस्य मोक्षो नो मोक्षो न दण्डस्य कमण्डलोः । अविद्याहृदयग्रन्थिमोक्षो मोक्षो यतस्ततः ॥ ५७ ॥

अन्वय और पदार्थ-(देहस्य) शरीरका (मोक्षः) मोक्ष (मोक्षः) मोक्ष (न) नहीं (दण्डस्य) दण्डका (कमण्डलोः) कमण्डलुका (न) नहीं (यतः, ततः) जहाँ तहाँसे (अविद्याहृदयग्रन्थिमोक्षः) अविद्यारूपी हृदयकी गांठका मोक्ष (मोक्षः) मोक्ष है ॥ ५७ ॥



भावार्थ-शरीर छूट जाय, वा दण्ड छूट जाय, चाहे कमण्डलु छूट जाय यह मोक्ष नहीं है, किंतु अविद्यारूपी हृदयकी गांठका छूट जाना ही मोक्ष है ॥ ५७ ॥

कुल्यायामथ नद्यां वा शिवक्षेत्रेऽपि चत्वरे। पर्णं पतति चेत्तेन तरोः किं नु शुभाशुभम् ॥ ५८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(कुल्यायाम्) नहरमें (अथ) और (नद्याम्) नदीमें (वा) या (शिवक्षेत्रे) शिवजी के क्षेत्रमें (अपि) वा (चत्वरे) चौराहेमें (चेत्) जो (पर्णम्) पत्ता (पतति) गिरता है (तेन) उससे (तरोः) वृक्षका (किम्-नु) क्या (शुभाशुभम्) शुभ वा अशुभ है ॥ ५८ ॥

भावार्थ—नहरमें, नदीमें, शिवालयमें या चौराहेमें यदि पत्ता गिर जाय तो उससे वृक्षकी क्या हानि वा लाभ है ? ॥ ५८ ॥

पत्रस्य पुष्पस्य फलस्य नाशवद्देहेन्द्रियप्राणधियां विनाशः । नैवात्मनः स्वस्य सदात्मकस्यानन्दाकृतेर्वृक्षवदस्ति चैषः ॥ ५९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(पत्रस्य) पत्तेके (पुष्पस्य) फूलके (फलस्य) फलके (नाशवत्) नाशकी समान (देहेन्द्रियप्राणधियाम्) देह इन्द्रिय, प्राण और बुद्धिका

(विनाशः) विनाश है (आनन्दाकृतेः) आनन्दस्वरूप (सदात्मकस्य) सद्रूप (स्वस्य) अपने (आत्मनः) आत्माका (नैव) कदापि नहीं (एकः-च) यह तो (वृक्षवत्) वृक्षकी समान (अस्ति) है ॥ ५६ ॥

भावार्थ-देह, इन्द्रियें प्राण और बुद्धिका, पत्ते, फूल और फलोंकी समान नाश होजाता है, इनके साथ सत्-चित्-आनन्दस्वरूप आत्माका नाश नहीं होता, आत्मा तो वृक्षकी समान अविचल है, ॥ ५६ ॥

प्रज्ञानघन इत्यात्मलक्षणं सत्यसूचकम् ।
अनूद्यौपाधिकस्यैव कथयंति विनाशकम् ॥

अन्वय और पदार्थ-(प्रज्ञानघनः) प्रज्ञानघन है (इति) ऐसे (सत्यसूचकम्) सत्यको सूचित करनेवाले (आत्मलक्षणम्) आत्माके लक्षणको (अनूद्य) अनुवाद करके (औपाधिकस्य एव) उपाधिके करेहुए ही (विनाशनम्) विनाशको (कथयन्ति) कहती हैं ॥ ३० ॥

भावार्थ-'आत्मा प्रज्ञानघन है' इस प्रकार श्रुतियें आत्माके सत्यपनेको सूचित करनेवाले लक्षणका अनुवाद करके उपाधिसे प्राप्तहुए देहादिके विनाशका ही निरूपण करती हैं ॥ ६० ॥

अविनाशो वा अरेऽयमात्मेति श्रुतिरात्मनः । प्रब्रवीत्यविनाशित्वं विनश्यत्सु विकारिषु ॥ ६१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(अरे) हे (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (वै) निश्चय (अविनाशी) अविनाशी है (इति) यह (श्रुतिः) श्रुति (विकारिषु) विकार वालोंके (विनश्यत्सु) विनष्ट होने पर (आत्मनः) आत्माके (अविनाशित्वम्) अविनाशीपनेको (अब्रवीत्) कहती हुई ६१

भावार्थ-'अविनाशी वा अरेऽयमात्मा' यह श्रुति विकारी पदार्थोंका नाश होने पर आत्माके अविनाशीपनेका उपदेश करती है ॥ ६१ ॥

पाषाणवृक्षतृणधान्यकडंकराद्या दग्धा भवन्ति हि मृदेव यथा तथैव। देहेन्द्रियासुमनआदिसमस्तदृश्यं ज्ञानाग्निदग्धमुपयाति परात्मभावम् ॥ ६२ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (पाषाणवृक्षतृणधान्यकडंकराद्याः) पत्थर, पेड़, तिनुके, धान्य और भुस आदि (दग्धाः) जले हुए (मृत्-एव) मट्टी ही (भवन्ति) होते हैं (तथा-एव) तैसे ही (देहेन्द्रियासुमनआदिसमस्तदृश्यम्) देह, इन्द्रियें, प्राण, मन आदि सकल दृश्य पदार्थ (ज्ञानाग्निदग्धम्) ज्ञानाग्निसे जला हुआ (परात्मभावम्) परमात्मरूपको (उपयाति) प्राप्त होता है ॥ ६२ ॥

भावार्थ-जैसे पत्थर, पेड़, तिनुके, धान्य और भुस आदि जलकर मट्टीरूप ही होजाते हैं, तैसे ही देह इन्द्रियें, प्राण और मन आदि सकल दृश्य पदार्थ ज्ञानरूप अग्निसे भस्म होकर परमात्मरूप ही होजाते हैं ६२

विलक्षणं यथा ध्वान्तं लीयते भानुतेजसि । तथैव सकलं दृश्यं ब्रह्मणि प्रविलीयते ॥ ६३ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (विलक्षणम्) विलक्षण (ध्वान्तम्) अन्धेरा (भानुतेजसि) सूर्यके तेजमें (लीयते) लीन होजाता है (तथा-एव) तैसे ही (सकलम्) सब (दृश्यम्) दृश्य (ब्रह्मणि) ब्रह्ममें (प्रविलीयते) लीन होजाता है ॥ ६३ ॥

भावार्थ-जैसे अँधेरा तेजसे विलक्षण होने पर भी सूर्यके तेजमें लीन होजाता है, तैसे ही सम्पूर्ण दृश्य ब्रह्म से विलक्षण होने पर भी ब्रह्ममें विलीन होजाता है ॥

घटे नष्टे यथा व्योम व्योमैव भवति स्फुटम् । तथैवोपाधिविलये ब्रह्मैव ब्रह्मवित्स्वयम् ॥ ६४ ॥

अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (घटे-नष्टे) घड़े के नष्ट होने पर (व्योम) आकाश (स्फुटम्) प्रकट रूपसे (व्योम-एव) आकाश ही (भवति) होता है (तथा-एव) तैसे ही (उपाधिविलये) उपाधिका नाश होने पर (ब्रह्मवित्) ब्रह्मवेत्ता (स्वयम्) आप (ब्रह्म एव) ब्रह्म ही है ॥ ६४ ॥

भावार्थ-जैसे घड़ा फूट जाने पर उसके भीतरका आकाश प्रकटरूपसे आकाश होता है तैसे ही उपाधिका नाश होने पर ब्रह्मज्ञानी स्वयं ब्रह्मरूप ही होजाता है ॥

क्षीरं क्षीरे यथा क्षिप्तं तैलं तैले जलं जले । संयुक्तमेकतां याति तथात्मन्यात्मविन्मुनिः ॥ ६५ ॥

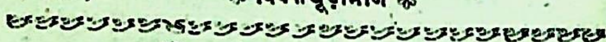
अन्वय और पदार्थ-(यथा) जैसे (क्षीरम्) दूध (क्षीरे) दूधमें (क्षिप्तम्) डाला हुआ (तैले) तैलमें (तैलम्) तैल (जले) जलमें (जलम्) जल (संयुक्तम्) संयुक्त हुआ (तथा) तैसे (आत्मवित्) आत्मवेत्ता (मुनिः) साधक (आत्मनि) आत्मामें (एकताम्) एकत्वको (याति) प्राप्त होता है ॥ ६५ ॥

भावार्थ-दूधमें दूध, तेलमें तेल और पानीमें पानी मिलानेसे जैसे एकरूप होजाता है,तैसे ही आत्मज्ञानी मुनि आत्मामें संयुक्त होकर आत्मरूप होजाता है ६५

एवं विदेहकैवल्यं सन्मात्रत्वमखण्डितम् ब्रह्मभावं प्रपद्यैवं यतिर्नावर्त्तते पुनः ६६

अन्वय और पदार्थ-(एवम्) इसप्रकार (अखण्डितम्) पूर्ण (सन्मात्रत्वम्) सद्रूपत्व (विदेहकैवल्यम्) विदेहमुक्ति है (एवः) यह (यतिः) साधक (ब्रह्मभावम्) ब्रह्मको (प्रपद्य) प्राप्त होकर (पुनः) फिर (न) नहीं (आवर्त्तते) लौटता है ॥ ६६ ॥

भावार्थ-इसप्रकार अखण्डित सद्रूपपना ही विदेह मुक्ति है, ऐसे ब्रह्मभावको प्राप्त होकर साधक फिर जन्म मरणके चक्रमें नहीं आता है ॥ ६६ ॥



सदात्मैकत्वविज्ञानदग्धाविद्यादिवर्मणः । अमुष्य ब्रह्मभूतत्वाद् ब्रह्मणः कुत उद्भवः ॥ ३७ ॥

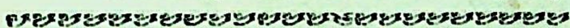
अन्वय और पदार्थ-(सदा) सर्वदा (आत्मैकत्वविज्ञानदग्धाविद्यादिवर्मणः) आत्माके एकत्वके अनुभवसे भस्म होगए हैं अविद्या आदि शरीर जिसके ऐसे (अमुष्य) इसके (ब्रह्मभूतत्वात्) ब्रह्मरूप होनेसे (ब्रह्मणः) ब्रह्मकी (उद्भवः) उत्पत्ति (कुतः) कहाँ ॥ ६७ ॥

भावार्थ-जीव और ब्रह्मके एकत्वका अनुभव होनेके कारण साधकके अविद्यादि शरीर भस्म होजानेसे उस को ब्रह्मत्व ही प्राप्त होजाता है और ब्रह्मका फिर जन्म कैसे होसकता है ॥ ६७ ॥

मायाक्लृप्तौ बन्धमोक्षौ नः स्वात्मनि वस्तुतः । यथा रज्जौ निष्क्रियायां सर्पाभासविनिर्गमौ ॥ ६८ ॥

अन्वय और पदार्थ -(निष्क्रियायाम्)क्रिया रहित(रज्जौ) रज्जुमें (सर्पाभासविनिर्गमौ) सर्पका भासना और दूर होना (यथा) जैसे (मायाक्लृप्तौ) मायाके कल्पना करेहुए (बन्धमोक्षौ) बन्धन और मोक्ष(वस्तुतः) वास्तवमें (स्वात्मनि) अपने आत्मामें (न) नहीं (स्तः) होतेहैं।

भावार्थ-जैसे विनाक्रियाकी रज्जुमें सर्पका आना और निकलजाना दोनों नहीं हैं तैसे ही मायाके कल्पना किये हुए बन्धन और मोक्ष वास्तवमें आत्मामें है ही नहीं ।



आवृतेः सदसत्त्वाभ्यां वक्तव्ये बन्धमोक्षणे । नावृत्तिर्ब्रह्मणः काचिदन्याभावादनावृतम् । यद्यस्त्यद्वैतहानिः स्याद् द्वैतं नो सहते श्रुतिः ॥ ६८ ॥

अन्वय और पदार्थ-(आवृतेः) आवरणको (सदसत्वाभ्याम्) होने और न होनेसे (बन्धमोक्षणे) बन्धन और मोक्ष (वक्तव्ये) कहने चाहियें (ब्रह्मणः) ब्रह्मका (काचित्) कोई (आवृतिः) आवरण (न) नहीं अन्याभावात्) अन्यके अभावसे (अनावृतम्) आवरणरहित है (यदि) जो (अस्ति) है (अद्वैतहानिः) अद्वैतकी हानि (स्यात्) होगी (द्वैतम्) द्वैतको (श्रुतिः) श्रुति (न) नहीं (सहते) सहती है ॥ ६८ ॥

भावार्थ-आवरण होनेसे बन्धन और आवरण नष्ट होनेसे मोक्ष कहना चाहिये, परन्तु ब्रह्मको किसी प्रकार का आवरण नहीं है, ब्रह्मके सिवाय दूसरा कोई पदार्थ न होनेसे ब्रह्म आवरणरहित ही है, यदि ब्रह्मसे दूसरा कोई आवरण माना जाय तो अद्वैतकी हानि होती है और श्रुति किसीप्रकार द्वैतको सहती ही नहीं ॥ ६८ ॥

बन्धं च मोक्षं च मृषैव मूढा बुद्धेर्गुणं वस्तुनि कल्पयन्ति । दृगावृतिं मेघकृतां यथा रवौ यतोऽद्वयासङ्गचिदेतदक्षरम्

अन्वय और पदार्थ (मेघकृताम्) मेघके किये हुए (दृगावृतिम्) नेत्रोंके आवरणको (रवौ-यथा) सूर्यमें जैसे (मूढाः) अज्ञपुरुष (बुद्धेः) बुद्धिके (गुणम्) गुणके (बन्धम्) बन्धको (च) और (मोक्षम्) मोक्षको (च) भी (वस्तुनि) वस्तुमें (मृषा-एव) वृथा ही (कल्पयन्ति) कल्पना करते हैं (यतः) क्योंकि(एतत्) यह (अद्वयासङ्गचित्) अद्वितीय,असङ्ग चेतन (अक्षरम्) अविनाशी है ॥ ७० ॥

भावार्थ-जैसे बदलोंके किये हुए दृष्टिके आवरणको मूढ पुरुष सूर्यमें कल्पना करलेते हैं; तैसे ही बुद्धिके बन्ध और मोक्षरूप मिथ्यागुणोंको मूढ पुरुष ब्रह्ममें कल्पना करते हैं, ब्रह्म तो अद्वैत, असङ्ग, चैतन्य और अक्षर है इस कारण उसमें बन्धन या मोक्ष है ही नहीं

अस्तीति प्रत्ययो यश्च यश्च नास्तीति वस्तुनि। बुद्धेरेवं गुणावेतौ न तु नित्यस्य वस्तुनः ॥ ७१ ॥

अन्वय और पदार्थ-(वस्तुनि) ब्रह्ममें (अस्ति) है (इति) ऐसी (यः) जो (च) और (न) नहीं (अस्ति) है (इति च) ऐसी भी (यः) जो (प्रतीतिः) प्रतीति है (एतौ) यह (गुणौ) गुण (बुद्धेः एव) बुद्धिके ही हैं (नित्यस्य) नित्य (वस्तुनः-तु) वस्तुके तो (न) नहीं

भावार्थ-ब्रह्ममें बन्ध है और बन्ध मिटगया ऐसी जो प्रतीति होती है, यह दोनों प्रतीति बुद्धिके ही गुण हैं, परन्तु नित्य वस्तु ब्रह्मके नहीं हैं ७१

अतस्तौ मायया क्लृप्तौ बन्धमोक्षौ न चात्मनि । निष्कले निष्क्रिये शान्ते निरवद्ये निरञ्जने अद्वितीये परे तत्त्वे व्योमवत्कल्पना कुतः ॥ ७२ ॥

अन्वय और पदार्थ--(अतः) इसकारण (मायया माया करके (क्लृप्तौ) कल्पना किये हुए (तौ) वह (बन्धमोक्षौ) बन्ध और मोक्ष (आत्मनि) आत्मामें (न-च) नहीं हैं (अद्वितीये) अद्वितीय (परे) पर (तत्त्वे) तत्त्व (व्योमवत्) आकाशकी समान (निष्कले) अंशरहित (निष्क्रिये) क्रियारहित (शान्ते) शान्त (निरवद्ये) निर्दोष (निरंजने) निरञ्जनमें (कल्पना) कल्पना (कुतः) कहाँ ॥ ७२ ॥

भावार्थ-अतः बन्ध और मोक्ष मायाकल्पित हैं, आत्मामें नहीं हैं, आत्मा कि-जो अद्वितीय, क्रियारहित, शान्त, निर्दोष तथा निरंजन है उसमें बन्ध वा मोक्ष कैसे होसकता है ? ॥ ७२ ॥

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बन्धो न च साधकः । न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥ ७३ ॥

अन्वय और पदार्थ (न) नहीं (निरोधः) प्रलय है (च) और (न) नहीं (बन्धः) बन्ध है (च) और (न) नहीं (साधकः) साधक है (मुमुक्षुः) मोक्ष चाहने

वाला (च) और (मुक्तः) मुक्त (इति एता) इस प्रकारकी यह (वै) निश्चय (परमार्थता) वास्तविक (न) नहीं हैं ॥ ७३ ॥

भावार्थ–वास्तवमें तो यह बात है, कि–न प्रलय न उत्पत्ति, न बन्ध, न साधक, न मुमुक्षु और न मुक्त है।

सकलनिगमचूडास्वान्तसिद्धांतरूपं पर मिदमतिगुह्यं दर्शितं ते मयाद्य। अपगत-कलिदोषं कामनिर्मुक्तबुद्धिं स्वसुतवदस-कृत्त्वां भावयित्वा मुमुक्षुम् ॥ ७४ ॥

अन्वय और पदार्थ–(त्वाम्) तुझको (अपगतकलि-दोषम्) कलिके दोषोंसे रहित (कामनिर्मुक्तिबुद्धिम्) कामसे छूटी बुद्धिवाला (मुमुक्षुम्) मुमुक्षुको (सुत-वत्) पुत्रकी समान (भावयित्वा) विचार कर (अद्य) आज (मया) मैंने (ते) तेरे अर्थ (इदम्) यह (अति-गुह्यम्) परमगुप्त (सकलनिगमचूडास्वान्तसिद्धान्त-रूपम्) सकल उपनिषदोंके भीतरका सिद्धान्तरूप (परम्) परमतत्त्व (दर्शितम्) दिखाया है ॥ ७४ ॥

भावार्थ-हे शिष्य ! तू कलियुगके दोषोंसे रहित, निष्कामबुद्धिवाला और मुमुक्षु है ऐसे गुणोंके कारण वार २ पुत्रकी समान विचार कर आज मैंने यह अत्यंत गुप्त परमतत्त्व कि–जो सकल उपनिषदोंके भीतरका सिद्धान्तरूप है, तुझे बताया है ॥ ७५ ॥

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं प्रश्रयेण कृतानतिः । स तेन समनुज्ञातो ययौ निर्मुक्तबन्धनः ॥ ७५ ॥

अन्वय और पदार्थ-(इति) ऐसे (गुरोः) गुरुके (वाक्यम्) वाक्यको (श्रुत्वा) सुनकर (निर्मुक्तबंधनः) बन्धनसे छूटा हुआ (सः) वह शिष्य (प्रश्रयेण) नम्रतासे (कृतानतिः) प्रणाम करके (तेन) तिन करके (समनुज्ञातः) सम्यक् आज्ञा दियाहुआ (ययौ) चलागया

भावार्थ-इसप्रकार गुरुके वचन सुनकर सकल बंधनों से छूटाहुआ शिष्य प्रेमपूर्वक उनको प्रणाम करके उनके आज्ञा देने पर तहाँसे चला गया ॥ ७५ ॥

गुरुरेव सदानन्दसिन्धौ निर्मग्नमानसः । पावयन्वसुधां सर्वां विचचार निरन्तरः ७६

अन्वय और पदार्थ-(सदा) सर्वदा (आनन्दसिंधौ) आनन्दसमुद्रमें (निर्मग्नमानसः) मग्न मनवाला (निरन्तरः) अखण्ड ज्ञानरूप (गुरुः-एव) गुरु भी (सर्वाम्) सब (वसुधाम्) पृथ्वीको (पावयन्) पवित्र करता सब (विचचार) विचरता हुआ ॥ ७६ ॥

भावार्थ-सर्वदा आनन्दसमुद्रमें निमग्न मनवाला अखण्ड ब्रह्मरूप गुरु भी सकल पृथ्वीको पवित्र करता हुआ विचरने लगा ॥ ७६ ॥

इत्याचार्यस्य शिष्यस्य संवादेनात्म-लक्षणम्। निरूपितं मुमुक्षूणां सुखबोधो-पपत्तये ॥ ७७ ॥

अन्वय और पदार्थ (मुमुक्षूणाम्) मुमुक्षुओंके (सुख-बोधोपपत्तये) अनायास ज्ञानप्राप्तिके लिये (इति) इस प्रकार (आचार्यस्य) आचार्यके (शिष्यस्य) शिष्यके (सम्वादेन) सम्वादके द्वारा (आत्मलक्षणम्) आत्मा का स्वरूप (निरूपितम्) वर्णन किया ॥ ७७ ॥

भावार्थ- मुमुक्षुओंको अनायास ज्ञानप्राप्तिके लिये इस प्रकार गुरु और शिष्यके सम्वादरूपसे आत्माका स्वरूप कहा ॥ ७७ ॥

हितमिदमुपदेशमाद्रियन्तां विहित-निरस्तसमस्तचित्तदोषाः । भवसुखवि-रताः प्रशान्तचित्ताः श्रुतिरसिका यतयो मुमुक्षवो ये ॥ ७८ ॥

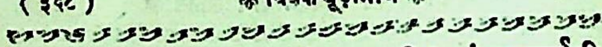
अन्वय और पदार्थ–(विहितनिरस्तसमस्तचित्तदोषाः) शास्त्रोक्त कर्मोंसे नष्ट करे हैं चित्तके सकल दोष जिन्होंने ऐसे (भवसुखविरताः) संसारके सुखोंमें विरक्त (श्रुतिरसिकाः) श्रुतियों पर प्रेम रखने वाले (मुमुक्षवः) मोक्षको चाहनेवाले (प्रशान्तचित्ताः) परम-शान्तचित्त (ये) जो (यतयः) साधक हों [ते] वह

(इदम्) इस (हितम्) हितकारी (उपदेशम्) उपदेश को (आद्रियन्ताम्) आदर करें ॥ ७८ ॥

भावार्थ-जिन्होंने शास्त्रोक्त कर्मोंसे चित्तके सकल मलोंको दूर किया है ऐसे संसारके सुखोंमें विरक्त श्रुतियों पर प्रेम रखनेवाले जो परमशान्तचित्त मुमुक्षु हों वह साधक इस हितू उपदेश पर प्रेम करें ॥ ७८ ॥

संसाराध्वनि तापभानुकिरणप्रोद्भूतदाहव्यथाखिन्नानां जलकाङ्क्षया मरुभुवि श्रान्त्या परिभ्राम्यतां अत्यासन्नसुधाम्बुधिं सुखकरं ब्रह्माद्वयं दर्शयत्येषा शंकरभारती विजयते निर्वाणसन्दायिनी ॥ ५७९ ॥

अन्वय और पदार्थ-(संसाराध्वनि) संसाररूप मार्ग में (तापभानुकिरणप्रोद्भूतदाहव्यथाखिन्नानाम्) तापरूपी सूर्यकी किरणोंसे उत्पन्नहुए दाहकी व्यथासे खेद को प्राप्त हुए (मरुभुवि) मरुभूमिमें (श्रान्त्या) थकनसे (जलाकांक्षया) जलकी इच्छा करके (परिभ्राम्यताम्) भटकते हुए (एषान्) इन संसारियोंको (अत्यासन्नसुधाम्बुधिम्) अति समीपमें अमृतके समुद्रसमान (सुखकरम्) सुखदायक (अद्वयम्) अद्वितीय (ब्रह्म) ब्रह्मको (दर्शयती) दिखाती हुई (निर्वाणसन्दायिनी)



परमशान्ति देने वाली (शंकरभारती) शंकराचार्यकी वाणी (विजयते) सर्वोत्कृष्ट है ॥ ७६ ॥

भावार्थ–संसाररूपमार्गमें त्रितापरूप सूर्यकी किरणों से उत्पन्न हुए दाहकी व्यथासे खिन्न और इसीसे मानो निर्जल भूमिमें थक कर जलकी इच्छासे भटकनेवाले इन संसारियोंको बहुत ही समीपमें सुखदायक अमृत के समुद्रकी समान अद्वितीय परमात्माको दिखा कर परमशांति देनेवाली श्रीशंकराचार्यकी वाणी सर्वोपरि है।

इति गौडवंश्य–पण्डितभोलानाथात्मजेन काशीस्थमहामहोपाध्याय-
सत्संप्रदायाचार्य–स्वर्गीय–पण्डित–स्वामिराममिश्रशास्त्रिणां
शिष्येण मुरादाबादनिवासिना ऋषिकुमारोपनामक
रामस्वरूपशर्मणा विरचितेन सान्वयभाषानु
वादेन सहितः जगद्गुरुश्रीशंकराचार्य-
विरचितो विवेकचूडामणिः
समाप्तः

—०—



उद्योगिनं पुरुष सिंह मुपै
ति लक्ष्मी। दैवेन देयमीत
कापुरुषा वदन्ती। दैवं निहत्य
कुरु पौरुष मात्म शक्त्या यत्ने
कृते यदि न सिद्धति को ऽत्र दो
षः॥

हवड़ा

रेलवे क्वाटर

टिन्चल बगान

३/२७६